हौलदार

लेखक की अन्य रचनाएं

उपन्यास

बोरीवली से बोरीबन्दर तक	३.५०
कबूतरखाना	२.५०
चिट्ठीरसैन	प्रेस में
तिरिया भली न काठ की	प्रेस में
किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई	प्रेस में
बारूद और बचुली	प्रेस में

कहानी

कालिका अवतार	प्रेस में

कविता

गीतिमा	प्रेस में

लोक-साहित्य

तारामण्डल की लोक-कथाएं	१.२५
चम्पावत की लोक-कथाएँ	१.५०
डोटी-प्रदेश की लोक-कथाएँ	१.२५
तराई-प्रदेश की लोक-कथाएँ	१.२५
नैनीताल की लोक-कथाएँ	१.२५
अलमोड़ा की लोक-कथाएँ	१.२५
कुमाऊँ की लोक-कथाएँ (१)	१.५०
कुमाऊँ की लोक-कथाएँ (२)	प्रेस में
कुमाऊँ की लोक-कथाएँ (३)	प्रेस में

बाल-साहित्य

हीरामन तोता	प्रेस में
ईश्वर की मिठाई	प्रेस में

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

हौलदार

□ □ □

□ □ □

शैलेश मटियानी

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-6
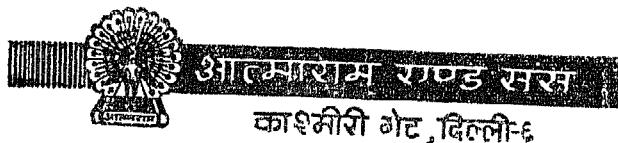
HAULDAR

(Novel)

by

Shailesh Matiyani

Rs. 6.00

□

प्रकाशक :

रामलाल पुरी

संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट

दिल्ली-६

□

आवरण :

योगेन्द्रकुमार लल्ला

□

मूल्य :

रुपए ६.००

□

प्रथम संस्करण :

१९६

□

मुद्रक :

सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस

कमला नगर

दिल्ली-६

सप्रणाम समर्पित
भाई भगवतप्रसादजी चतुर्वेदी को

हौलदार

अलमोड़ा की आंचलिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखा गया मेरा पहला प्रकाशित उपन्यास है। यों एक अन्य आंचलिक उपन्यास 'चिट्ठीरसैन' कलकत्ता के 'आदर्श' में धारावाहिक प्रकाशित हो चुका है।

'हौलदार' और 'चिट्ठीरसैन' की भाषा-भूमि में आंचलिक-शब्दों के बुरूँश-फूल खिलें—अन्य हिन्दी-उपन्यासों की भाषा-भूमि से इसका प्राकृतिक सौन्दर्य अलग दिखाई दे—(जैसे 'देश' (Plains) की समतल-भूमि से पहाड़ों की पथरीली प्रकृति)—यह लेखक का उद्देश्य रहा है। इतर-प्रान्तीय पाठकों को मेरा कृतित्व दुर्बोध न लगे, इस ओर सचेत रहा हूँ। आंचलिक शब्दों की अपेक्षा, आंचलिक शिल्प की प्रमुखता रहे—ऐसा मेरा प्रयास रहा है, मगर सफलता तो इसकी और ही आँकेंगे।

जो आंचलिक-शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनमें से अधिकांश को मैंने उनके अक्षर-आकर्षण, अर्थ-गाम्भीर्य और ध्वनि-वैशिष्ठ्य के आधार पर ही दिया है—इस आशा के साथ, कि इनमें से कई शब्द हिन्दी-साहित्य के शब्द-कोष की वृद्धि करने में समर्थ होंगे···आंचलिक मुहावरों और लोकोक्तियों में से कुछ कुमाऊँ के पूर्व-प्रचलित है, कुछ की रचना-सर्जना मैंने की है। मूलत: मैं यहाँ का लोक-साहित्यकार ही हूँ। इस नाते, नए

मुहावरों और लोकोक्तियों की इस सृजन-चेष्टा में मुझे सुख-सन्तोष मिला है। औरों को भी रुचा मेरा यह प्रयास, तो अपना श्रम सार्थक समझूंगा।

o o o

'हौलदार'-'चिट्ठीरसैन' में मैंने अलमोड़ा के जन-जीवन के सामाजिक-आर्थिक पहलुओं के गहन-व्यापक स्तरों को नहीं छुआ है। 'जिबुका', 'सरूली', 'सुँयाल-कोसी' और 'लाम और बुरूँश के फूल' आदि अपने नए उपन्यासों में मैं वहाँ के जन-जीवन के सर्वांगीण-बिम्बों को रूपायित करने का प्रयास कर रहा हूँ।

मेरी अपनी यह आंतरिक-इच्छा रही है, कि पाठकों को आंचलिक-शब्दों के बवंडर से बहकाने की नहीं, बल्कि उन्हें कुमाऊँ की आंचलिक कथा-निधियों और शिल्प-शैलियों का परिचय देने की चेष्टा करूँ। मेरा आग्रह आंचलिक-शिल्प के प्रस्तुतीकरण के प्रति अधिक है, ताकि हिन्दी-साहित्य को कुछ नई कथा-शैलियाँ मिल सकें।

मै उन सभी का चिर-कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मेरे इस अकिंचन्-प्रयास को अपना स्नेहाधार दिया है। विशेष रूप से मैं अपने उन पाठकों का ऋणी हूँ, जिन्होंने मेरे कृतित्व को अपना स्नेह दिया है। अन्त में भाई ब्रह्मदत्त दीक्षित के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिसका औघडपन इस उपन्यास की पूर्ति-प्रेरणा रहा।

—*शैलेश मटियानी*

ऊधमसिंह	:	केशरसिंह का बेटा
सरूली	:	केशरसिंह की बहू
किसनसिंह नेगी	:	
चतुरसिंह	:	किसनसिंह का बेटा
नरूली	:	किसनसिह की बहू
कलावती	:	किसनसिह की भांजी
हरकसिंह	:	किसनसिह का भाई
जयदत्तजी	:	पोस्ट-मास्टर
मोतीरामजी	:	हैड-मास्टर
पदमसिंह	:	पोस्टमैन
बिजेसिंह, उमादत्त	:	दुकानदार
दुरगुली पंडित्याण	:	भैंस पालने वाली विधवा ब्राह्मण, जो प्रसूति भी कराती है
किसनराम	:	मिस्त्री
भागली-नदुली	:	श्रमजीवी शिल्पकारिनें

१

पखवारे-भर में ही—

डूँगरसिंह डुन हौलदार (लँगड़ा हौलदार) के रूप में सारे धौलछीन गाँव में, वाणी के वचन और हाथ के हथियार की तरह, चर्चा का विषय बन गया था।

पर, एक पखवारे पहले की ही बात है···जब वह देहरादून के मिलिट्री अस्पताल से डिसमिस (डिसचार्ज) होकर, अपने धौलछीना गाँव को लौट रहा था, तो उसका मन विषाद की बारूद से विस्फोटक-स्थिति ग्रहण कर रहा था—हाथ से गिरे काँच-सा हौलदारी का सपना टूट गया और तुमड़िया लौकी-सी गोल, बाबिल घास की लट-सी लम्बी, केले के तने-सी गुदगुदी टाँग में घुस गई बारूद की बुलेर ! और, फिर लौटना पड़ गया, कुवचनिया खिमुली-भिमुली भौजियों के गाँव धौलछीना को ?··· हे राम !··· बैरनें दूध बनाकर, लोहे की कढ़ाई में आँच देकर उबालेंगी, फिर दही बनाकर, मिट्टी की हाँडियों में जमाएँगी·—और

फिर, काठ के डकोले में रौली से बिलो-बिलोकर नौनी बनाएँगी··· और फिर, गरम तवे में छ्याँ ततार देंगी—"ए हो, देवर डूँगरसिंह ! पलटन से घर लौट आए हो, तो यह दुर्गत क्या वना लाए हो ? खैर, हमको तो यह खुशी है, कि ऐसे पलटन से बच आए हो, जैसे वन के बाघ से बकरी बच आती है। पर, अब यह टूटी टाँग लेके कहाँ-कहाँ भटकते फिरोगे ? इससे अच्छा था, एक ही चोट में फैसला हो गया होता··· खैर, अब तो जिन्दगी के बाकी दिन जैसे-तैसे पूरे करोगे ही··· पर, देवर हो, हौलदारी तो मार के लाए न ?···"

और डूँगरसिंह का भाग ऐसा फूटा, कि 'ट्रेनिंग-पीरियड' मे अपनी गलती से अपने ही पाँव पर गोली चला बैठा—और, भर्ती होने के छ: महीने बाद ही—सो भी तीन महीने, नौ दिन अस्पताल में काटकर—डिस्चार्ज होकर, टूटी टाँग लेकर घर लौट रहा है ?···

अरे, मर जाए सैंतुवा[1] पलटन के उस हफसर का, जिसने ट्रेनिंग क्या दी, टाँग से लाचार करवाकर, ढिसमिस करवा दिया।

ओह, जिस लाम में भर्ती होने के लिए डूँगरसिंह ने अपने तन-मन का पूरा तराण (बल) लगा दिया था और देवताओं के नाम के पत्थरों पर, बीड़ी न पीके बचाए हुए ताँबे के बड़े-बड़े पैसे चढाए—और, गाँव की सबसे विदुषी गोपुली काकी से भूमिया देव की मानता मनवाई, कि "हे भूमिया राजा, जिस दिन मेरा भतीजा डुँगरिया बिलैंत वालों (अँग्रेजों) की लाम में भरती होकर, 'कन्टूलमेनट' की धरती पर पाँव धरेगा—दो बकरे, दो नारियल चढाऊँगी, मेरे देवता राजा !" ···और, जिस लाम में भरती होने के लिए, डूँगरसिंह ने भर्ती-जमादार शेरसिंह के नमक-मिर्ची-से मिजाज को सेर-भर नौनी लगाई थी; सुप्याल नदी के पानी में तिमूर-जैगणियाँ घास-पात का जहर घोलकर, छोटी जात की गडेरा, और बड़ी जात की पपड़ुवा मछली मारकर खिलाई थी···

---

१. पालने वाला।

लेफ्ट-रैट करना भूल जाए सूबेदार गाँधी महाराजा की लाम का, आज उसी लाम से डूँगरसिंह, सिर्फ तीन महीने की रँगरूटी के बाद ही, फिर दुर्वचन कहने वाली भाभियों के गाँव लौट रहा था। चाँदमारी की फैर करने में, खुद अपनी बाई टाँग पर फैर कर बैठा था डूँगरसिंह, और··· गाँधी महाराजा की लाम के सेनापति को दानी गाँव, ठंडी छाँव नसीब न हो··· खुद ही लाम से 'डिसमिस' हो गया था।

'डिसमिस' होकर, डेढ टाँग ले जाते समय, डूँगरसिंह ने गाँधी-नेहरू महाराजा की लाम को अपनी खिमुली-भिमुली भौजियों के-से वचन मारे थे, कि 'घर न लौटे, अपनी गैया-मैया का मुँह न देखे ऐसी लाम का लिफ्टीनट, जिसमे अपनी ही टाँग बारूद-बुलेर की खतरनाक चोट खाती है—और अपनेको ही 'डिसमिस' भी होना पड़ता है।'

डूँगरसिंह मन में काँटे-सी गड़ी बात रँगरूट हफसर को सुना आया था—"यह लाम नहीं, हराम है, सैप ! अरे, लाम तो थी विलैत वालों के जमाने में। अहा, क्या बात थी ! सात महीने तक तो सिर्फ वन्दूक की मशीनरी समझाते थे, कि कहाँ घोड़ी है, कहाँ मक्खी ! और, किधर से कारतूस भरना, किधर से कारतूस निकालना ! फिर सात महीने तक वन्दूक को कंधे पर रखना, निशाना लगाना सिखाते थे। हमारे शास्तरों, वेद-पुरानों मे जो चौदह किसम की जुद्ध-विद्या बताई गई है, उसे या तो विलैत वाले ही जानते थे, या जर्मनी-जपैन वाले ही, कि लड़ाई ही दिखती थी··· हथियार और सिपाही नहीं···।"

कुछ क्षण ठहरकर, डूँगरसिंह फिर बोला था—"तो मैं कह रहा था, सैप, कि विलैत वालों की लाम में तीन महीने तक तो सिर्फ लेफ्ट-रैट-अटैनशन की परैकटिस कराते थे, कि कहीं फैर करते में पाँव गलत नहीं पड़ जाए··· और, आप लोगों की लाम से तो गाँव का भूमिया देवता ही बचाए, तीन महीने में ही लेफ्ट-रैट, अटैनशन-अबोटन और कुक-मारच, डबल मारच ! वन्दूक के अन्दर सात जात की मशीनरी कौन-कौन-सी होती है, वह तो बताते नहीं··· बस, चाँदमारी की फैर करो ! हो गई,

सैप, अपने किस्मत की तो सबसे बड़ी फैर हो गई !··· घड़ी-भर तेल से ततेरी, नौनी से चुपड़ी हुई टाँग का शिकार बनना बाकी रह गया था, जो मै इस गाँधी महाराजा की लाम में भर्ती हुआ !...''

फिर टूटी टाँग को वैशाखी के सहारे गाँव की दिशा उत्तर-पूरब को मोड़ते हुए, मन की विरक्ति को डूँगरसिंह ने होठों और भँवो को तिरछा कर व्यक्त किया—''गाँधी महाराजा की लाम जब से बनी, सिपाहियो को फुड़फुड़ाट-जैसी हो गई है, सैप ! मर जाएँ—लाठी चलाने, बन्दूक चलाने की टरेनिग एक, टैम एक हो गया ! अरे, भला बन्दूक की सात जात की मशीनरी जब इस लाम के हफसर ही नहीं समझते, तब सिपाहियों को क्या समझाएँगे ?··· और, चाँदमारी की फैर करने को कहो, तो लगा आसन, परोसी थाल छोड़के दौडेगे ! घर में खेत जोतना सिखाया था बाप ने, तो पहले बैलों का नाम, फिर उनमें से दाँया-बाँया और फिर उनको दाएँ-बाएँ फेरना सिखाया था··· यहाँ तो बस, सिपाही की छठी हुई नहीं, कि कुकमारच, डबलमारच और चाँदमारी की फैर··· अरे, ऐसी हाँकाहाँक तो जर्मनी-जपैन की लड़ाई के बखत भी नहीं हुई होगी ?···''

और, फिर डूँगरसिंह ने एक क्रुद्ध दृष्टि अपनी टूटी टाँग पर डाली थी, जो घुटने से नीचे लाम के असपिताल में ही सूख गई थी। तब दुबारा गाँधी महाराजा की लाम के लिए डूँगरसिंह के मुँह से एक फौजी बूट-सी वजनदार गाली निकली थी—ऐसी लाम के लिफ्टीनंट की बीबी यार के घर चली जाए !··· और हफसर को कहा—''बस, लाम मौज कर गई विलैतवालों के नौलखिया-राज में, कि चन्द्र उदय हो गया, पर सूर्य अस्त न हुआ। वा, कोहनूरिया ताज पहन के राज चलाते थे··· दोपालिया-टोपी पहनकर नहीं। गाँव का भूमिया देवता उनकी लाम के लिफ्टीनंटों का रुतबा ऊपर उठाए !·''

और, डूँगरसिंह चला आया था।

देहरादून के लाम-अस्पताल से 'डिसमिस' होकर, अलमोड़ा पहुँचने

आने वाली हिमानी बयार और ठंडी पड़ गई थी।

टूटी बेन्च पर बैठा-बैठा, डूँगरसिंह सोच रहा था···

आज का दिन ढलने की बेर है। कल के सूरज के साथ, डूँगरसिंह अपनी खिमुली भिमुली भौजियों के गाँव में होगा। इन बाण-से वचन मारने वाली भौजियों के गाँव का मुखिया मर जाए, गाँव में अब जीना दूभर कर देंगी। नमक भरने में, दोनों एक बाप की बेटियाँ हैं। पहले ही छेड़ा करती थीं—"हाथ-पैरों में तो चूहे-बिल्ली ढूँढने लगे है, यों बिना डोर की सुई से कब तक पड़े रहोगे, देवरिया ?"

शादी नहीं हुई थी, डूँगरसिंह की। आँखों में मिर्चीं खिमुली-भिमुली भौजियों की लग रही थी। डूँगरसिंह कहता—"मर जाए लाडला, तुम कुवचनिया-भौजियों का। नजर लगाकर, मन का चैन और तन का वजन घटाती हो ···'हाथ-पैरों में चूहे बिल्ली ढूँढने लगे है!' उधर भर्ती दफ्तर जाता हूँ, तो शेरसिंह जमादार कहता है—'छाती ३१, वजन १०३···"

भगवान किसी को भी खिमुली-भिमुली भौजियाँ न दे। बैरनों का बाप एक। नयन मटकातीं, अँगुलियाँ चटकातीं—"छाती में तो नरुली के पिरेम का महाभारत रचाए बैठे हो, देवरिया ? फिर भी इकतीस इंच ही रह गई ? वजन पाँच-बिसी-तीन ही रह गया ?"

नरूली पड़ौस के किसनसिंह नेगी की बहू थी। उसका पति चतुरसिंह लाम में हौलदार था।

एक दिन डूँगरसिंह ने नरूली को छेड़ दिया था—"जोबन को उस दही-सा क्यों जमाती जा रही है, जिसका बिलोने वाला कोई नहीं ? मुझे अपना 'टेकुवा[१]' क्यों नहीं बना लेती ?"

'टेकुवा' बनने की यह इच्छा, डूँगरसिंह को, बहुत मँहगी पड़ी थी। नरूली ने साफ कह दिया था—"बिना भैंसे के खिरक के भैंस-सी विधवा बहन घर में पड़ी तो है, पहले उसके 'टेकुवा' बन लो, फिर

१. पति की अनुपस्थिति में जिससे शारीरिक सम्पर्क बना रहता है।

मेरे बनना !·· ”

बात यहीं नहीं थम गई थी। नरूली ने डूँगरसिंह की भौजियो को भी यह बात बता दी थी, और सावधान कर दिया था—“अपने खसमो को लाम मे भर्ती न होने देना ; नही तो तुम्हारा देवरिया इस असमंजस मे पड़ जाएगा, कि पहले किस भौजी का टेकुवा बने ?”

और खिमुली-भिमुली भौजियो के हाथ में जैसे वरमास्त्र आ गया था। सामने पड़ते ही छेड़ देतीं—“टेकुवा बनोगे, देवरिया ?”

और डूँगरसिंह तेज माँजे से कटी पतँग-सा मुँह देखता रह जाता। एक दिन उसने चिढ़कर कह ही दिया था—“भेज के तो देखो, अपने खसमों को लाम में, कही सचमुच मेरी जरूरत न पड़ जाए ?”

भौजियाँ इस अप्रत्याशित चोट से तिलमिला उठी थी और डूँगरसिंह नाक पर अँगुली फेरता हुआ, यह गाते-गाते परे चला गया था—

“बानर-नों भोई,
कलेजी में मारी गोछे, लाम-कसी गोई!

मुखड़ी लै ‘नै-नै’ कूँछूँ,
मन मॉं छो होई !···”[१]

खिमुली भौजी तो चुप रह गई थी, पर भिमुली भौजी का काला चरेवा टूट जाए ·· उसके काँटे नहीं झडे। दूसरे दिन ही बोली—“तुम तो टेकुवा बनने की लालसा में ही घुटने टेक दोगे, देवरिया ! पराया पिरेम देख-देखकर, पीले पडते रहोगे, जलते रहोगे उस लकड़ी की तरह, जो धुँआ दे-देकर बुझ जाती है··· आँच तुममें कहाँ ? तुम्हारी उमर के दो-दो बच्चों की च्याँ-म्याँ सुन रहे हैं, पर तुमसे अभी जोरू के नाम पर, जोरू की लटी को फुन्ना भी नहीं लाया गया। छिः, छिः, मर्द होकर, पराई भैंसे दुहना चाहते हो ? नरूली का रूप बहुत रुचता है ?···पर, देवर,

---

१. कलेजे में पलटन की-सी गोली मार गया है तू !···मुँह से तो मैं तुझे ‘ना-ना’ कहती हूँ, पर मन में मेरे ‘हाँ’ ही है···

यह क्यों बिसर जाते हो, कि उसका खसम पलटन में हौलदार है, तुम्हारी तरह 'टेकुवा' नहीं !···"

भिमुली भौजी की बात, डूँगरसिंह को, सर्दी के मौसम की सुबह की हवा-सी लग गई थी, और डूँगरसिंह ने संकल्प कर लिया था—जीना है, तो जिन्दगी में एक बार 'हौलदार' जरूर बनना है !

तब से डूँगरसिंह सपनों में भी लेफ्ट-रैट करता रहा था; कंधों पर बन्दूक-राइफिलें फिराता रहा था; मिलिटरी कपड़ों से भरे सन्दूक देखता रहा था, और नरूली की लटी में रेशम के फुन्ने लगाता रहा था; उसे अपने सूटकेस से निकालकर, बिलायती बिसकूट खिलाता रहा था। और तामलेट का ठंडा पानी, थरमट (थर्मस् फलॉस्क) की गरम चाय पिलाता रहा था।

और आज···

सात बरस की सतत् साधना के बाद, जिस लाम में भरती हुआ, ढेर-सारी तमन्नाओं के साथ, कि जब हौलदार बनकर घर लौटूँगा, तो एक सन्दूक सिर्फ रेशमी फुन्नों और बिलैती बिसकूटों से ही भरके ले जाऊँगा।' गोल्ल देवता[1] बाँया हो जाए गाँधी महाराजा-नेहरू महाराजा की लाम को ! अपनी फैर से अपनी ही टाँग गँवाकर, खुद ही 'डिसमिस' होके, कुवचनिया खिमुली-भिमुली भौजियों के गाँव को लौटना पड़ा।

जब भर्ती होने की आकांक्षा पूरी हुई, हौलदार बनने का सपना आँखों में काजल-सा सँजोया, तब बैरन तकदीर कच्ची मिट्टी के घड़े-सी फूटी, कि डेढ़ पाँव साबुत, आधा पाँव साबर लेकर घर लौटना पड़ रहा है।

---

१. कुमायूँ के एक लोक-देवता।

२

डूँगरसिंह आगे बढ़ रहा था।

मन धूप-लगी बरफ-सा पिघल रहा था, पत्थर पर गिरे आइने-सा टूट रहा था—अब इस लूली जिन्दगी का क्या होगा ?

जब चाँदमारी के 'फैरों' (फायरों) से भी उत्पीड़क खिमुली-भिमुली भौजियों के वचन लगेंगे, और जब नरूली कहेगी—"क्यों, मेरा टेकुवा बनना चाहता था न ? भगवान ने लाठी को तेरा 'टेकुवा' बना दिया है !···ठीक ही हुआ···"

डूँगरसिंह ने गहरी वेदना के साथ अपनी टूटी टाँग और सीधी बैसाखी को देखा। बैसाखी तिरछी पड गई थी। डूँगरसिंह धरती पर गिर गया···पर, फिर भी आँखों में आँसू न आए। मजबूत मिट्टी का बना हुआ आदमी था। मन मजबूत करके, आगे बढ़ने लगा···

चितई नामक पड़ाव पर आके, डूँगरसिंह ने चाय पी। यहीं कुमायूँ के बहुश्रुत लोक-देवता गोल्ल का मन्दिर है जहाँ लोग न्याय की पुकार

करते हैं और न्याय पा लेने पर, न्याय की प्रतीक कांस्य-घंटियाँ मन्दिर में चढ़ाते हैं।

दुखी मन को देवता का आसरा बड़ा होता है। डूँगरसिंह मन्दिर की ओर चला, कि चलूँ, बाल चीर के न्याय करने वाले, दाने-दाने का हिसाब रखने वाले गोल्ल देवता को जौंल हाथ (प्रणाम) कर आऊँ···

मन्दिर-द्वारे पहुँचकर, डूँगरसिंह ने दो पैसे भेंट चढ़ाए। फूल-पाती उठाकर, टोपी के किनारे, सिर पर रखी, जो गांधी महाराजा की लाम की निशानी के रूप में रह गई थी। बैसाखी पर भार दिए, दोनों हाथ जोड़े—"दाहिने होना हो, गोल्ल राजा! जिसने नरूली का प्यार छीनने के लिए, लकड़ी का आधार दिया—ऐसी लाम के लिफ्टीनटों और हौलदारों में से बीज को न रखना! हे परमेसर, मेरी वाणी सुफल कर देना।" —और डूँगरसिंह ने ऊपर खम्भे के सहारे टँगी काँस्य-घंटी घनघना दी। घंटी बजती रही। उस पर घटी चढ़ाने वाले का नाम खुदा था। डूँगरसिंह हिलती घंटी में उस नाम को एक-एक अक्षर मिलाता रहा···हौल···दा···र···च···तु···र···सिं···ह···ने·· गी···

हौलदार चतुरसिंह नेगी?···

नरूली का खसम···?

पारसाल चतुरसिंह यह घंटी गोल्ल देवता के मन्दिर में चढ़ा गया था, कि अगली बार की छुट्टियों में घर आने पर, उसे नरूली की गोद में हरियाली, आँख में उजियाली देखने को मिले।··

डूँगरसिंह ने इधर-उधर देखा। घण्टी को बाँधने वाले तार को जोर से खींचा, पर हाथ कट गया। तब जोर से बैसाखी ठोंककर, उस काँस्य घण्टी को चार टुकड़े कर गया—और उतार का रास्ता नापने लगा।

सड़क की उतार के साथ, जब मन का दंशन भी उतर गया··· डूँगरसिंह पुनः अंतर्द्वन्द्व में उलझ गया, कि लँगड़ी टाँग लेकर जीना तो नामुमकिन है, धौलछीना गाँव में, बैरन खिमुली-भिमुली भौजियों के गाँव में···

सड़क की उतार का आखिरी मोड़ आ गया था।

डूँगरसिंह की आँखों में अन्धकार की पर्तें कच्ची नींद की करवटें-सी बदलती रहीं ··

तो क्या ? तो क्या, तो क्या करे डूँगरसिंह ? इस ऊँची ड्योढी से ढलान की ओर लुढ़क पड़े डूँगरसिंह ? मर जाए डूँगरसिंह ? खिमुली-भिमुली भौजियों और नरूली की छाती ठण्डी कर जाए डूँगरसिंह ?

डूँगरसिंह आखिर करे क्या ?

टाँग न टूटी होती, कहीं तराई-भाबर की ओर चला जाता। मेहनत-मजदूरी कर लेता। बड़े-बड़े मैदानी खेतों के मालिक, बड़ी-बड़ी मूँछों वाले चौधरियों की चौपाल में हुक्का-चिलम भर लेता। दिल्ली शहर, बम्बई शहर चला जाता·· होटलों में बर्तन घिस लेता डूँगरसिंह, कि नैनीताल-शिमला चला जाता, किसी रिटायर्ड-बिलायती साहब के बँगले —और बँगले में रहने वाली मेम साहब—का पहरा भर लेता।···

पर, टूटी टाँग लेकर कहाँ जाए ? सिवा इसके, कि कहीं चौराहे पर टाँग पसार के माई-बाप को दुआएँ दे ? और नरूली का खसम हौलदार चतुरसिंह लाम से छुट्टी पर न-जाने किस राह से लौटे ? और नरूली से कहे, कि डूँगरिया तो भिखारियों का हौलदार बन गया है ? खिमुली-भिमुली भौजियों के बैरी कानों तक खबर पहुँचे, कि देवर डूँगरिया लाम की जगह चौरास्ते में, भिखमंगों की लैन-बटालियन में भर्ती हुआ बैठा है ?···

डूँगरसिंह ने अपनी आँखों को जोर से भींच लिया · "हे परमेसर···"

परमेसर के नाम से, उसे थोड़ी शाँति मिली। उसने सोचा···अपना गाँव, आखिर अपना गाँव है। अपने पिता की जमीन-जायदाद पर आखिर उसका भी तीसरा हक है।

अब के बँटवारा करा लेगा। भागीदार रखकर, खेती करेगा। खुद थोकदार कका (चाचा) या किसी और से थोड़े रुपए उधार लेकर, धौल-छीना में चा-पानी की, बीड़ी-सलाई की छोटी-मोटी दुकान खोल लेगा।

डूँगरसिंह ने देखा, मरने के कारण कम···जीने के रास्ते बहुत-से हैं। धौलछीना गाँव की तलहटियाँ-उपत्यकाएँ, मगन-मन चरती गाय-बकरियाँ और मीठे-मीठे पहाड़ी गीत गाने वाली घासवालियाँ, भें-चिलम[1] बनाके तम्बाकू पीने वाले, और तम्बाकू के धुँए के हर छल्ले के साथ एक रसीला 'जोड़' मारने वाले ग्वाले—सब डूँगरसिंह की आँखों में आ गए। आ-आकर, जैसे न्यौतने लगे—"आओ, डूँगरसिंह! आओ, डूँगरसिंह!' 'तुम्हारे लिए बस सिर्फ हमारे यहाँ जगह है, सिर्फ हमारे यहाँ! आओ, हौलदार···आओ, हौलदार···!"

और, पेटसाल का पड़ाव कब पीछे छूट गया, यह डूँगरसिंह जान भी नहीं सका। पीपल के घने पेड़ की छाया में, चबूतरे पर बैठते हुए, उसने एक सर्द साँस खींची · काश, कि वह आज 'हौलदार' ही बनकर लौट रहा होता?···

१. मिट्टी के अन्दर छोटी-सी सुरंग बनाकर, तम्बाकू पीने का साधन।

की चाय के। घोड़ा-मार्का या पानसुन्दरी.बीड़ियाँ। धूनी के यहाँ की तम्बाकू। भट्टी पर चढी रहने वाली चाय की केतली। उलथे पडे पीतल-कलई के कुछ गिलास। थोड़ी-बहुत मिठाई-जलेबी, जिसकी बिक्री मायके जाने वाली ब्वारियों (बहुग्रों) ग्रौर ससुराल जाने वाले जमाई-समधियों में हो जाती है ''ग्रौर ठेकी-दो ठेकी दही, लगन-बारात के दिनों में जो ग्रवसर हाथ-शकुन के लिए, ऊँचे दामों पर बिक जाती हैं'''

कमी-बेशी यही स्थिति हर दुकानदार की थी। पर, पिछले दो-चार वर्षो से चनरसिंह की दुकानदारी ग्रौरों से जोर मे थी। धौलछीना के पड़ाव-भर में वह सबसे जोरदार दुकानदार था।

चनरसिंह खिमुली का खसम था, देवसिंह भिमुली का। चनरसिंह दुकानदार था। देवसिंह धौलछीना-बेनीनाग लैन में हरकारा। दोनो जुवे में जुते बैल थे। तीसरा भाई डूँगरसिंह बिना जोते बछडे-सा था। जैसे बिन जोत का बहौड़ (बछडा) मूत-मूतकर खड्ड खोदता रहता है ग्रौर घुटने टेककर 'डुक्क' मारता रहता है'' डूँगरसिंह भी गृहस्थी के नफे-टोटे से बेखबर, निगरगंड फिर रहा था। बयार जाने किधर बहती थी, डूँगरसिंह के ग्रँगूठे से!

भिमुली भौजी बड़ी गिदार थी। उसके पिता टीकमसिंह पट्टी रीठागढ के प्रसिद्ध 'बैरिया' (लोक-गायक) थे। ग्रलमोड़ा शहर की रसवंती-रूपवंती बौराणियों की सौन्दर्य-उज्जयिनी के कालिदास थे वह, कि जब नन्दादेवी के कौतिक (मेले) में 'बैर' गाने ग्राते, तो शहर की छतों पर रंगीले घाघरे-पिछौड़े ही नजर ग्राते थे। सो गिदार-मन भिमुली को विरासत में मिला था। यहाँ उसकी साथी गोविन्दी थी। दोनों मिलकर, वनांचल की ड्योढ़ियों-तलहटियों में ऐसे मीठे-रसीले गीत गातीं, कि राह-चलते घोड़िए ग्रपने खच्चर हाँकना ग्रौर नौकरी-चाकरी की खोज में घर से निकले जवान पलटन में भर्ती होने का विचार ही भूलने लगते थे।

गोविन्दी थोकदार जमनसिंह की लाडली थी। थोकदार जमनसिंह

धौलछीना गाँव के प्रतिष्ठित मुखिया थे। बड़े फर्सकिया (वार्ताप्रिय) और पाहुन-प्रिय थे। गाँव-भर में उनकी प्रतिष्ठा थी। पर, इधर कुछ स्थिति डाँवाडोल हो चली थी। बड़ा सुखी परिवार था कभी। पर, क़रमसिंह क्या मरा···घर की सुख-शाँति भी ले गया। करमसिंह थोकदार का मँझला बेटा था।

बड़ा बेटा गोबरसिंह था। घर की ओर से लापरवाह। उसे जितना लगाव अपने बिनुवा-चुनवा बैलों से था, उतना लोक-परलोक की संगिनी लछमा से भी नहीं; पर, लछमा थी, कि जैसे तेज हवा। सारे घर में फरफराती फिरती थी। गोबरसिंह घर-गिरस्ती की और बातों से भले ही लापरवाह रहे, पर बच्चे पैदा करने की दिशा में लापरवाही लछमा उसे करने नहीं देती थी, सो ईश्वर की दया से, नौ मुँह के सामने थे और दसवाँ पेट में। करमसिंह की जेंता बिन गोद-भरे ही विधवा हो गई थी। सो लछमा ही घर की घरिणी थी। जैंता को वह अमंगला समझती थी, सो खुद जैंता के अमंगल में लगी रहती थी।

थोकदार का सबसे छोटा बेटा जसौतसिंह था। गोविन्दी से बड़ा···! धौलछीना गाँव-भर में यही चर्चा थी, कि भाई, थोकदार हो, तो जमनसिंह और दुकानदार हो, तो चनरसिंह-जैसा। तेज स्वभाव और वाणी की क्षिप्रता के लिए, जहाँ लछमा ब्वारी का नाम आगे आता था, अपने गिदार और विनोदी स्वभाव के लिए खिमुली-भिमुली भौजियाँ अपना झंडा ऊँचा रखती थीं। प्रेमियों में जसौतसिंह, प्रेयसियों में गोविन्दी गाँव की ग्वालनों और ग्वालों की मन-वाणी में बसे थे।

बैलों में नाम चनुवा-बिनुवा का आता था, कि उनके शरीर पर बैठने वाली मक्खी भी जोर से भिनभिनाती थी और अपनी शैतानियों के लिए, लछमा ब्वारी का बड़ा बेटा रमुवा याद रखा जाता था, कि गाँव के उपन्याठी[1] ग्वालों का वह राजा था और उसने मगनुवा बोकिया

---

१. उपद्रवी।

पाल रखा था, जो बकरियों को कम, औरतो को ज्यादा छेड़ता था।

यो दुकानदार चनरसिंह और थोकदार जमनसिंह के कुटुम्ब धौल-छीना गाँव की ज्योटी[1] में कस्तूरा मृग की नाभि की कस्तूरी-जैसे बसे हुए थे।

---

१. नाभि।

४

थोकदार की प्रसिद्धि उनके वार्ताप्रिय और पाहुन-परायण स्वभाव के कारण थी। घर आम सड़क से दूर न था, सो अक्सर जात-बिरादरी के लोग 'राम-राम' करने चले आते थे, कि चलो, थोकदार के यहाँ भरी चिलम, सेंकी रोटी मिल जाएगी। पर, लछमा ब्वारी को ससुर की यह बात पसन्द न थी।

"अरे, सौरज्यू को क्या?" वह अक्सर गोबरसिंह के कानों में तेल डालती रहती थी—"ढलान में के सूरज हैं, अब ढले, तब ढले। देवर जसौंतसिंह को अपनी कफुलियों (प्रेयसियों) से और ननद रमौती को अपने रूप-सिंगार से फुर्सत नहीं है। ननद गोविन्दी तो वैसे भी पराए घर की बर्तन ठहरी—पराए चूल्हे की पकाने वाली, पराए ऊखल की कूटने वाली···जैंता को क्या है? आगे-पीछे कोई है नहीं। पर, मेरा क्या होगा? तुमने तो वैरी जन्माने थे, पैदा करके रख दिए। पत्थर मारने वाले को क्या है, जिसे लगती है···वही 'दैया-मैया' चीखता है।

घन पत्थर पर पड़ता है, चोट मछली को लगती है।"[1]

फिर अपने, होने वाले को मिलाकर, दसों बालकों का हवाला देते हुए, कहती—"मैं न रहूँगी, ये सब बिना ग्वाले की बकरियों की तरह दिशा-विदिशा भटकेंगे। फिर कहती हूँ, सँभलो। अपनी घर-गिरस्ती को सँभालो। नही तो, बिना घोंसले के पंछी की तरह तरसते रह जाओगे।"

पर, गोबरसिंह के पल्ले कुछ नहीं पड़ता था। वह तो लछमा से सिर्फ इतनी ही अपेक्षा रखता था, कि समय पर खाना-सोना हो जाए। बेटों से भी उसे लगाव न था। तम्बाकू भरकर दे जाते वखत पर, तो 'शाबास, बेटे!' कह देता···कहा न सुनते, तो 'कठुवा साले' कहकर, मुँह फेर लेता। प्यार नाम की चीज उसके हृदय में सिर्फ चनुवा-बिनुवा बैलों के लिए थी।

पर, लछमा धरती से लग-लगकर गिरस्ती को सँभाल रही थी। सात बच्चे स्कूल जा रहे थे। रमुवा लगातार तीन साल अपर-प्राइमरी और फिर लगातार दो साल मिडिल में फेल होकर, मास्टरों के परिवारों से अपने मगनुवा बोकिया के रिश्ते जोड़ रहा था। फिर भी समस्या बनी थी, कि ब्रह्मा कहीं दाहिने बैठ गए, तो रमुवा को अलमोड़ा के 'गवरमैनटी हैस्कूल' में भेजना पड़ेगा। आगे-पीछे छोटा सबलुवा भी मिडिल में पाँव रखने जा रहा था। अभी से कुछ बचाकर न रखा गया, तो समय पर आकाश की ओर देखना पड़ेगा।

सो, लछमा इस प्रयास में थी, कि जैंता, जसौतिया और रमौती... इन तीनों के पाँव गाँव से बाहर निकलें, तो थोकदार की जायदाद में हिस्सा बँटाने और खेतों में ओड़-अटक डालने वाला कोई न रहे।...

---

१. पहाड़ी नदियों में गोल-चपटे पत्थर बहुत होते हैं और उनके अन्दर मछलियाँ आश्रय लेती हैं। मछलियाँ मारने के लिए लोग घन से पत्थरों के ऊपरी भाग पर जोर से आघात करते हैं।

लछमा को आगे बीतने वाली अभी से दिखाई दे रही थी।

जसौंतसिंह की यदि शादी हो गई, तो बच्चे होंगे ही ? बच्चे होंगे, थोकदार की जायदाद में हिस्सा बँटाएँगे। अभी तो एक परिवार है, निभ रही है। कल बँटवारे की नौबत आई, तो ?···

तीसरा भाग ही तो गोबरसिंह के हिस्से में आएगा ? तब कैसे अपने बच्चों की परवरिश हो सकेगी ? गोविन्दी की झगुली उतारने के (शादी के) दिन निकट आ रहे थे और जसौंतसिंह के भी सिर मुकुट लगाने, हाथ आईना थमाने के। थोकदार को लछमा जानती थी। घर में जो हजार-दो हजार पड़े हैं, अपनी जगह नहीं रहेंगे।

सो लछमा हर कदम सँभलकर रख रही थी। वह थोकदार की सारी तलाऊँ-उपराऊँ भूमि पर केवल अपने बालकों के हल चलते देखना चाहती थी। उसने सोच लिया था, अपने बाल-बच्चों का मुँह पहले देखना है। दया-धरम तो वह रखे, जिसे गाँठ से खोने हों और आगे-पीछे कोई च्यों-म्यों करने वाला न हो···

५

डूंगरसिंह ज्यों-ज्यों गाँव के निकट आता जा रहा था, मन को मजबूत करता जा रहा था। लाज-संकोच और भय रखने से तो भौजियों के बीच दिन कटने से रहे। गीला मन, ढीला तन देखते ही हवा भी धक्का देने लगती है।

डूंगरसिंह ने सोच लिया, दिन काटने हैं, तो ढीठ और पुरुषार्थी बन कर जीना पड़ेगा। भौजियों के बाण-बचनों को तूल देता रहा, तो बैरनें प्राण न रहने देंगी। आँखों में काला कपड़ा बाँधकर, खड्ड की राह सुझाने वाली हैं। ये दो ही अगर, नरूली की बात को लेकर, डूंगरसिंह के मन को इतना नीचा-ऊँचा न करतीं, तो लाम में भर्ती होने की नौबत ही क्यों आती?···

नरूली की स्मृति आने से डूंगरसिंह का मन काँप गया। सीधी बैसाखी, टेढ़ी टाँग देखेगी, तो बैरन ऐसे बचन मारेगी, कि लगेगा, डूंगरसिंह को आरे से चीर रही है, कोल्हू में पेर रही है।

उसे याद आया···

जब वह गाँव से चला था, नरूली गात से दोहरी थी। भगवान् करे, फल देते समय वृक्ष टूट के गिर जाए!···नरूली की इस अमंगल-कामना से, डूँगरसिंह स्वयं ही सिहर उठा।

फिर याद आने लगे भिमुली भौजी के गीत।

डूँगरसिंह जब कभी दूसरे गाँवों से धौलछीना के वनांचल में घास काटने आई किसी तरुणी को छेड़ता, और बात-शिकायत खिमुली-भिमुली भौजियों के कानों तक पहुँचती, तो भिमुली भौजी हँस-हँसकर गाती—

"भैंसी पड़ी खाव,
हाथ में काँगिल त्यारा, गल में रुमाव—
माछी कूँछे, भिकान हाथ···फुटिया टिपाव!
हल हुणी मरि जाँछे, रिभड़ को काव!
देवरा डुँगरसींगा, धन तेरी काव!···"[1]

अरे, ये दो दुर्वचनिया भौजियाँ न होती, तो डूँगरसिंह सचमुच तालाब-पडी भैंस-सा गगन-मगन पड़ा रहता। चुपड़ा खाकर, मीठा पीकर, घर से बाहर निकलता, तो हाथ में कंघी होती और गले में रेशमी रूमाल बँधा रहता। मुरली बजाता जाता, सीटी देता लौटता। पर, मर जाए, खिमुली-भिमुली भौजियों को पालने वाला, इन्होंने न इस धार

---

१. देवर डूँगरसिंह हो, धन्य है तेरी लीला! जैसे भैंस तालाब में पड़ी रहती है, ऐसी बेफिक्री से तू घर में पड़ा रहता है, और बाहर निकलता है जब घर से, तो···हाथ में तेरे कंघी रहती है और गले में रेशमी रूमाल बँधा रहता है। यों छैला बनकर, जो तू औरों की बहू-बेटियों को छेड़ता है···सो, तू उस बैल-जैसा है, जो खेत जोतने के नाम पर तो गर्दन धरती पर टेकता है, लेकिन लड़ने के लिए घुटनों से खड्ड खोदता है। पर, क्या करें, किस्मत तेरी फूटी हुई है, कि मछली पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाता है, तो उसमें मेंढक ही आता है!···

का रहने दिया, न उस धार का। कदम धरते-उठाते ऐसे बोल मारती, कि 'काँटा पाँव में लगने से, सिर के बाल खड़े हुए', वाली बात सामने आती थी।

और अब तो स्थिति और भी बुरी थी।

डूँगरसिह सोचता रहा...अब गाँव मे जीना है, तो खिमुली-भिमुली भौजियों का दोछनिया-स्वभाव छुड़ाना ही पड़ेगा।

गाँव करीब आ गया था।

o o o

"डूँगरिका (डूँगरसिह चाचा) आ गए हैं!"···अपर स्कूल से मोती राम मास्टर की चपत खाकर घर लौटता हुआ, चनरसिंह का बेटा दिवान जोर से चिल्लाया—"इजा, इजा![1] डूँगरिका आ गए हैं पलटन से।"

डूँगरसिंह, इस समय मिलीटरी-पोशाक में था।

खिमुली उत्साह से और उत्सुकता लिए, घर से आँगन में आई··· बैसाखी एक ओर रख डूँगरसिह आँगन की दीवार पर एक ओर बैठ रहा था। खिमुली की दृष्टि डूँगरसिंह की बाँए पाँव पर पडी, तो व्यथा से चीखने-चीखने को हो गई। सिर पर आँचल ठीक करती, डूँगरसिह की ढिग चली आई। डूँगरसिंह स्थितप्रज्ञ-सा बैठा रहा। ढोक नही दी।

सूखे पाँव की ओर इंगित कर, करुण स्वर में, खिमुली बोली—"यह क्या कर लाए, डूँ·· ग · र···सिं···ह···।"···

खिमुली भौजी को अपने नाम का एक-एक अक्षर मिलाते देख, डूँगरसिंह सोचने लगा—कहीं मेरी टूटी टाँग के लिए कोई 'जोड' (व्यग-छंद) तो तैयार नहीं कर रही है?

रुखे स्वर में बोला—"अरे, देवनिया!···बेटे, एक गिलास पानी ले आ। गला सूख गया है।" और खिमुली भौजी की उपस्थिति भुलाने के लिए मुँह से हल्की-हल्की सीटियाँ देने लगा।

खिमुली का ध्यान देवर की बेरुखी की ओर नहीं था। बोली—

---

१. माँ।

"ठहर जा, दीवान बेटे ! पानी मैं लाती हूँ, तू जा। अपने पिताजी को दुकान से बुला ला, कि डूँगरिका आ गए हैं। खाना भी बन गया है। दोनों भाई साथ-साथ खा लेंगे"···

डूँगरसिंह ने सोचा···भौजी दाज्यू को बुलाकर, उन्हें मेरी दुरगत दिखाना चाहती है। उसका मन भौजी के प्रति घृणा से भर उठा। भात खाते समय जब धोती पहनेगा, उसका लँगडापा और खुले रूप में सामने आएगा। भौजी उसका तमाशा बनाना चाहती है। जोर से बोला—"ठैर, रे, दिवान ! दाज्यू खाने को तो घर आएँगे ही। तू बुलाने जाके क्या करैगा ?"

खिमुली अन्दर जाकर, गिलास-भर छाँछ ले आई थी। सस्नेह बोली—"लो, डूँगरसिंह, छाँ पी लो।"

"मैंने तो पानी मँगाया था ?..." डूँगरसिंह अटपटे स्वर में बोला।

"खाली पेट पानी पीने से, तबीयत खराब हो जाएगी, देवरा !" खिमुली ने आग्रहपूर्वक छाँछ का गिलास हाथ मे थमाना चाहा—"इसीलिए, छाँछ ले आई हूँ। ताजी, सवेरे की ही बिलोई है।"

जगल से भिमुली भौजी भी लौट आई थी। घास का गढौल (गठरा) सिर से गिराती हुई, खुशी-खुशी बोली—"राजी-खुशी आए हो, हौलदार देवर !" उसके होंठ ऐसे फड़क रहे थे, जैसे अभी-अभी कोई मद-भरा गीत गुनगुनाकर आई हो। उसने अभी डूँगरसिंह की टूटी टाँग न देखी थी।

डूँगरसिंह ने सोचा, ये दोनों भौजियाँ उसका जी दुखाना, मजाक बनाना और उस पर व्यंग करना चाहती है···उसे लगा, राहु-केतु एक स्थान पर आ गए हैं। उसने बैसाखी टेकी और, बिना कोई उत्तर दिए ही, सामने थोकदार जमनसिंह के घर की ओर बढ़ गया।

खिमुली-भिमुली भौजियाँ—"डूँगरसिंह, डूँ···ग···र···सीं···ग !" करती रह गई।

"थोकदार कका !"—आँगन की दीवार पर बैठते हुए, डूँगरसिंह ने आवाज दी। पर, थोकदार घर पर नहीं थे। भैंसों को पानी पिलाने गए थे। लछमा, गोबरसिंह और जसौंतसिंह खेतों पर गए थे, रमौती बन घास काटने गई थी। घर पर, सयानो में सिर्फ जैंता थी। लछमा के बालक स्कूल जाने वाले स्कूल, घर रहनेवाले गुल्ली-कबड्डी खेलने चले गए थे। दो बरस का रतनुवा, अपनी नाक पर मक्खियों से घोंसला बनवा रहा था। और दिनों, घर पर अधिक लछमा ब्वारी ही रहती थी। पर, इधर उसे आठवाँ महीना चलने लगा था, सो थोकदार उसका पकाया खाते नहीं थे। जैंता ही रसोई सँभाल रही थी।

"थोकदार कका !"—डूँगरसिंह ने और ऊँचे स्वर में आवाज दी। जैंता बाहर आई। डूँगरसिंह को देखा। डूँगरसिंह करमसिंह से वय में छोटा ही था, सो जैंता को 'भौजी' कहा करता था।

जैंता इस समय रसोई बना रही थी, सो सिर्फ एक धोती पहने थी। उसका तारुण्य अनढँके-अधढँके अंगों से वसन्त-ऋतु की कोपलों-सा फूट रहा था। हेरी दृष्टि समुद्र को चली गंगा-सी लौटती न थी, उसका रूप-यौवन यों निखरा-सँवरा था। साँचे में ढली-सी उसकी देह-यष्टि··· सीढ़ियाँ उतरते उसके स्तनाग्र बुलबुल के बच्चों की तरह झाँकने लगते थे, धोती के अन्दर से। केवल एक वस्त्र में, आज वह एकादशी के व्रत-सी निर्मला लग रही थी, पर डूँगरसिंह की आँखों में वासना का विषधर कुण्डली मारकर बैठ गया।

जैंता ने बड़े दुःखी मन से डूँगरसिंह को देखा···हौलदारी का फीता, तस्मा बाँधकर लौटने की जगह, आधी लचकती टाँग लिए लौटा है ?···

"डूँगरसिंह हो···"

डूँगरसिंह जैसे तन्द्रा से जागा—"अच्छी-भली हो, भौजी ?"

"मैं तो भली ही हूँ, काल अपने घर नहीं ले जाता। मेरा घर उजाड़ के, ऊँची खाट जा सोया है।" जैंता दुःखी स्वर में बोली—"पर, यह तुम क्या कर लाए, हौलदार देवर ?"

खिमुली-भिमुली भौजियाँ 'हौलदार' कहतीं, तो डूँगरसिह को नश्तर लग जाते । जैंता ने कहा, बात मीठी लगी । पर, तड़फ के रह गया··· काश, आज 'हौलदार' ही बन के लौटा होता ?······

कुछ लोग ऐसा मन पाते हैं, कि हर किसी के दुःख से दुख जाता है और हर किसी का सुख रुचता है···जैंता ने भी ऐसा ही सहज संवेदनशील मन पाया था ।

"थोकदार कका घर में नही है, क्या भौजी ?"—डूँगरसिंह ने, पूछी बात टालते हुए, पूछा । फिर सुविधापूर्वक बैठते हुए, बोला—"गला अखर गया है, भौजी !"

"सौरज्यू तो भैंसों को पानी पिलाने गए हैं, और जेठानी, जेठज्यू और जसौंतसिंह···ये सब खेतों में काम पर गए हैं," कहकर, जैंता अन्दर गई । गिलास-भर छाँछ लेकर लौटी—"अभी खाना तो न खाया होगा ? अलूने पेट पानी नहीं पचेगा । छाँ ले आई हूँ । ताजी तो नहीं है, कल शाम बिलोई थी । कुछ खट्टी हो चली है ।"

डूँगरसिह उस खट्टी छाँछ को, मीठी लस्सी-सी गटागट पी गया ।

० ० ०

थोकदार भैसो को पानी पिलाने से लौट आए थे । डूँगरसिंह ने उन्हें "पैलाग काकज्यू !" कहा और उनकी चरण-धूलि उठा, माथे से लगा ली । उसकी इस श्रद्धा से थोकदार गद्गद् हो गए । आशीर्वाद देते हुए, ठीक से बैठने को बोले, तो पाँवों की ओर दृष्टि गई । पूछा—"यह क्या, रे डुँगरिया, पॉव को क्या कर लिया ?"

डूँगरसिंह सहज भाव से बोला—"गांधी महाराजा की लाम के जज्ञ में आहुति चढा आया हूँ, काकज्यू !"

"कहीं मोर्चे पर गया था क्या ?"—थोकदार ने प्रश्न किया । तब तक पास-पडौस के दो-चार जन राम-राम कहते, आदर-कुशल पूछते चले आए थे । नरूली और रमौती भी घास-वन से, अभी-अभी लौटी थीं । घास के गढौल गिराकर, पुलियाँ सहेजते हुए, उन्होने भी कान इधर ही

लगा रखे थे। किसनसिंह नेगी और थोकदार जमनसिंह विष्ट की बली-पली देहरी-साँकल थी। एक ही बड़े मकान के, आधे-आधे में रहते थे।

नरूली को कनखियों से हेरता, डूँगरसिंह काँप-सा गया। झट से सूखी टाँग को दाहिनी टाँग की ओट कर लिया और नरूली की उपस्थिति से बेखबर-सा बोला—"काकज्यू, इस लाम के मोर्चे से तो आँखों में मिर्ची भली। अरे, जिस राज के सिक्के पर राजा-रानी की फोटू ही नही होगी, उसकी लाम में भर्ती होने वाले की मति बिसरी, तकदीर पसरी ही समझिए। लाम तो, बस, बिलैतवालों के बखत में थी। क्या बात थी उसकी·· जनम-राजा, करम-राजा थे। सिर पर या ताजै ही रखते थे, या टोप ही। टोप को भी दूसरा ताज समझिए। जिसके सिर पड़ गया, उसका रुतबा उठ गया। अपने बालकिसन पाँडेजी की ही बात ले लीजिए। अंग्रेजों के जमाने में सिर्फ तहसीलदार थे। पर, टोप क्या पहनते थे सिर पर, जैसे महाराजा बिकरमादित्त का राजमुकुट समझ लीजिए। सारी तल्ली-मल्ली लखनपुर पट्टियाँ उनके नाम को 'सलाम सैप !' करती थी···और अब गांधी महाराजा के जमाने में कमिश्नर बन गए है, पर टोप क्या उतारी, दो-पलिया टोपी क्या सिर पर पड़ी—सारा मान-गुमान ही पड गया। चपरासी को चपत मारी थी, उसने पालियामेनट मे अपीली ठोक दी। बेचारों की कमिश्नरी तो गंगा नहाने चली ही गई, साथ में, तहसीलदारी का रुतबा भी गया-काशी चला गया···बिलैतवालो के राज में उनका कोई टोपवाला चपरासी भी किसी देसी राजा को 'फैर' मार के ठण्डा कर दे, तो 'फैर' ही सुनाई पडती थी, रपोट (रिपोर्ट) नहीं, काकज्यू ! इसे कहते है, इन्साफ ! इसे कहते हैं, राजशाही ! अब तो राज कहाँ रह गया, पचैत हो गई है। शेर-सियारों की एक पँगत बैठने लगी है·· "

डूँगरसिंह धारा-प्रवाह बोलता जा रहा था। अस्पताल में, युद्ध-क्षेत्र के जो अनुभव उसने घायल सिपाहियों से सुने थे, वे सब आज काम आ रहे थे। सभी लोग बड़ी तन्मयता के साथ सुन रहे थे। डूँगरसिंह की

प्रतिभा का सिक्का सब पर जमने लगा था। उन्हें कहाँ इतनी बातें मालूम थीं ?

थोकदार ने हुक्का भरवा लिया था। चाय की केतली चढ़वा दी थी। 'चिलमसार'[1] लगाते हुए, बोले—"देश जाने से बेटा, खेत जाने से बैल सुधरता है।"

डूँगरसिंह कहता रहा—"सुनो मेरी दास्तानी, मेरी कहानी, काकज्यू !···जैसे ही यहाँ से भर्ती होके गया, पहले ही महीने में राइटन-लैफ्टन, अटेंशन-अबोटन और कुकमारच-डबलमारच ! 'अबोटन' जरा गलत हुआ नहीं, कि 'हौल्ट' !···"

'हौल्ट !' कहते हुए, डूँगरसिंह ने अपने पाँव को जोर से आँगन के पाथर पर पटका। जोर की आवाज तो हुई ही, झन्नाटा डूँगरसिंह के बाएँ पाँव तक जा पहुँचा, सो डूँगरसिंह को थोड़ा ठहर जाना पड़ा, पीड़ा के कारण। गाँववाले इसे 'हौल्ट' की विशेषता समझ रहे थे, कि 'हौल्ट' का मतलब 'ठहरो !' बहुत-से सुनते आए थे।

"···और 'हौल्ट' में कहीं पाँव आड़े-तिरछे पड़ा नहीं, कि 'डैमफूल' तो बिलैतवाले भी कहा करते थे, जिससे सिपाही का रुतबा ऊपर उठता है···इस लाम में 'ग्वैन !' कहते हैं। बस, जिससे 'ग्वैन' कह दिया, उससे गुवैन (दुर्गन्ध) ही आई समझिए !··"—डूँगरसिंह फिर गाँववालों को अपनी बातों मे ले गया—"घर पर पिताजी बैल जोतना सिखाते थे, तो एक फसल का टैम बैलों का नाम कैसे पुकारना, इसी में लगा दिया था · गांधी महाराजा की बगैर टोप की लाम में भरती होके क्या गया, कि सात शनिश्चर एक कुकमारच-डबलमारच में सामने आ गए !···तीन महीने की 'टरेनिंग' मे ही सात जात की मशीनरी वाली बन्दूक थमा दी मेरे हाथ में। चाँदमारी की फैर·· अपना ही पाँव···खैर, मै तो, काकज्यू, आपकी कृपा से···एक ही महीने मे सारी मशीनरी समझ गया था। पर

---

१. साझे की चिलम।

में गुलेल चलाने की आदत थी। बन्दूक भी तान के उठाई। हफसर खुश हो गया—'औलरैट'···'औलरैट' का मतलब समझते हो, काकज्यू ?··· याने कि, कम्पली ! तैयार, हुशियार !···"

डूँगरसिंह एक-एक शब्द को गंभीर ध्वनि दे रहा था। वह गाँव-वालों के ऊपर अपनी प्रतिभा का रौब छा देना चाहता था, जिससे पाँव का लँगड़ापन हँसी का उपकरण न रह जाए। यह झूठ-मूठ ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहता था, जिससे पाँव का लँगड़ापन उपहास का नहीं, गौरव का प्रतीक बन जाए।

"हफसर ने 'औलरैट' कहके मेरी सिफारिश नेहरू महाराजा के दरबार तक पहुँचा दी। बस, क्या था, वहाँ से 'औडर' का तार आ गया—'वैल, जैहिन्द ! डूँगरसिंह बिष्ट, कुमाऊँ बटैलन नम्बर सैवन, क्वाटर नम्बर टैन, लैन नम्बर नैन···औलरैट ! हुशियार ! तैयार !·· जैहिन्द ! कश्मीर की लड़ाई ! दुश्मन के वास्ते तुम 'फैर' !···फौरन कुकमारच ! डबलमारच, जैहिन्द !···" तीन महीने की पलटन की नौकरी में सुने-सीखे अंग्रेजी शब्दों का लड़ाई में बन्दूक की, बीमारी में दवा की गोलियों की तरह प्रयोग करते हुए, डूँगरसिंह ने बताया, कि उसे कश्मीर की लड़ाई में भेज दिया गया।

किसनसिंह नेगी भी वहीं बैठे ही थे। चिंता से बोले—"अपना चतुरिया भी तो, शायद, काश्मीर फरन्ट में ही गया है, डुँगरिया बेटा···"

डूँगरसिंह ने कनखियों से देखा, उस तरफ खड़ी नरूली के कान खरगोश के हो गए हैं। वह बँधी पुलियों को खोल-खोलकर, फिर से बाँधने लगी थी।

"हाँ, किसनू का ! उसे भी हफसर ने मेरे साथ ही 'औलरैट' कह दिया था। नेहरू महाराजा के दरबार से उसको भी तार आया था···" डूँगरसिंह बोला—"हम साथ-साथ, एक ही 'ऐरोपलैन' में बैठ के, एक ही किसम की बूट-पट्टी पहन के, एक ही किसम की रैफल कधे पर रख के गए थे।"

"तो यह तुम्हारा पाँव भी कश्मीर फरन्ट···"

"और नहीं तो क्या कहीं हिरन का शिकार खेलने में ?"—प्रश्नकर्त्ता की ओर भारी आँखों से देखते हुए, डूँगरसिंह बोला—"कश्मीर फरण्ट की लड़ाई का क्या बयान करूँ, काकज्यू ! बड़ी जबरजंग, सात धरती, सात खण्ड । ऊपर हवैजहाजों का गुगाट-डुडाट, नीचे से रैफलों की ढाँय-ढाँय—आसमान से बमों की धड़ाम-फड़ाम, कि बिना बादलों के बज्र पड़ते वहीं देखे । चारों ओर भुभाट-फुफाट ! हफसरों का टिटियाट,[१] सिपाहियों की कुकाट[२]···बबा रे, इजा रे !···धड़-धड़ाम, पड़-पड़ाम, भड़-भड़ाम···!···"

सारे वातावरण मे एक आतंक-सा उत्पन्न कर दिया था, डूँगरसिंह ने । वह सोच रहा था, यही समय है, गाँव वालों पर अपनी बुद्धिमता और रौब को छा देना चाहिए, नहीं तो, लँगड़ा पाँव लेकर, खिमुली-भिमुली और नरूली भौजियों के गाँव में जीना दाँत-तले का रहना है··· साँपों के बीच सँपेरा बन के ही जिया जा सकता है, दूधिया बनकर नहीं ।

"हौलदार बेटे, डुँगरिया !"···किसनसिंह नेगी घबराई आवाज में बोले—"अपने चतुरिया की क्या खबर है ? कश्मीर फरन्ट में तेरे ही साथ था न ?"

मूल प्रश्न को टालकर, डूँगरसिह अपनी ही रौ में बोलता गया—"किसनू का, फरन्ट में भेजने से तो बेटों को घर पर ही जहर दे देना चाहिए । सन् चौद की जर्मनी-जपैन की लड़ाई में सारे पिढौरागढ़ के इलाके में औरतों को हल जोतना पड़ा था··· इतने आदमी मारे गए थे कुमाऊँ के । बिलैतवालों की लाम का कप्तान घर का मुँह न देखने पाए, उनकी लाम के लिफ्टीनंटों को खाना ही नहीं पचता है । सुना है, उनकी लाम में बडे-बड़े हफसर सब जुद्ध के देवता हैं ।"

क्षण-भर ठहरकर, नरूली को विशेष रूप से सुनाने की गरज से,

---

१. रुदन । २. चीखें ।

डूँगरसिह बोला—"किसनू का, जब लाम के जुद्ध में रैफल दनकने लगती है, बम फटाम फूटकर धरती-आकाश की आपस मे भेंट कराने लगते है··· चारों तरफ चील-कौवों का ही कौतिक (मेला) नजर आता है— लाशें-ही-लाशें ! मुर्दे-ही-मुर्दे ! मै तो घबरा गया था। पर, मर जाए चलाने वाला बिलैत वालों की बोली को, हफसर ने 'हौल्ट' क्या कहा, मैं क्या भाग पाता, मुझे चलता हुआ सूरज रुकता नजर आया। हफसर ने 'कुक-मारच' कहा···मैं रैफल लेकर, फरन्ट में कूद पडा। काकज्यू, यह बिलैत-वालों की बोली है न, यह जीने का मोह दूर कर देती है। यह मौत की देवी है। इसमे 'औडर' पाते ही बेटा बाप की छाती में सगीन लगा देता है··· इसीलिए, लाम से यह बोली निकाली नहीं जाती, कि इस बोली के निकलते ही गांधी महाराजा-नेहरू महाराजा की लाम भी गांधी महाराजा के धरम अहिनसा परमो में चली जाएगी··· अनहिसा-परमा-धरमा ! इसका मतलब होता है, काकज्यू, किसी को गोली मत मारो। धन्य, धन्य हैं गांधी महाराजा ! धरती पर दूसरे परमात्मा हो गए। वह अगर होते, तो काहे को मेरी टाँग···"

खाँसी के बहाने बात यहीं रोककर, फिर बात आगे बढाई डूँगरसिंह ने—"तो, काकज्यू, मैं कश्मीर फरन्ट की बात कर रहा था··· दैत्याकारी कबैली पठान बेटों ने जब हम पर हमला किया, मैंने दाज्यू चतुरसिंह स कहा, कि देश की रक्षा का भार गांधी महाराजा के राजकुमार ने हमें सौपा है आज। वचन खाली न जाने पाए··· पर, पठान बेटों की बात भी और थी··· हमारी नजर सरग-की-सरग, पाताल-की-पाताल रख गए। हमारे साथ के सिपाहियों को कद्दू-मूली-सा काट गए रैफलों से, कि छठी का दूध, नामकन[1] का भात याद आ गया। जाई का फूल, गाई का दूध याद दिला गए···"

अपने मिथ्या-प्रलाप की औरों पर प्रतिक्रिया देखने के लिए, थोडा

---

१. नामकरण-संस्कार।

रुक गया डूँगरसिंह । उसने देखा, नरूली के माथे पर पसीना चूने को हो आया है ।

कहता गया—"जमदूत से आठ पठान मेरी छाती पर ·· मैंने समझ लिया, हफसर ने हाथ में सात जात की मशीनरी वाली रैफल थमाकर, 'कुकमारच !' क्या कह दिया है, बैतरनी के घाट भेज दिया है । फिर मैंने सोचा, अपना बिनसना आ गया, तो औरों के मुँह क्या देखना ·· काकज्यू, मैंने नाम लिया, जै मैया काली का, बरमा की बेटी, इन्दर की साली का, हाथ में खप्पर वाली, काली कलकत्तावाली का, कि मैया, आज वचन न जाए तेरा खाली··· पीठ के पुट्टू (पलटनिया झोला) से निकाला हण्ड-गिरनट··· धरती पर फेंका, आकाश में हाहाकार !··· पठानों का न कोई तर्पण करने वाला, न पिंड देने वाला, न नाम-लेवा, न काठ-देवा !··· पर, इस महाजुद्ध में एक पठान की गोली मेरे पाँव पर भी बैठ गई··· फिर भी मैं लड़ता रहा । शाम को अस्पताल में आँख खोली । हफसर कह रहा था—"वेल ! ··" परसों फिर नेहरू महाराजा के दरबार से तार आया—'हौलदार डूँगरसिंह, कुमाऊँ बटैलन नम्बर सेवन, जैहिन्द, कश्मीर की लडाई··· बहुत-बहुत बहादुरी ! अभी पाँव की बद-किस्मती··· पेन्शन · रिलीज ··डिस्चारज···जैहिन्द···" तार के नीचे खुद नेहरू महाराजा के दसखत थे ।"

सुनने वालों को ऐसा लगा था—'जैसे सब-कुछ उनकी आँखों के सामने हो रहा हो । भैंसों को 'चौरी हे, रत्ना हे !' और बैलों को 'चनुवा होट, विनुवा होट !' कहते-कहते बीते जा रहे जीवन-क्रम में ऐसे हृदय हिला देने वाले विवरण कहाँ सुनने को मिलते थे ? स्वरों के उतार-चढ़ाव, मुख-मुद्रा और हाथ-पाँवों के संकेतों द्वारा डूँगरसिंह ने जैसे कश्मीर-फरन्ट को ही उनके सामने धर दिया था । सब उसकी प्रतिभा और वीरता के कायल हो गए थे ।

किसनसिंह नेगी बोले—"अपने चतुरिया का क्या हाल-समाचार है, डुँगरिया बेटे ?" और उन्होंने अपने बूढ़े हाथ डूँगरसिंह को जोड़ दिए, जैसे

कश्मीर-फरन्ट का, गांधी महाराजा की लाम का सबसे बड़ा हफसर वही हो।

"कौन, चतुरी दाज्यू··· वह तो··: वह तो, किसनू का···"

"क्या बात है, डुँगरिया बेटे ?"—बूढ़े की आवाज पतझड़ के पत्ते-सी काँप गई। नरूली भी आतंकित होकर, पास सरक आई थी।

डूँगरसिंह ने एक बार अपनी भृकुटियों को रामलीला के वंश-धनुष-सा खीचा, फिर अस्थिर स्वर में बोला—"वह तो भला-चगा है, जब मै पेन्शन पर आने लगा, 'राम-राम' करने आया था।"

"छुट्टी पर कब आ रहा है ?"—बूढे नेगी को जैसे खोया बेटा मिल गया।

"छुट्टी पर···?"—डूँगरसिंह, नरूली की ओर अबके बडी-बड़ी आँखों से हेरते हुए बोला—"छुट्टी पर वह इस बरस नहीं आएगा।"

जैता ने आवाज दी, "सौरज्यू, भात पक गया है।"

"उठ, बेटे डुँगरिया, तू भी चार गास इधर ही मार ले।" थोकदार बोले।

६

दिवान ने डूँगरसिह के आने की सूचना दूकान में जाकर दे दी थी, चनरसिंह को—"बौज्यू, डुँगरिका पलटन से छुट्टी पर आए है। डोटि-याल के सिर पर उनका बहुत बड़ा टिरंक[1] रखा हुआ है।"

चनरसिंह, पलटन से छुट्टी पर लौटे सिपाहियों के लिए, चाय बना रहा था। दिवान की बातें सुनकर, उसके चेहरे पर एक रौनक-सी आ गई, और उसने, चाय बनाने के लिए चार गिलासों में डाली हुई चीनी में से, प्रत्येक गिलास में से, आधी-आधी चम्मच चीनी वापस निकाल ली। फिर कलई के लोटे से, मलाई को बीच की अँगुली से एक ओर करते हुए, तुड़तुड़-तुड़तुड़ थोड़ा-थोड़ा दूध डाला, प्रत्येक गिलास में। और, केतली की खौलती चाय चारों गिलासों में छलनी से छान-छानकर, भरने के बाद चम्मच से चाय को ऐसे खिरोलने लगा, जैसे ऊखल में धान कूटे जाते हैं—"यों तो, अलमोडा-बेनीनाग की सड़क पर हजारों सिपाही

---

१. संदूक (ट्रंक का अपभ्रंश।)

चलते रहते हैं। लेकिन, पलटन से वहाँ के तौर-तरीके सीख के कितने जवान लौटते हैं ? आज हमारा भाई साहब भी लौटा है। अभी उसका रैंक तो मुझे मालूम नहीं हो सका है, घर भात खाने को जाने पर पूछूंगा। मगर, वह शुरू से ही चहा में हलकी चीनी पसन्द करता रहा है।"

सिपाहियों के चेहरे को ध्यानपूर्वक देखते हुए, चनरसिंह ने उन्हें चाय के गिलास थमाए—"मैने तो, साहब लोग, पलटन की जिन्दगी जो है, वह कभी देखी नहीं है। बौज्यू ने, खेती सँभालने की फिकर से, बचपन में ही पाँवों में रस्सी घुमा दी थी। और एक बार जहाँ मर्द के पाँवों में हथ-कड़ी पड गई, फिर हर घड़ी उसी से बँधके रहना पडता है। बाद में, ईश्वर की कृपा से, बाल-बच्चे हो जाते हैं। मगर, मैं जो, इस धौलछीना के चौरस्ते के करीब, गरम चहा-दूध और बीडी-सिगरेट-गोला-मिसरी की दूकान खोल के बैठा हूँ, तो आप जैसे दश-पांच देश-परदेश की जिन्दगी देखकर लौटे हुए जिन्टलमिनों[1] से मुलाकात होती ही रहती है। और 'सोहबतेसिर उसी मे तासीर' कह रखा है—याने बड़े सिर वालो की सोह-बत से हमेशा बड़ी बातें मिलती हैं—तो मै भी चार बातें देश-परदेश की घर बैठे जान जाता हूँ। दूसरे, मैं यहाँ पर हर सौदा—जैसे कि बीड़ी-सिगरेट-सलाई-सुपारी-गोला-गुड़-मिसरी जरूरत की चीजें, अलमोड़ा शहर के भाव से ही देता हूँ। इस वजह से भी, मेरी दुकान में देश-परदेश से लौटते हुए साहब लोग और दुकानों से अधिक ठहरते हैं..."

चाय पीते-पीते एक सिपाही ने जरा-सा मुँह बनाया, तो चनरसिंह बोला—"मैं भी आप-जैसे जिन्टलमिनों की खातिरदारी में ही खुशी हासिल करता हूँ। नीचे की किसी दुकानदारी में जाकर देखिए, कि चहा में एक चम्मच चीनी और छोड़ देना जरा। मगर, मधुमेद[2] की बीमारी इसी चीनी की ज्यादा मात्रा से होती है, जिसमें बारीक-बारीक चीनी जाने

---

१. 'जैण्टिलमैन' का अपभ्रंश। २. मधुमेह।

लगती है, इसे वे पहाड़ी लोग नहीं समझते हे, उन्होने देश-परदेश की जिन्दगानी ठीक तरह से नहीं देखी है।"

इतना कहकर, चनरसिंह उठ गया था—"अच्छा, बेटे दिवानसिंह, मै जाता हूँ घर। लंच भी लेना है, और हमारे छोटे भाई साहब की पलटन से छुट्टी पर लौटने की खुशखबरी भी अभी-अभी मिली है। चहा मैं साहब लोगों के लिए स्पेश्यल बनाके अपने हाथो से दे गया हूँ, और कुछ दूसरी जरूरत की चीजें माँगे, तो अलमोड़ा शहर के ही भाव मे दे देना। अच्छा, साहब लोग, जयहिन्द!"

चनरसिह अक्सर ही कहा करता था, कि 'अकबर-बिरबल बिनोद' की जो ज्ञान-गुदडी है, उसमे एक सिद्धान्त यह भी बुद्धिबली बीरवल के द्वारा आता है कि, 'बातन हाथी पावत है, बातन हाथी पावन को।'

और दरअसल, चनरसिंह ने अपनी रबड़ी-जैसी लच्छेदार बातो से राह-चलते मुसाफिरों को ऐसा मोहा, और अपनी दुकानदारी की जड़ धोलछीना के चौरास्ते की पाँव-उखाड़ू मिट्टी में ऐसी जमाई थी, कि दूसरे दुकानदार चनरसिंह की तेज दुकानदारी से टापते ही रह गए थे।

चनरसिंह गिलास में छूट गई चीनी में से आधी चम्मच प्रति गिलास वापस निकालकर भी, :: पैसे गिलास चहा की बिक्री कर लेता था। उसके यहाँ की घोड़ा-मार्का, पानसुन्दरी-मार्का बीड़ी के बण्डलों में, पच्चीस की जगह २३-२४ ही बीडियाँ मिलती थीं ग्राहकों को, फिर भी चनरसिह अलमोडा के लाला भगवतीप्रसाद का धौलछीना में सबसे बड़ा एजेण्ट रहता आया, घोड़ा-मार्का और पानसुन्दरी बीड़ी का।

बिक्री तो दूसरे दुकानदारो की भी थोडी-बहुत हो ही जाती थी। मगर चनरसिंह की जैसी किसी की नही चलती थी। अस्तु, और दूकानदारों ने जहाँ अपनी दुकान की शोभा बढाने के लिए चाय-सिगरेट-बीडी के खाली बण्डलों को सजा रखा था, कि दुकान भरी हुई दिखाई दे— वहीं चनरसिंह की दुकान में हमेशा असली, भरे हुए बण्डलो से अलमारी

चनरसिंह का नाम कुछ ऐसा चला हुआ था, कि लोग 'दुकानदारों-मे-दुकानदार चनरसिंह ठहरा' कहा करते थे। पूरे धौलछीना पड़ाव में आठ-दस रुपए रोज का नकद गल्ला सिर्फ चनरसिंह के ही गल्ले के सन्दूक में आता था।

चनरसिंह की कीर्ति कुछ ऐसी फैली थी, कि शिवदत्त त्याड़ी—अलमोड़ा के मशहूर आढ़ती लाला भगवतीप्रसाद के बगल में लगी-लगाई अपनी दुकान का दरवाजा बन्द करके—मुकाबले की दुकानदारी के लिए धौलछीना आ पहुँचा था। और, धौलछीना पहुँचने से पहले ही, उसने ईश्वरदत्त घोडिया और दानसीग के सात खच्चरों का रिसाला धौलछीना को रवाना करवा दिया था। शिवदत्त के भाई हरदत्त त्याड़ी ने जब दुकान के आँगन में खच्चरों की पीठ पर से सामान उतरवाया था, उस समय मिडिल-फेल रमुवा के शब्दों में—धौलछीना बस्ती की ⅔ जनता उधर ही मेला-जैसा देखने लगी थी—यहाँ तक, कि खुद थोकदार जमनसिंह भी चर्चा सुनकर के, एक झलक झाँक आए थे—"एक-एक खच्चर पर एक-एक ही समान आज धौलछीना के पड़ाव पर पहिली बार उतरा है। लाल वाले खच्चर की पीठ पर से घोड़ा-मार्का बिड़ी का बोगचा उतर रहा है, तो उस बादामी खच्चर पर से पाशिग-शो सिगरेट का बक्सा। शिवदत्त त्याड़ी जी दुकान क्या खोल रहे हैं, धौलछीना में एक रंगत-जैसी खड़ी कर रहे हैं। भगवान करे, त्याड़ी जी की दुकान खूब चले।"

मगर, शिवदत्त त्याड़ी जी की कुंभ राशि का केतु चनरसिंह के मंगल से ऐसी मार खा गया, कि आठ महीने बाद जब शिवदत्त त्याड़ीजी धौलछीना के पाँव-उखाड़ चौरास्ते को नमस्कार करके जाने लगे; तो जिस दुकान को खोलते समय ईश्वरदत्त और दानसीग के सात खच्चरों को लगातार एक महीने तक अलमोड़ा-धौलछीना के चक्कर काटने पड़े थे, उसी दुकान के तख्त लगा के जाते समय (थोकदार जमनसिंह के मिडिल-फेल नाती रमुवा के शब्दों में 'तीन-बट्टा-उन्नीस भागा छोटा कोष्ठ

शुरू' वाली सूरत लेकर)—सिर्फ दो खच्चर बहुत हो गए !······

वैसे शिवदत्त त्याड़ीजी ने पूरी शक्ति लगाई थी, चनरसिंह की दुकान उखाड़ने में, मगर खुद ही ऐसे उखड़े, कि बाकी बचे हुए सामान को लाने के लिए छोटे भाई हरदत्त त्याड़ी को दुकान में छोड़कर, खुद मुँह-अँधेरे ही धौलछीना के पड़ाव से पार हो गए। रास्ते में, 'ब्रुक बौंड टी कम्पनी' का एजेण्ट गंगासिंह—जो 'ब्रुकबौंड टी' की एजेन्सी चलाते-चलाते 'गांगी बौंड' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था—मिल गया, तो थोड़ी देर तक मुँह से वचन निकालना कठिन हो गया। बड़ी मुश्किल से गंगासिंह के "पैलाग, गुरू !" के उत्तर में बोलने को मुँह खोला भी, तो आवाज, बिगडी हुई स्काउटिंग-सीटी के फुर्र-रू-रू घूमने वाले दाने की तरह, मुँह के अन्दर घूमती रह गई—"कल···कल···याराा···मस···मस···तू····ऊ ··ऊ······"

गंगासिंह ने पूछा—"गुरू, आज गिरती-पड़ती हुई जैसी बेचैन चलाई कहाँ को हो रही है ? चाय के कितने पौण्ड धरवा दूँ दुकान पर। आज औरेन्ज-पीको भी आई है।"

शिवदत्त त्याडी ने पहले अपनी जीभ को पान के बीड़े की तरह लपेटा, और फिर दक्खिनी सुपारी के टुकड़ों-जैसी आवाज छोडी—"मैं अलमोडा वाली भगवतीप्रसाद की बगल वाली दुकान का ताला खोलने जा रहा हूँ। हो, गांगी बौंड ! लोगों से ऐसी सुनाई पड़ी है, कि लाला भगवतीप्रसाद बड़ी देहरादून की हाँक रहा है, कि 'शिवदत्तजी तो मेरी बगल में से ऐसे निकल गए, जैसे नींबू का पानी डालने से सिर मे पड़ी कोई जूँ सिर से झड़ती है !'···इसीलिए, चोट खाकर, मुकाबले में जा रहा हूँ।"

"नाम तो, मुकाबले के सिलसिले मे, चनरसिंह के साथ भी लिया जा रहा था आपका ? अब क्या धौलछीना की दुकान छोडने का विचार हो रहा है ? या, हरदत्त गुरू चलाएँगे आपकी गैरहाजिरी में ?"

"अरे, गांगी बौंड, चनरसिंह तो अपने घर का आसामी ठहरा। जज-

मान ठहरा। उसने दोनों हाथ जोड के 'पैलागन गुरू !' भी कह दिया, तो अपनी मान-मर्यादा रह जाती है, और मन का कलेश दूर हो जाता है। फिर चनरसिंह-जैसे चार चहा के गिलास वालों के मुकाबले मे उतरने से अपनी ही तौहीन होती है।"—शिवदत्त त्याड़ी आगे बढ़ते हुए बोले— "उस बाँस बरेली के कायस्त बच्चे ने नदिया (साँड) की जैसी हूँ-हाँक्क-हूँ-हाँक्क की डुक्क छोड़कर, जमीन में गड्ढा बनाके—जैसे नदिया उसी में मूत के, पूँछ मार-मारकर, सारे बदन में मूत-मिट्टी का लेप करता है—ऐसे मुझको मुकाबले में ललकारा है, तो मैं कहाँ पीछे हटने वाला हूँ ? अच्छा हो, गांगी बौड, मै चलता हूँ अब। चहा के बण्डलों की बिक्री के सवाल के सिलसिले में, मेरी अलमोड़ा वाली दुकान में, मुझसे मुलाकात कर लेना। धौलछीना की दुकानदारी में खास खपत नहीं है। जो-कुछ है भी, वह चनरसिंह ने अपनी मुट्ठी में दाब रखी है।"

गंगासिंह ने कान में से पेन्सिल निकालकर, वहीं पर अपनी एजेन्सी-लिस्ट में से 'शिवदत्त तिवारी जी, थोक-फुटकर दुकानदार धौलछीना' वाली पंक्ति काट दी थी—और आगे बढ़ गया था।

शिवदत्त त्याड़ी ने भी हवा में अपनी मुट्ठी को घुमाया और अपनी सड़क पकडी। मगर, पीठ-पीछे चनरसिंह की पुरानी छाया साथ चलती रही—"गुरू, दुकान के तख्त तो आपने धौलछीना के चौबटिया में उघाड़ ही लिए हैं, मगर यह पहाड़ी-जंगली जगह है। यहाँ लोगों के दरवाजे कुछ बाघ-शेर और कुछ ठण्डी हवा में होने वाले निमोनिया से बचत के लिए ही सही—बडी जल्द बन्द हो जाते हैं। याने, यहाँ किसी के तख्ते बन्द होने में ज्यादा टैम नही लगता है। वैसे आपको मेरी मुबारकबादी है।"

यों कुछ दिन तो शिवदत्त त्याड़ी की दुकान में बड़ी भीड़ रही थी, क्योंकि शिवदत्त त्याड़ी प्रचार-विद्या में विश्वास रखते थे, और लोगों से नमूने की चाय-सिगरेट-बीड़ी की परीक्षा लेने के लिए प्रार्थना करते थे। मगर, नमूनों की परीक्षा करने वाले ग्राहक-मुसाफिर ऐसे निकले, कि उनको चनरसिंह की ही बात सही मालूम पड़ी—"अरे, जिस दुकानदार

के पास बेईमानी नही होगी, नकली माल नहीं होगा, वह सुसरा यों मुफत का दानखाता खोलकर घर-फूंक तमाशा ही क्यों देखेगा ?"

इसके अलावा हरदत्त त्याड़ी ने दुकान जमाने के लिए उधार देना शुरू किया था। थोडी-थोड़ी करके चार बहियों के पन्ने दाँए तरफ से काले हो गए, मगर वसूल करने के समय हमेशा यही नौबत आई, कि जिसकी तरफ चालीस रुपए, साढ़े सात आने निकलते, वह साढ़े सात आने नकद दे करके, बाकी अपने नाम में जमा करवा जाता, कि 'ये रुपए अगले महीने मे दे दूंगा। बेटे की चिट्ठी आई है पलटन के मोरचे से, कि 'मन्योडर रवाना कर रहा हूँ।'—अगले महीने तक पचपन रुपए, नौ आने हो जाते—तब नौ नकद दे दिए जाते, और पचास नाम में अगले महीने के लिए बाकी रह जाते; और एक दिन, फिर वही ग्राहक चनरसिंह की दुकान से नकद पैसों से सौदा खरीदता दिखाई देता।

कॉचुली के खीमसिंह का लड़का सगतुवा अस्सी रुपए वहीखाते में लिखवाकर, खुद पलटन में भर्ती हो गया, तो खीमसिंह ने आकर शिवदत्त त्याड़ी की गरदन पकड़के, चार हाथ ऊपर से रख दिए—"क्यों, रे कठुवा ? यहाँ गरीब किसानों के लड़कों को सिगरेट-चहा का चस्का लगाकर, बिगाड़ने को आया है ? मेरा एक ही बेटा था, उसको पलटन में भगा दिया और उलटे मुझसे ही कठुवा रुपए माँगता है ?"

मगर, चनरसिंह की दुकान पुरानी रफतार से चलती रही। पहले तो वह किसी को उधार देता ही नहीं था, यदि दिया भी, तो मय ब्याज के वसूल करने के लिए—बहीखाते या स्टाम्प-रुक्कों की जगह—अपने किसानी-हाथों पर ज्यादा भरोसा करता था।

और यों, जब शिवदत्त त्याड़ी ने भी धौलछीना के चौरास्ते से अलमोड़ा वाला रास्ता पकड़ा, तो फिर धौलछीना में चनरसिंह की टक्कर का दुकानदार कोई रह नहीं गया।

० ० ०

मगर, घर के लिए रवाना होते समय, चनरसिंह अपने तराजू-वाले

हाथ दुकान में छोड़ आता था और उसकी बातों में 'बिजनिश-पौईन्ट' नहीं रह जाता था।

जहाँ धौलछीना के और दुकानदार कहीं न्यौते में मिले टीके के नारियलों को भी (उन पर लगा पिठाँ (रोली)-अक्षत पोंछकर) दुकान की बिक्री बढ़ाने के लिए इस्तेमाल करते थे, वहाँ चनरसिंह अवसर दुकान से घर के लोगों के लिए चार अच्छी-बुरी चीजे ले जाया करता था।

और दुकानदार लोग घर खाना खाने को आते, तो उनका हंस—आत्मा—दुकान में ही रह जाता था, कि 'मेरी गैरहाजिरी में नीचे की ओर आता हुआ कोई मुसाफिर, 'हँहो !, दुकानदार साहब' की आवाज मारकर, दूसरी दुकान में न चला जाए !

मगर, चनरसिंह घर आने पर खिमुली और रेवती से चार घर-गृहस्थी की, प्यार की बातें ऐसे कर लेता, जैसे धौलछीना में उसकी कोई दुकान ही न हो। छुट्टी के, या सबेरे के स्कूल के दिन दिवान बैठ जाता था दुकान मे। उस दिन, चनरसिंह अपनी छोटी-सी बेटी रेवती के साथ—कभी-कभी मौका लगने पर खास खिमुली के साथ भी—एकाध नींद मार ही लेता था।

यही कारण था, कि वह दुकानदार होने के बावजूद, बडा प्रफुल्लचित्त और स्वस्थ रहता था।

० ० ०

आज चनरसिंह के पाँव कुछ तेजी से पड़ रहे थे। घर पहुँचा, तो मालूम हुआ, कि डूँगरसिंह थोकदार जमनसिंह के यहाँ बैठा हुआ है।

चनरसिंह ने एक सरसरी दृष्टि डूँगरसिंह के सामान पर डाली, और फिर खिमुली से बोला—"रेवती की इजा वे, जा तो डुँगरिया को बुला ला।"

खिमुली थोकदार के घर पहुँची तो, देखा कि डूँगरसिंह थोकदार के साथ भात खाने बैठा है, और जैता भात परोस रही है। जैता ने देखा, तो पूछा—"डूँगरसिंह को बुलाने आई हो, दीदी? चार गास अन्न

हमारे यहाँ खा लेंगे, तो कोई हमारे भकार के धान नहीं घट जाएँगे, तुम्हारे देवर के दाँत नहीं हिल जाएँगे ! ''

खिमुली को डूँगरसिंह का घर छोड़कर, दूसरी जगह खाना खटका तो सही, कि परदेश से आने के बाद पहली ही बार अपने घर की रसोई छोड दी—मगर, जैंता ने कुछ इस ढँग से बात की, कि सिर्फ हँसकर लौट आई—'ब्वारी, मेरे देवर के दाँत किसी और को मजबूत लगते हों, तो भला मैं क्यों उनके हिलने की फिकर करूँ ? मगर, एक बात कहने को मन हो आया है, कि मजबूत दाँतों से नरम गालों को—अरे, वौज्यू रे, मेरी मति में भी पत्थर पड़े हुए हैं—थोकदार, सौरज्यू बैठे हुए हैं यहाँ तो ?······''

७

भात खाते समय, एक-वसना जैता के टुकुर-टुकुर देखते रहने के कारण, डूँगरसिंह की पलकें टकटका-सी गई थीं। जब हौलदार बनने की कामना लेकर, पलटन में भर्ती हुआ था—शुरू-शुरू में, राइफिल या बन्दूक का निशाना साधते हुए, अपने ट्रेनिंग-अफसर के आदेशानुसार, डूँगरसिंह निशाने की मक्खी पर अपनी एक आँख की रोशनी बिठाने का भरपूर प्रयास करता था, पर सिर्फ एक आँख से निकलने वाली रोशनी की पतली-सी लकीर इस तरह थरथराती थी, टेढ़ी हो जाती थी, कि डूँगरसिंह कोन राईफिल या बन्दूक की मक्खी ही दिखाई पड़ती थी, और न निशाने का गोल दायरा ही—और उसकी सप्रयास मूँदी गई दूसरी आँख मिच-मिचाकर, अपने आप उघड़ने लगती थी।—

डूँगरसिंह को मालूम था, कि रँगरूटी से तरक्की करके हौलदार बनने के लिए, राइफिल की मक्खी पर दाँई आँख की रोशनी को केंद्रित करना पहली आवश्यक शर्त है। पर, गाँव में गाय-बकरियाँ चराने के

समय यदा-कदा दूसरे गाँव कीघ सियारिनों को आँख मारने की कला जानने के बावजूद—डूँगरसिंह ने जब भी, अपनी सारी एकाग्रता के साथ, अपनी एक आँख से राइफिल की मक्खी और निशाने के गोल दायरे के बीच में रोशनी की पतली-सी सड़क बनाने का प्रयास किया, तो हर बार दोनों आँखें, थरथरा-मिचमिचाकर, या तो एक साथ उघड़ गईं, या एक साथ बद हो गईं।

और, राइफिल की घोड़ी छटकाने पर, कंधे पर मंगलू कुम्हार की घोड़ी की जैसी लात तो पड़ी ही, ऊपर से 'होपलैस' की गोली ट्रेनिंग-अफसर ने मारी—"तुम्हारी 'आईशैट' मे बहुत 'वीकनैश' है! किधर निशाना लगाना है, और किधर तुम्हारी गोली जाती है? गोरखपुर की गाड़ी को मुगलसराय भेज रहे हो?"

और डूँगरसिंह को ऐसा अनुभव हुआ, कि आँखो के गहरे तालाब में धुँधलका छा रहा है, और उस धुँधलके में पसीनें की गोल बूँदों-जैसे टुपटुपाते मोतिया-बिन्दु, धौलछीना के जैगणियाँ कीड़ों (जुगनू) की तरह टिमटिमाने लगे है। और, एक दिन ऐसी ही हड़बड़ाहट में राइफिल की घोडी ऐसी छटकी, कि बस, केला-खम्भ-जैसी गदगदान टाँग में गुच्चीं के खेल में ढेया-फोड़-अड्डू के काम मे आने वाले महारानी विक्टोरिया-छाप ताँबे के पैसे के बराबर छेद पड़ गया।

डूँगरसिंह सोचता है, न राइफिल-बन्दूक के कारीगरो ने उनकी नाक में वह मक्खी बिठाई होती, न उस मक्खी पर आँख की रोशनी बिठाने में वह असफल होता, और न टाँग को राहु-केतु लगते। न हौलदारी का नौनी-जैसा मुलायम, गडेरा मछली-जैसा फड़कने वाला सपना बिल्ली-बल्सी (मछली पकड़ने का डंडा) के हाथ पडता।···

दरअसल, डूँगरसिंह की बचपन से ही कुछ ऐसी हालत रही, कि गले मे पहने रूमाल की गाँठ भी ज्यादा देर नही टिकी, अपने-आप खुल गई। खैर, इसकी जिम्मेदारी डूँगरसिह की रूमाल-गाँठ पर बार-बार हाथ फेरने की आदत पर है, और हाथ फेरने की आदत मुँह से सीटी

बजाते-बजाते कब पड गई, इसका कुछ पता नहीं।

इसके अलावा, लोगों के पाँवों में चक्कर रहता है, डूँगरसिंह की आँखो में रहा। अक्सर ही ऐसा हुआ, कि गुलेल से घुघुत[1] समझके मारा और हाथ में लेने पर सिटौल[2] निकला।

अनुभव हुआ, कि इन चलायमान आँखों के कारण ही उसने नरूली को आँख मारी। खैर, नरूली को आँख मारते समय आँखों ने धोखा नहीं दिया और बारी-बारी से दोनों ने अपना फर्ज पूरा किया--मगर, आज डूँगरसिंह सोचता है, कि न ये चलायमान आँखे होती, न यह दुर्दिन देखना पडता। अच्छा होता, यदि राइफिल-मक्खी के पास से गुजरने वाली गोली टाँग की जगह किसी आँख पर कब्जा जमाती।...

मगर, ऐसी बेचैनी, कि कभी अपनी चलायमान आँखों पर गुस्सा आया और कभी अपनी हार-मान जिन्दगी पर—डूँगरसिंह को कल दोपहर तक ही रही थी, जब तक उसने थोकदार जमनसिंह की विधवा बहू जैंता को नहीं देखा था—उसकी हरे किनारे की धोती की ठौर-ठौर से झाँकती तरूणाई को नहीं देखा था।

भात-दाल देने के लिए जैंता जब अपना हाथ ऊँचा करती, तो उसके अदूधिल, कनफल के दाने-जैसे गोल और पुष्ट उरोज झलक जाते और डूँगरसिंह कसमसा-सा उठता, कि राइफिल-बन्दूकों के कारीगरों ने, यदि उन पर मक्खी जैंता के कुचाग्रों की डिजाइन कीबनाई होती, तो डूँगर-सिंहकदापि निशाना नही चूकता।

डूँगरसिंह की चलायमान आँखों की मति ऐसी पलटी, कि कहाँ तो एक ठौर-ठिकाने की लाख कोशिशें करने पर भी पूर्विया-सुपारी के गोल दाने-जैसी लुढ़कती-फिसलती थी, कहाँ दोपहर से शाम होने को

१-२. दो पक्षी। घुघुत का मांस खाया जाता है, पर सिटौला का मांस अखाद्य समझा जाता है।

आई, जैंता के काफल-दानों-जैसे[1] कुचाग्रो के मोतिया-बिन्दु आँखों में पड़ गए हैं, कि ओस-जैसे ढुलकते तो हैं, पर झरते नहीं।...

डूँगरसिंह सोच रहा था, कि विधाता का विधान भी अद्भुत है। एक तरफ से चोट पड़ती है, दूसरी तरफ मरहम-पट्टी हाजिर रहती है। छँटाक-भर बारूद बाँई टाँग के बाल-बाल के अन्दर घुस गई थी, तो किस डूँगरसिंह को यह आशा थी कि कल का राशन-पानी बेकार नहीं जाएगा ? मगर डाक्टरों की आन-औलाद का भला हो, उनको भी कोई ऐन मौके पर इलाज करने वाला मिल जाए—श्मशान जाते डूँगरसिंह को जैसे काल की सतगँठिया रस्सी से खोल लाए—डूँगरसिंह के बाल-बाल से उनके लिए आशीर्वाद फूटता है।

जाते-जाते बचके, डूँगरसिंह आज फिर अपनी जन्म-भूमि की मिट्टी तक पहुँच गया है, पर बारूद की दुसह जलन और वेदना से बाँई टाँग उतनी नहीं थरथराई थी, जितने कम्पायमान प्राण इस आशंका से हो रहे थे, कि लँगड़ी टाँग के सहारे खिमुली-भिमुली भौजियों और नरूली की टक्कर में टिकना मुश्किल है।

मगर, यहाँ भी उसी चोट के बाद की मलहम-पट्टी वाली बात ने मदद करदी, कि आँखों से देखके प्राणों को सँभालने का सहारा विधवा जैंता से हो गया, और बेईज्जती से बचाने के लिए कश्मीर-फ्रन्ट की कथा काम दे गई। इसके अलावा, थोकदार के स्वभाव को पकड़ के रहने से, और भी कई रास्ते निकल सकते हैं जैसे, एक तो यही, कि बड़ी बहू लछमा के नौ बच्चे हैं और स्वभाव भी इतने बाल-बच्चों वाली माता का जैसा होना चाहिए वैसा ही है, क्योंकि जिस कुतिया में भूँकने-काटने की सामर्थ्य नहीं होती है, उससे अपने पिल्लों का पहरा कहाँ होता है ?

---

१. काफल एक वन-फल है, जो चैत-वैसाख-जेठ में रहता है। इस के दाने छोटे-छोटे, कत्थई रंग के, और बड़े रसीले होते हैं।

८

बुढ़ापे की चोट से कमजोर किसनसिंह नेगी-जैसी लड़खड़ाती टाँगों वाला सूरज कपड़खान की चट्टानी ठोकर से उस तरफ, कोसी नदी की गहरी तलहटी की ओर, लुढकने लगा था।

इधर थोकदार जमनसिंह के चौड़े आँगन में चिलम हाथ में लिए बैठा—दूखी टाँग के सताप से संत्रस्त और विधवा जैंता की एक-वसना देह-यष्टि की कनफलिया-काफलिया रंगत के चितन-कल्पन से प्रफुल्लित प्रमद डूँगरसिंह—(हर्प-विषाद की दो फुलिया माला गले में डाले)—को क्या करूँ, क्या करूँ हो रही थी।

चनरसिंह दुकान जाते समय भी एक आवाज मार गया था, डूँगर-सिंह के पास आकर, पैलागन के बदले में 'जी रौ'[1] आशीर्वाद देते हुए, "पाँव की तकलीफ में कहीं ज्यादा बैठने की कोशिश मत करना, डूँगर! गाँव वालों के घेरे ने तो परदेश से नाम कमाकर लौटे आदमी के पास

---

१. जीते रहो।

पड़ना ही है, पर तू घर जाके आज के दिन सम्पूरण रूप से आराम कर ले। तेरी खिमुली भौजी ने पराल का बिस्तर डाल दिया होगा।"

डूँगरसिह मन-ही-मन मे फटी गुदड़ी-जैसी सी रहा था, पर फटे कपडे में सिलाई कम ही टिकती है। अगर सुई मोटी हो, और धागा पतला। डूँगरसिंह की मन-स्थिति उस दर्जी की-सी हो रही थी, जिसे कपड़ों की सिलाई तो आती हो, पर कटाई नही! अंतर्द्वन्द्व और द्विविधा की दोसूती डोरी में उलझे उसके मन-मस्तिष्क के ढलुवे धरातल पर निश्चय के पाँव टिक ही नही पा रहे थे, और यों, सचमुच ही डूँगरसिंह को क्या करूँ हो रही थी।

एक नरूली को आँख मारने, उसका टेकुवा बनने की इच्छा को उस के सामने रखने का दिन था—जिसके साथ कलेजे में गरम चिमटा-जैसा छुवाने वाली खिमुली-भिमुली भौजियों के कानों में काँटेदार कनखजूरो-जैसे घुसने वाले दुर्वचनों को भी शामिल किया जा सकता है, और चोट खाकर जीभ लम्बी, फन चौड़ा करके फुफकारने वाले फनीले सर्प की चमकीली आँखों-जैसे हौलदारी हासिल करने के हौंसिया[२] सपने को भी···

और एक दिन वह था, जब डूँगरसिह की लम्बाई-चौड़ाई और वजन को भर्ती जमादार शेरसिह ने 'ओके-औलरैट' यानी 'फिट-फौर' कर दिया था—इस दिन के साथ भी कई बातो का सिलसिला कायम है, जैसे कि चाँदमारी की ट्रेनिग और लेफ्ट-राइट की ललक का बाँई टाँग को भारी पड़ना। और, अपनी ही राइफिल की 'बुलैट' का, अपने ही द्वारा घोड़ी छटकाए जाने पर, अपनी ही बाईं टाँग के अन्दर घुसना—और डूँगरसिंह की राजपूत-हड्डी-बोटी के अन्दर ऐसी चर्खी-जैसी घुमा देना, कि बाल-बाल की जड से बारूद बाहर निकलती महसूस हुई······

और एक दिन वह भी और था, जो आज तक चला आ रहा है—याने, डूँगरसिंह की बाँई टाँग के डॉक्टरों की टेबिल तक पहुँचने से लेकर, उसके सूखकर ठीक होने के बाद 'डिस्चार्ज' होकर, देहरादून से धौल-छीना के लिए रवाना होने और रास्ते-भर गर्भवती चिन्ताओं का बोझ

ढोने से जो दिन शुरू हुआ, और धौलछीना पहुँचने के बाद, थोकदार के आँगन की टाँग-बचाऊ गप्पों से लेकर, जैंता के काफल-दानों-जैसे कुचाग्रों के मोतिया-बिन्दु आँखों में पड़ने तक जो चला आ रहा है···

सूरज के सामने पड़ने वाले कुसम्यारू के पेड़ पर चढी हुई छाया आँगन मे उतरने लगी थी······

डूँगरसिंह ने अचकचा कर अपने चारो ओर देखा। कुछ दूरी पर बच्चे खेलने में लगे हुए थे। कुछ पशु जुगाली कर रहे थे, कुछ घास खा रहे थे। थोकदार जमनसिंह बेटे गोबरसिंह, जसौतसिंह और बहुओं के साथ खेतों मे चले गए थे। गोविन्दी वन से लौटी थी। रमुवा से छोटा सबलुवा गाय-बकरियाँ चराने गया था।

जाते समय थोकदार कह गए थे—"डुँगरिया बेटे, खाना खाने के बाद थोड़ा आराम करना ठीक रहता है। मुझे तो खेतों में जाना है।"

और डूँगरसिंह तब से आराम ही कर रहा था, थोकदार के आँगन में। तकलीफ उसे इतनी-सी हो रही थी, कि वह यह तय नहीं कर पा रहा था, कि थोकदार के आँगन में आखिर कब तक बैठा रहे ?

खिमुली और भिमुली दोनों कई बार आग्रह कर गई थीं, कि 'देवर हो, अब घर चलो !' पर, डूँगरसिंह ने उन्हे हर बार, वितृष्णा-भरी आँखों से घूरकर, लौटा दिया था—"यहाँ कौन से जंगल में पड़ा हूँ ? हाँ, मेरा बिस्तर-बौक्स और किट जरा सँभाल के रख देना। मैं शाम तक पहुँचने की कोशिश करूँगा।"

'शाम तक पहुँचने की कोशिश करूँगा।'—डूँगरसिंह को इसलिए कहना पड़ा था, कि वह इस यथार्थ को समझता था, कि जहाँ देहरादून से धौलछीना पहुँचा है, तो अब घर-से-बेघर रहने का सवाल ही खड़ा नहीं होता। काँटों के भय से जब कोई फूल डाल से नीचे नहीं कूदता, तो डूँगरसिंह ही क्यों खिमुली-भिमुली भौजियों की भीति से घर छोड़े ? पलटन की नौकरी भी सलामत रहती, तो हौलदार बनने के लिए आखिर कुछ-न-कुछ 'फैटिंग' तो करनी ही पडती दुश्मनों से ?···और जो आदमी

अपने घर की औरतों का मुकाबला नही कर सके, वह पलटन में क्या नाम कमा सकता है ? अच्छा हुआ, अपने ही हाथ से छटकी हुई 'बुलेट' थी, जो सिर्फ टाँग के अन्दर घुस के रह गई—सचमुच ही, किसी पठान-मुसल्मान दुश्मन की राइफिल छटकती, तो डूँगरसिंह के सीने का शिकार बनता, चील-कौवो की तकदीर खुलती।

किसी की भी दया से समझ लिया जाए, या उम्र लम्बी होने का भरोसा कर लिया जाए, आखिर पलटन के मोर्चे-मैदानों की मिट्टी में मिलने से बचकर, जब जिन्दगी सही-सलामत लौट आई है, तो बाकी जो दिन रह गए हैं, उनको काटने का कोई बंदोबस्त तो करना ही पड़ेगा ? बिना दराँती हाथ मे लिए, तो खेतों में खड़ी फसल भी नही कटती। डूँगरसिंह को तो अपनी टाँगों—खास करके राइफिल की बुलेट पचाकर साबित रह गई बाँई टाँग—को टिकाने के लिए और भी ठोस जमीन पकडनी पड़ेगी। फिर खेतों में खड़ी फसल का जो हवाला दिया जाता है, उसे देख-देखकर आँखो का सुख बढता है—पेट का पर्वत हलका होता है। मगर, उम्र की फसल का तो यही होता चला आया है—और आगे भी यही होना है !—कि जो दिन कटा, वही विधाता के दो लोकों में से एक लोक—(या सरग या नरक)—को चला गया—यानी यहाँ जो फसल कटी खेतों में खड़ी अनाज की, उसका सुख तत्काल मिलता है। और उम्र की जो फसल कटी, उसमें तो अपने हाथ कुछ नहीं रहना है। हाँ, लाश जरूर रिश्तेदारो के हाथ पड़ेगी।

सामने से जसौतसिंह आता दिखाई दिया, तो डूँगरसिंह को होश आया कि ऐसी फसली और फालतू बातो पर ध्यान जमाने से शक्तेश्वर के मन्दिर के जटानन्द ब्रह्मचारी का गुजारा चल सकता है, जिसने अपनी सारी कामनाओं को धूनी की गरम राख के ढेर के अन्दर दबा दिया है। मगर, जिस डूँगरसिंह के मन में नरूली और जैता पद्मासन लगाके बैठी हों, जिस डूँगरसिंह के कानों में खिमुली-भिमुली भौजियो के बाण-जैसे वचन गरम तेल की धार-जैसे गिर रहे हो, उसका काम तो

सिर्फ चिन्तन का चिमटा बजाने से चल नहीं सकता ।

जसौंतसिह के आँगन में पाँव रखते ही, डूँगरसिह उठ खड़ा हुआ—"आ हो, जसौत ! घर में कोई नही था, तो पडा रह गया हूँ इधर ही, कि थोकदार चाचा बोलेंगे, हौलदार भतीजा मेरी गैरहाजिरी में घर छोड़ के चला गया ।·· "

इतना कहके, डूँगरसिंह अपने घर की ओर बढ गया। सामने से गोबरसिह भी कंधे पर दनैला[1] रखे घर को आ रहा था। उसके पीछे थोकदार जमनसिह थे और उनके पीछे लछमा और जेता जाले[2] के डाले सिर पर धरे, आपस में कुछ बोलती आ रही थी ।

डूँगरसिह ने सप्रयास अपनी लचकती टाँग को काबू में रखा, और सबको अलग-अलग आँख से देखता-हेरता गोबरसिंह और थोकदार से 'जरा घर हो आता हूँ'—लछमा से 'अब भारी वजन उठाना छोड़ दो, भौजी !' कहते हुए, और जेता को सिर्फ तृष्णा-लालसा के गोल-गोल दायरों में लपेटते हुए, आगे बढ गया ।

लछमा ने एक बार अपने घाघरे के सामने के पाट को उठाने वाले अठमसिया-पेट को देखा, और फिर आगे-पीछे चलने वालों के कानों तक आवाज पहुँचाई—"पलटन की नौकरी में जाके डूँगरसिह सँभल गए हैं, बेचारे !"

---

१. खेतों में अन्न के साथ उपज अनुपयोगी झाड़-पात को निकालने के लिए 'दनैला' लगाया जाता है ! इसकी बनावट हल-जैसी ही होती है; पर 'फल' की जगह कंघी-जैसे दाँतों वाला 'दनैला' रहता है ।

२. मडुमा-मदिरा आदि अन्नों के पौधों के बीच से निकाली गई घास ।

९

पहाड के और गाँवों की तरह, धौलछीना में भी लोगो के घर पंक्ति-बद्ध बने हुए थे। एक-एक पंक्ति में कई घर बने थे। कुछ आपस में मिले हुए, कुछ दूर-दूर। पूरे धौलछीना गाँव में घरो की तीन पंक्तियाँ थी। पंक्ति-बद्ध घरों का प्रत्येक समूह 'बाखली' कहलाता है। धौलछीना गाँव तीन बाखलियों का था। सबसे ऊपर वाली बाखली में जो घर थे, उनमें से एक किसनसिह नेगी का था और एक उनके भाई हरकसिंह का, जिसके शरीर में सैम देवता का अवतार होता था। तीसरा घर उस बाखली मे केसरसिंह जडौत जगरिया का था, जो गोल्ल-गगनाथ और भाना लोक-देवताओ का अवतार कराने की गुरु-विद्या जानता था। केसरसिह की घरवाली गोपुली के शरीर में गोल्ल, गंगनाथ और भाना—तीनों एक साथ अवतार लेते थे। इसके अलावा गोपुली का सौतिया बेटा उधमसिह था, उसके शरीर में नारसिंग[1] देवता अवतार लेते थे—यों यह बाखली

---

१. नृसिंह।

डँगरियों[1] की बाखली कहलाती थी।

बिचली बाखली में सबसे बड़ा घर-आँगन थोकदार का था और निचली बाखली में चनरसिंह-देवसिंह-डूँगरसिंह तिभैयों का, सो ये दोनों बाखलियाँ 'थोकदार-की-बाखली'—और—'मेहनरसिंह-की-बाखली' कहलाती थी। मेहनरसिंह चनरसिंह के दिवंगत पिता का नाम था। इन तीनों बाखलियो में मुश्किल से बीस-पचीस गज की दूरी थी। मगर, यह दूरी ऐसी थी, कि तीनों बाखलियाँ आपस में समानान्तर रेखाओं-जैसी लगती थी।

इन तीन बाखलियो में सिर्फ जिमदार-ही-जिमदार[2] रहते थे। ब्राह्मणों के दो गाँव अगल-बगल में थे—एक पल्यूँ और एक पत्थरखाणी। पल्यूँ धौलछीना के पश्चिम मे था और पत्थरखाणी उत्तर-पूर्व मे। इसके अलावा, पड़ौस में ही एक गाँव कलौन भी था, यहाँ ब्राह्मण-ठाकुर दोनों की जनसंख्या थी। पीठ की तरफ, नैगों का गाँव नैल पड़ता था। किसनसिंह नेगी वहीं से आकर, धौलछीना बस गए थे। साथ मे बड़ी बहन विभावती की विधवा, लावारिस बेटी कलावती थी और एक ही बेटा चतुरसिंह था, जो पलटन में हौलदार था। दो-चार घर हरेक गाँव में डूमो[3] के भी थे, मगर इन लोगों के घर गाँव के पायताने या एकदम कोने में बने होते थे, जिसे डुमौड[4] कहा जाता था।

धौलछीना पड़ाव गाँव से थोड़ा हटकर था। पड़ाव के दुकानदारों के बीच एक ठौर, छोटे-से घर में एक विधवा ब्राह्मणी दुरगुली पंडित्याण[5] भी रहती थी। उसने दो-तीन दुधारू भैंसें पाल रखी थी और दुकानदारों के यहाँ दूध लगा रखा था। इसलिए लोग उसे भैंसिया पडित्याण भी

---

१. जिस व्यक्ति-विशेष के शरीर में कोई देवता अवतार लेता है उसे 'डँगरिया'—और, जो व्यक्ति-विशेष अवतार कराता है, उसे 'जगरिया' कहते हैं। २. ठाकुर। जमींदार का अपभ्रंश। ३. अछूतों। ४. अछूतों की बस्ती। ५. पंडिताइन।

कहते थे। उसकी बगल में ही 'धौलछीना डाकखाना' था, जहाँ पल्यूँ के कथावाचक जयदत्त ज्यू पोस्टमास्टर थे—और एक पोस्टमैन धौलछीना का ही अमरसिंह था, दूसरा उट्याँ का पदमसिंह। इनके अलावा ऊपर बृग-बेरीनाग की तरफ ढलकने वाली सडक के किनारे धौलछीना गाँव-पड़ाव के ठीक सिरहाने—'अपर प्राइमरी स्कूल, धौलछीना' था, जिसके हेडमास्टर मोतीराम थे।

धौलछीना गाँव के पैताने छोटी-सी उपनदी बहती थी, जिसका नाम था नलिगाड़[1]। उससे बडी सुँयाल धौलछीना के दक्षिणी सीमान्त-प्रदेश सौंलखेत होती बहती थी। धौलछीना से अलमोड़ा शहर को जाने वाली सड़क पर—धौलछीना के पडाव से डेढ़ मील की दूरी पर सुँयाल नदी का पुल पडता था, जिसे 'सौंलखेत-की-पूल' कहा जाता था। सौंलखेत-की-पूल के पास ही गजाधर की दुकान थी—गरम चहा, और टेस्टदार तमाखू-बीड़ी की।

० ० ०

डूँगरसिंह के बौज्यू (पिताजी) मेहनरसिंह जो मकान धौलछीना में खड़ा कर गए थे, देव-दरबार से क्या और राज-दरबार से क्या—डूँगरसिंह का तीसरा हिस्सा उसमें भरपूर था।

थोकदार की बाखली से अपने बौज्यू मेहनरसिंह-की-बाखली में पहुँचने तक, डूँगरसिंह ने सोच लिया, कि बौज्यू ने पहले बेटों का हिसाब लगाया होगा, कि कितने पैदा होंगे, और फिर, बड़ी समझदारी के साथ यह तिखनिया मकान[2] बनाया होगा। प्रत्येक खण्ड की अपनी देली (देहली) थी, और प्रत्येक में दो कमरे ऊपर रहने और रसोई बनाने के लिए थे और नीचे एक लम्बा गोठ गाय-भैंस-बकरियाँ बाँधने के लिए था। गोठो मे लगा आँगन तीनों खण्डों का वार-पार तक एक ही था। रहने के कमरों से नीचे आँगन मे उतरने के लिए अगवाड़े-पिछवाड़े की देलियों

१. नीचे की नदी। २. तीन खण्डों वाला संयुक्त घर।

से लगी सीढियाँ बनी हुई थीं।

डूँगरसिंह यह भी सोच रहा था, कि जहाँ तक जीभ के दाँतो के बीच रहने का सवाल है, कहने को तो लोग जीभ को ही 'बेचारी' कहते हैं, मगर होता यही है कि दाँत बेचारे मेहनत करते हैं, तकलीफ उठाते हैं, और जीभ अंदर-ही-अंदर मजे मारती रहती है। गन्ना दबाने-निचोडने में कमर दाँतों की हिलती है, रस मीठा जीभ के हिस्से पड़ता है। इन्साफ भी ईश्वर के यहाँ इस घोर कलयुग में ऐसा है, कि घुंत नाम का दंत-दैत्य भी दाँतों को ही सताता है, याने 'चोर को मजा, साहूकार को सजा' वाली बात है—मगर, जहाँ तक डूँगरसिंह के दो भौजियों के बीच में रहने का सवाल है—कहने को तो लोग यही कहेंगे कि डूँगरसिंह को दोनों बड़े भाईयों के कधे से लगकर रहना चाहिए था, मगर डूँगरसिह अगर अपना कल्याण चाहता है, तो न्यारा होना जरूरी है।

अरे, शनिश्चर की दशा ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी अन्यथा आज का जैसा डूँगरसिंह होता, तो खिमुली-भिमुली भौजियों के तानों से अपना हक छोड़के पलटन में भरती होने की जरूरत ही क्या थी ? अपने हिस्से की जायदाद अलग करवाकर, इसी धौलछीना में ठाट से पड़ा रहता।

मगर, आँच में तपे, लोहार के घन से पिटे बिना हथियार मे भी धार नही आती है। इन्सान भी रफ्ते-रफ्ते, ठोकरें खाने के बाद, सँभलता है, समझदार होता है।

वन से लौटने वाली घसियारनो के साथ-साथ, साँझ भी धौलछीना के घर-आँगनो में पहुँच गई थी।

खिमुली दिए जला रही थी। डूँगरसिह को आते देखा, तो प्रसन्न होकर बोली—"दिवान बेटे, तेरे डुँगरिका आ गए हैं, रे! कब से छोकरे ने 'डुँगरिका क्यों नही आते, इजा ? डुँगरिका क्यों नही आते, इजा ?'[1]

---

१. 'का' चाचा के लिए प्रयुक्त होता है। काका से पहाड़ी में 'काक' बनता है, क्योंकि हिन्दी के शब्दों का ह्रस्व दीर्घ में, और दीर्घ ह्रस्व में

लगा रखी है। अरे, डुँगरसिह के सामान वाले कमरे में यह दिया ले जाकर रख दे। बत्ती कुछ तेज कर देना, बेचारों के पाँव में तकलीफ है, कही चोट-पटक लग जाएगी, सीढ़ियाँ चढ़ने में।"

खिमुली ने तो सहज भाव से ही कहा था, मगर डूँगरसिह तिलमिला गया, कि भौजी मेरे लँगड़ापे पर आक्षेप करती है। तेजी से आगे बढता हुआ, बोला—"रहने दे, रे दिवान, अपनी दिया-बत्ती! कश्मीर की लड़ाई में देश की सेवा और बहादुरी का काम करते समय अपनी राइफिल—याने किसी पठान देशद्रोहीं की राइफिल से जरा एकाध गोली लग ही गई है, तो कौन-सी टाँग टूट के अलग गिर गई है। कल रात के सफर में चितई से पेटशाल तक का उतार अँधेरे मे ही तय किया था। कोई आँख में तो गोली लगी नही है, कि···"

निचली ही सीढ़ी से डूँगरसिंह का घुटना जोर से टकरा गया और पाँव के अँगूठे से शुरू करके, सिर की चुटिया तक झनझनाहट पहुँच गई—मगर, डूँगरसिंह ने दाँतों को आपस में मिलाते हुए, जीभ को बाहर निकलके 'ओ, बाप रे!' कहने से रोक लिया। दिया लेकर समीप पहुँचते हुए, दिवान ने पूछा—"क्या हुआ, डुँगरिका ?"

"कुछ नहीं, दिवान बेटे!" डूँगरसिंह खिसियाए स्वर में बोला—"मैं सोच रहा था, कि मेरा बिस्तर-बौक्स तुम लोगों ने न-मालूम कौन-से कमरे मे सँभाला है···"

"अपनी पलटटियाँ-जाँठी टेक के ऊपर चलो, डुँगरिका! ऊपर उसी कमरे में आपका सामान सँभाल रखा है, इजा ने!"—दिवान दिया लेकर, एक सीढी ऊपर चढकर, बोला।

डूँगरसिंह ने व्यथित होकर, एक बार अपनी बैसाखी को देखा और फिर उसे एक ओर फेंककर, तेजी के साथ सीढ़ियाँ चढ़ने को लपका,

---

बदल जाता है, कुमाऊँनी बोली में। यों ही 'काक' का संक्षिप्त रूप 'का' है। इजा माँ को कहते है।

मगर बाँईं टाँग में अधिक भार पड़ते ही, दुसह पीड़ा से थरथराकर, दूसरी ही सीढी से नीचे गिर पडा।

दिवान घबरा गया—"इजा! इजा! यहाँ आ तो—डूँगरिका सीढ़ियों से गिरकर, पटाँगण में लम्ब हो गए है।"

डूँगरसिह को बेहोशी-जैसी आ गई थी। सीढ़ी के एक पत्थर से माथे पर घाव भी हो गया था। खिमुली ने आकर, डूँगरसिह को पीठ पर रखा और दिवान के कंधे पर हाथ रख-रखकर, कमरे मे पहुँच गई। दिवान से बोली—"दिवान बेटे, तू जरा अपने डुँगरिका का बिस्तर खोल दे!" और फिर, जोर से आवाज लगाई—"दिवान की काकी वे ऊ! जरा एक लोटे में पानी दे जा।"

भिमुली गोठ में भैंस दुह रही थी। जेठानी की आवाज सुनकर, एकदम बाहर निकली, और दूध की तौली एक ओर रखकर, लोटे में पानी भर-कर, दौडती डूँगरसिह के कमरे में जा पहुँची।

पानी छिडकने से डूँगरसिंह थोडा चेता, पर पीड़ा के कारण कराह-कर, फिर आँखें मूँदकर, लेट गया।

खिमुली बोली—"दिवान की काकी, तू जरा जा। डूँगरसिंह के कपाल में भी चोट लग गई है। बनखुस्याणी[1] के थोडे पात तोड़के मुझे दे जा। फिर, एक कटोरे में थोड़ा तेल गरम करके ले आना, और उसके बाद डूँगरसिंह के पीने के लिए एक गिलास दूध गरम करके।"

"बन-खुस्याणी के पात तो मैं ले आऊँगा, काकी! तुम दूध को तेज गरम करके ले आओ," कहकर, दिवान कमरे से बाहर निकल गया।

भिमुली तेल दे गई, तो खिमुली ने डूँगरसिह की खाकी पैंट को ऊपर की ओर मोड़ा, और तेल के हाथों से हलके-हलके मालिश करने लगी।

डूँगरसिह की चेतना लौट आई थी, और सिर्फ एक बार आँखें उघाड़ कर ही उसने सारी स्थिति को समझ लिया था। पीड़ा और ग्लानि के

---

१. जंगली-मिर्च।

कारण उसकी आँखों की तरलता आँसुओं का आकार ग्रहण करने लगी थी। उसे अपने बाँए पाँव में खिमुली के गरम तेल-चुपड़े हाथों का स्पर्श अनुभव हो रहा था। उसका मन कुछ ऐसी कल्पना करने को हो रहा था, कि जैसे खिमुली उसके लँगड़े पाँव को नोंच रही हो, चिकोट रही हो—मगर, खिमुली के तेल-चुपड़े हाथों के असुखदायक स्पर्श से दुखे पाँव को जो आराम मिल रहा था, उसे ठुकराना मुश्किल था। डूँगरसिह आँखे मूँदकर, ऐसे साँसे लेने लगा, जिससे ऐसा लगे, कि डूँगरसिह को यह पता ही नही चल रहा है, कि खिमुली उसकी तेल-मालिश कर रही है।

दिवान बनखुस्याणी के पात ले आया, तो खिमुली ने दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में मिलाकर उनका अर्क निकाला, और डूँगरसिह के माथे पर लगे घाव के आस-पास का रक्त गीले कपड़े से पोंछकर, बनखुस्याणी का अर्क डाल दिया। बनखुस्याणी के अर्क से घाव में तेज चर्री-पिर्री लगी और डूँगरसिह ने अचकचाकर, आँखें खोल दी—"आखिर क्यों सता रहे हो तुम लोग मुझे ?"

खिमुली प्रेमल-स्वर में बोली—"देवर हो ! तुम न-जाने अकारण ही क्यों हम लोगो से खार खा रहे हो ? जब से आए हो, हम लोगों की हर बात तुम्हें तीती लग रही है। तुमको कुछ हमसे, किसी खास कारण से नाराजी हो, शिकायत हो, तो मुँह से कहो। परदेश से घर लौटके आए हो, तो तुम्हारा मुख देखके हर्ष हुआ था। जिस दिन तुम चले गए थे, पलटन में भरती होने—दिवान के बौज्यू को खबर लगी, तो दुकान में ताला ठोककर, रिगरूटिंग-हौफिस को दौडे। मगर, तुम हाथ नहीं पडे, तो सिर के बालों को हाथों से गुजमुजाते हुए आधी रात को घर लौटे ध्वाँ-पवाँ-ध्वाँ-पवाँ करते। पहले भी तुम कई दफा गए थे, पर उनने शेरसिह जमादार को लपेट में ले रखा था, कि तुम पलटन की भरती के लिए रँगरूट ढूंढने को नीचे-ऊपर का सफर करते रहते हो, और आज-कल हमारे डुँगरिया को भी पलटन का शौक लग रहा है। मगर, हमारा

एक भाई पहले से ही सरकारी नौकरी पर है, और दूसरा मै दुकान खोलके चौरास्ते पर बैठा हूँ, तो घर की निगरानी-निगहबानी के लिए भी कोई चाहिए ?···तुमने खुद भी ख्याल किया होगा, कि तुम्हारे दाज्यू ने शेरसिंह जमादार से कभी चहा-सिगरेट के पैसे नही लिए। और होता यही रहा, कि इधर घर से तुम निकले पलटन में भरती होने, और दिवान के बौज्यू हँसते हुए घर आए, कि भरती होने को गया है डुँगरिया, जमदार शेरसिंह के पास। शाम तक अपना-जैसा मुँह लेकर लौट आएगा। आखिरी दफे तुम गए थे, उसके पहले दिन जब शेरसिंह बेरीनाग से अलमोड़ा को जा रहा था, तो पासिंग सिगरेटों के मामले मे तुम्हारे दाज्यू से झगड़ा करके गया था, इसलिए तुमको भरती भी कर दिया····"

डूँगरसिंह अपने पाँव को मालिश से बचाने की कोशिश करने में लग गया था। खिमुली से 'दिदी, तेरे हाथ थक गए होंगे' कहकर, भिमुली ने डूँगरसिंह की टाँग को अपने हाथों में सँभाल लिया। दूध का गिलास एक ओर रख दिया। उसकी भरी-भरी और गुदगुदी हथेलियों के स्पर्श से डूँगरसिंह को मिठास-जैसी लगने लगी, तो फिर आँखें मूँदकर, मुँह दूसरी ओर पीठ फिराके सो गया।

खिमुली दूध के गिलास को हाथ से पकड़कर, बोली—"भौजियाँ लगती हैं तुम्हारी, तो कभी हँसी-ठट्ठा भी करती रही होंगी। तुमको बुरा लगो कभी भौजियो की—हँसी-मजाक तो मुख को हाथ से तो किसी ने दबा नही रखा था !"—और खिमुली को फिर पुरानी हँसी फूट पड़ी।

भिमुली की माँसल हथेलियाँ जितना ऊपर की ओर बढ़ती थी, डूँगरसिंह को एक आवेगपूर्ण सुरसुरी-सी व्याप जाती थी, और उसने पैंट को ठीक करने के बहाने, और ऊपर तक कर लिया था। भिमुली ने अर्थपूर्ण-आँखों से अपनी जेठानी खिमुली की ओर देखा, और हँसते-हँसते, खिमुली के हाथ का दूध-गिलास छलकते-छलकते बचा।

खिमुली बोली—"अब इस भिमुली भौजी को ले लो अपनी, कैसे तुम्हारे मुख का वचन छीनती थी, और अपने मुख के वचन तिमखिया-

बाण-जैसे मारती थी ? मगर, विपद के समय भी अपनों के ही अंग पसीजते है, देवर ! तुम्हारी भिमुली भौजी तुम्हारी टाँग की गरम तेल-मालिश ऐसे मोहिलमन से कर रही है, कि मैने कभी अपने बेटे दिवान की भी बचपन मे नही की होगी ।"

डूँगरसिंह समझ गया कि, खिमुली भौजी उसके पैण्ट ऊपर को चढ़ाकर, चुपचाप लेटे रहने का कारण भाँप गई है, और उसके इस सुख से खार खा गई है—इसीलिए, झट से बेटे की तुलना मे रख दिया !

अरे, इन खिमुली-भिमुली भौजियों से वेचारा डूँगरसिह क्या पार पाएगा ? इनकी तो उसके लिए यही हकीकत है, कि 'न दूध के काम की, न गौत[1] के काम की, जनम-बैल गाई[2] खेत उजाड़ने मे आए !'

डूँगरसिह ने जोर से दोनों पाँवों को ऐसे झटका, जैसे नीद की खुमारी मे तान रहा हो और बाई लँगड़ी टांग भिमुली के पेट मे लगी, और दाईं टाँग के झटके से खिमुली भौजी के हाथ का दूध-गिलास उधर जाके गिरा ।

१. गौमूत्र । २. जो गाय कभी ब्याई न हो ।

१०

गिनती करके देखने का जहाँ तक सवाल है, धौलछीना की धरती तक पहुँचे चार-पाँच दिन हो गए थे डूँगरसिंह को, मगर चित्त लगने के नाम पर यह हाल था, कि चिकने पत्थर पर पैर-धराई हो रही थी।

यों पेट भरने को कौन नहीं भरना है? थाली में रखके खिमुली-भिमुली भौजियाँ ले आई डूँगरसिंह के ही कमरे में, तो 'अन्न ब्रह्मा, रसोविष्णु, भू देवो महेश्वरो', कह रखा है। मगर, खिमुली-भिमुली भौजियों की आँखों को पहचानते हुए, डूँगरसिंह ने दूसरे ही दिन साफ-साफ कह दिया था—"भात खाने को तो मैं नहीं चल सकूँगा। पलटन के सिविल सरजन ने सख्त हिदायत दे रखी है, कि लेफ्ट लेग—यानी वह पाँव जिससे मार्चिंग के समय लेफ्ट किया जाता है—के क्वैट वैल, मने बिलकुल ठीक, हो जाने तक भात नही खाना। पाँव में सिलाप[1]-सूजन बढ़ जाएगी। पहाड़ की जगह है, शीत लग गई, तो निमूनिया हो

१. सीलन।

जाएगा। मेरे लिए तो ऐसा करो, कि जब तक मैं तुम लोगों की शरण मे लाचारदर्जी से पड़ा हुआ हूँ, दोनों टैम रूखी-सूखी चार रोटियाँ ही मेरे सिर पर डाल जाओ। अन्न है, उसको तो ठोकर मारना गुनाह करना है।"—क्योंकि, भात खाने के लिए कमीज-पेंट उतारकर, सिर्फ एक धोती पहनकर खाना जरूरी था; और, खाते समय खिमुली या भिमुली भौजी, जो भी रसियारी हो, उसकी एकटक नजर ने घायल टाँग को चसकाना ही था। फिर कलेजे में कंकर-जैसे किरकिराते, तो चावल के दाने गले से नीचे कहाँ तक सही-सलामत उतर सकते ?···

असल में, डूँगरसिंह को खिमुली-भिमुली भौजियो से पतंग-बाजी-जैसी करनी पड रही थी, कि उनकी चालबाजियों और चौफेर[1]—आँखों के तेज माँजे से या तो अपनी पतंग को खींच-ढील देकर, दाँव-पेचों से बचाते रहना, या फिर खुद भी उसी टक्कर का तेज माँजा अपनी पतंग की कन्नी से बाँधना।

यों, ऐतवार को देवसिंह हलकारा भी घर पर था। डूँगरसिंह की बेरूखी के बावजूद, दोनों बड़े भाई पास बैठकर, सहानुभूति जता गए थे; और, दिलासा दे गए थे, कि 'किसी प्रकार की चिन्ता न करे। घर आखिर किसका है ?'

यों सारा शरीर नंगा रखके भी अस्कोट के वन-रौतेले तक शरम की जगह जैसे-तैसे ढक ही लेते हैं, फिर डूँगरसिंह ने तो दर्जा पाँच तक कूल भी पढा और देश-परदेश घूम-फिरके चार सभ्य-सज्जनों की संगत भी कर चुका है—सो, सिर हिलाकर, हूँ-हाँ तो करनी ही पड़ी, मगर जबान तभी खोली थी, जब देवसिंह ने बातो-बातो में कह दिया था—"पलटन एक ऐसी जगह है, जहाँ हर आदमी कामयाब नही हो सकता।"

"कामयाबी दूसरी चीज है और, देवसिंह दाज्यू, बहादुरी दूसरी !

---

१. चारों ओर घूमने वाली।

कौम और कटरी[1] के लिए—देश के हर जवान का जो फर्ज है, जो ड्यूटी है, उसको पूरा करने के टैम नाकामयाबी-कामयाबी का सवाल ऊपर नही उठता है। सवाल उस समय यह उठता है, कि कौन-से बहादुर नौजवान ने अपनी कौम और अपनी ही कंटरी के लिए कितनी बडी कुरबानी की !"—डूँगरसिह ने गौरवपूर्वक कहा था—'और, दाज्यू, आपकी इनफरमिशन[2] के लिए—हमारी कोम और मदर कटरी मे ऐसे वहुत कम नौजवान बहादुर हुए होंगे, जिन्होंने अपनी छै-सवा छै महीने की शौर्ट-सरभिस मे ही, अपनी कौम और अपनी मदर कटरी के लिए इतनी बड़ी कुरबानी कर दी हो · "

और, ऐसा कहते हुए, डूँगरसिह को अपनी वाई टाँग का वजन बढता हुआ महसूस हुआ था; और, उसने मुसकराते हुए, उस पर पहली वार औरो के सामने अपना हाथ फेर दिया था।

देवसिह मुँह देखता रह गया था डूँगरसिह का और चनरसिह, शावाशी-जैसी देते हुए, वोला था—"नामी रोवे नाम को, और गांडू रोवे पेट को। करने को पलटन की सरभिस कौन नही करना है ? हमारी कुमाऊँ के एक-बट्टा-दो नौजवान पलटन की ही रोटी खाते है। मगर, जहाँ तक वफादारी और वहादुरी का सवाल है, नौजवान लोग लड़कर वहादुरी से मरने की जगह, ज्यों-त्यो जान बचाकर, बुढ़ापा हासिल करने की कोशिश करते हैं, ताकि जिससे 'पिनशन' मारी जा सके। डुँगरिया, अपने भाई का चोट खाना कौन पसद करता है, मगर तूने जो इतने कम टैम में अपनी कौम की खिदमत में जान लडाई है, उस पर हम दोनो भाइयों को फखर है, गौरव है—क्योकि तूने कौम, और जिसे तूने अभी-अभी मदर-कंटरी कहा है, उसके लिए अपनी जान लड़ाई है; नही तो जहाँ तक गोली से घायल होकर घर लौटने का सवाल है, बहुत-से ऐसे नौजवान भी होते है, जो अपनी ही गलत फैर से गोली खाके घर को

---

१. देश । २. सूचना ।

लौटते हैं ! "

चनरसिह ने तो निश्छल-मन से ही कहा था, मगर डूँगरसिंह के कलेजे में ऐसी चोट लगी, जैसे किसी लालपोकिया बंदर को घंतर मारने की कोशिश में किसी ग्वाले ने अपनी ही बकरी के सिर में घतर मार दिया हो।

अरे, आखिर खिमुली का खसम है ! उससे भी चार अंगुल ऊपर उठके तो बोलेगा ही ?—मगर, डूँगरसिंह का बाप भी तो मेहनरसिंह ही था ? कसम है, जो जरा भी पोल दे दी हो। दुगुने गौरव के साथ मुसकुराते हुए कहा था—"लेकिन, ऐसे मिसफैर मारने वाले नाकामयाब नौजवानों को महाराजा जवाहरलाल जी नेहरू के हाथों की जैहिन्द नहीं मिलती है, दाज्यू ! और, आपकी इनफरमिशन के लिए, जो मिसफैरर—याने गलत गोली मारने वाले—नाकामयाब नौजवान होते हैं, उन्हे मदर कंटरी के सबसे बड़े कौमी और मिलीटरी अस्पताल में तीन महीने, नौ दिनो तक दूध के भरपूर मग के साथ, मक्खन में डुबाई हुई डबलरोटी खिलाके नहीं पाला जाता !—बल्कि, उसी समय एक गोली हफसर की तरफ से मारके, एक तरफ फेंक दिया जाता है !"

और, चनरसिंह-देवसिह के लौट जाने पर डूँगरसिह अपने-आप ही हँस पडा था—अरे, अब डूँगरसिंह भी वह पहले वाला डूँगरसिंह नही रहा, कि भाई-भौजियों की बातो से बचने के लिए, गले में बँधे लाल रूमाल को ठीक करता हुआ, एक तरफ को निकल गया। जहाँ बारूद से बनी बुलेट पचा के रख दी है, तो बातों से बचने की कोशिश करना बेकार है। अब तो डूँगरसिह का वह समय आ गया है, कि औरों को अपनी बातों से लपेटकर, अपना काम बनाना है। क्या करे, राइफिल-बन्दूकों की मक्खियों पर बंद आँख की बगलवाली आँख की रोशनी नहीं जमाई जा सकी—नही तो, जितनी बुद्धि और पकड़ डूँगरसिह के पास थी, एक दिन वह भी कही नही गया था, कि बिना बारूद की बुलेट खाए ही हौलदार बन जाता !—और तब धौलछीना की धरती पर पड़ने

अपने लिए हलुवा-पूरी उड़ाना भी आ ही जाता—इसके बाद जीभ से 'हाय, नरूली !' की जगह 'नमो नारायण' नाम का परम-पवित्र शब्द निकलता। खिमुली-भिमुली भौजियों के दुर्वचनों की जगह, 'हरि-नाम-संकीर्तन' कानों में पड़ता। यों, आत्मा भी शान्त रहती, चित्त भी ठिकाने पर रहता। एक खतरा कभी किसी जान-पहचान के आदमी के हरिद्वार-रिशिकेश की तीर्थ-यात्रा पर निकलने और डूँगरसिंह के जोग-धारण की बात नरूली-खिमुली-भिमुली के कानों तक पहुँचा देने का रहता, तो जटा-दाढ़ी से भरपूर डूँगरसिंह खास अपने दाज्यू चनरसिंह-देवसिंह को भी 'क्यों, बच्चा ?' कहके पुकारता, तो उनके मुँह से—'क्यों रे, डुँगरिया ?' की जगह—'बाबा जी, नमो नारायण !' ही निकलती।

मगर, करम-गति किन टारी ! ये दोनों रास्ते तो एकदम पीछे छूट गए थे; और डूँगरसिंह आगे, बहुत आगे पहुँच गया है तो, सामने अब आखिरी तीसरा रास्ता रह गया है, कि बाण-जैसे वचन मारने वाले भाई-भौजियों की टक्कर में उतरे, और उसी नरूली की आँखों के आगे उससे भी जोबनदार और रूपसा[1] जैता को—विधवा और जवान होने के कारण जिसको हासिल करना कोई बहुत बड़ा काम नहीं है—अपनी घरवाली बनाके, और चतुरसिंह नेगी की टक्कर में एक-दो बच्चे ज्यादा ही पैदा करके दिखा दे।

मगर, इस तीसरे रास्ते से मंजिल की ओर बढ़ने के लिए, सबसे पहले खिमुली-भिमुली भौजियों और देवसिंह-चनरसिंह भाइयों से अलग अपनी हस्ती—दूसरे शब्दों में गृहस्थी—कायम करना जरूरी है।

० ० ०

और, पिछले चार-पाँच दिनों से, डूँगरसिंह इसी सी-उघाड़ में पड़ा हुआ था, कि किस तरीके से अपना हिस्सा अलग करवाए।

तीन की गिनती में तिमुखिया-त्रिशूल बुरा, किरमड़ का काँटा बुरा,

---

१. रूपसी।

कि चुभने के बाद टूटके पाँव के अन्दर ही रह जाए। और, तीन दशाएँ राहु-केतु-शनि की बुरी, कि राहु न लेने दे थाहु[१], केतु न पड़ने दे चेतु[२], और शनि करे कुछ-न-कुछ सनिफनि[३]!—इसीलिए, 'तीन-तिकट, महाविकट' का महामन्त्र भी चला हुआ है।

कहने को साफ बात यह है कि, जब एक दिन की यात्रा के लिए भी तीनों का साथ खतरनाक समझा जाता है, तो जिन्दगी-भर की यात्रा डूँगरसिह क्यों दो भाइयों के बीच में तिकटा बनके तय करने को तैयार रहे?...

डूँगरसिह ने एक दृष्टि अपने काले सन्दूक पर डाली। उसके अन्दर घर के लिए ली हुई मिसरी-मिठाई थी और मौका लगने पर, अपनी दुर्गति का दोष मिटाने के लिए, नरूली के हाथों में थमाने के लिए चार पैकिट बिस्कुट थे। वैसे बिस्कुटों के पैकिट तो अब डूँगरसिह ने मन-ही-मन जैता के लिए रिजर्व कर लिए थे।

बच्चे कई बार आस-पास मँडरा गए थे। क्योंकि, पलटन की सरकारी आमदनी की नौकरी से घर लौटना तो, खैर, बहुत बड़ी बात थी, कहीं मामूली-से काम-काज से लौटने पर भी बाल-बच्चो वाले घर के लोग—ऊँची जात की मिठाई भी नहीं, तो कम-से-कम तेल की पाव-दो पाव जिलेबियाँ, या मिसरी के दश-बीस कुंजे—हाथों में देने के लिए एकाध चीज ले ही आते थे। सो, बच्चों को डूँगरसिह से तो और भी ज्यादा उम्मीद थी, कि जो डुँगरिका पलटन-परदेश से लौटने के पहले ही दिन उतनी-उतनी जबरजंड लेक्चर-बाजी कर रहे थे, बाल-बच्चो की इच्छा उनके दिमाग से थोड़ी छूट सकती है?

और उनकी उम्मीद भी बेकार नहीं थी। टूट भी गई है, तो टाँग ही टूटी है, कोई दिल की दया-माया तो नहीं टूटी। डूँगरसिह को भी औरों को कुछ देने-खिलाने में खुशी ही हो सकती है, और वह लौटा भी

---

१. थाह। २. चेत। ३. उलट-फेर।

कुछ मरो-सामान सन्दूक में रखके ही। बल्कि, अलमोड़ा से नहीं सही, चितई से नही सही, बाड़ेछीना के खीमसिंह हलवाई की दुकान से जो दो सेर जिलेबियाँ, एक सेर वालके[1] और एक सेर भुटी-कुंद के लड्डू, एक सेर कलाकंद और दानसिंह-जीतसिंह की दुकान से पूरी पाँच सेर मिसरी और पाँच भेली गुड़ लेके डूँगरसिह लौटा है, कुली डोटियाल की गालियाँ सुनते हुए—कि, 'राणी का छोरा ले इति गरुवा बोजो फालि दियो पीठमा, गोड़ टूटन्या पस्याहुन !'[2]—धौलछीना क्या, पूरी कुमाऊँ में भी ऐसे कोई नही लौटा होगा। दिल खोलके खर्च करके। वैसे जानने को डूँगरसिंह भी जानता ही है, और इस हकीकत से इनकार भी नही करता है, कि जिसको दर्द ज्यादा होता है, वही दवा भी ज्यादा इस्तेमाल करता है।

दरअसल, घर पहुँचने के बाद, खिमुली भौजी से पानी का गिलास मँगाने के तत्काल बाद ही, कुछ ऐसा चलायमान हो गया, चिंतित हो गया डूँगरसिंह का चोट खाई नागिन-सा लोटता हुआ चित्त, कि जेब से चाबी का गुच्छा निकालके, सन्दूक के ताले में घुमाने की उमंग ही नहीं उठी।

अलबत्ता गाँव के जो लोग आदर-कुशल पूछने डूँगरसिह के कमरे में आ गए थे, उनके लिए—दिवान से तमाखू की चिलम मँगाने की जगह, जिससे कि आधी छटाँक तमाखू में ही सबका स्वागत-सत्कार हो जाता—डूँगरसिंह ने पहले-पहले दिन 'कैंचीमार', दूसरे दिन 'पाशिग-शो' और तीसरे दिन 'चार मीनार' का पाकिट खोल दिया था।

दोनों नावों में छेद करने के बाद आज तक कोई भी दरिया-पार नहीं पहुँचा, बीच भँवर में ही रह गया। धौलछीना गाँव में जड़ जमानी

---

१. खोया-चीनी के जिन लड्डुओं में पोश्ते के दाने भूनकर, चीनी की चाशनी देकर, लगा दिए जाते हैं, उन्हें 'बाल के लड्डू' कहते हैं।

२. रंडी के बेटे ने इतना बड़ा बोझ बना दिया पीठ के लिए, कि पाँव टूटने लगे हैं।

है, तो गाँव के लोगों की दोस्ती के घेरे में लाना जरूरी है क्योंकि, घरवालों से अलग फूटना तो पड़ ही गया। यहाँ पर, अपना हिस्सा अलग करवा कर, न्यारी गृहस्थी बसाने की इच्छा की एक बहुत बड़ी अच्छाई ऐसी भी सामने आ गई है—जैसे कि बीच दरिया में डोलने पर छेद-पड़ी नाव को छोड़के, साबुत और सही-सलामत नाव पर सवार हो जाना !

डूँगरसिंह ने सन्दूक पर चढ़ी दृष्टि नीचे उतारी, और बैसाखी उठाकर, थोकदार जमनसिंह के घर की ओर रवाना हो गया।

सुबह की धूप सफेद धतूरे के फूल-जैसी चमकने लगी थी। असाढ की रुनझुनिया-बरखा का महीना निकलने लगा था। सौण की सँगरांत[1] को सिर्फ दो-तीन दिन रह गए थे। जहाँ बैशाख-जेठ में तमतमियाँ घाम पड़े थे, वहाँ असाढ़ ने आते ही ऐसी बरखा-बहार शुरू की थी, कि घाम से तिलमिलाकर मिट्टी के अन्दर घुसने की कोशिश में लगे हुए अंकुर, मदारी का तमाशा देखने वाले बच्चों की तरह, ऊपर उचकने लगे थे।

जिस मडुवा-मदिरा के बोटों के लिए, धौलछीना के जिमदार (किसान) लम्बी साँसें ले रहे थे, कि 'ऐसे ही घामों ने रहना है, तो मडुवा-मदिरा के जमे हुए बोटों ने सूख के एक तरफ हो जाना है और जिस असाढ़ के महीने में अनाज गोड़ने-निराने के लिए, खेतो में दनैला-कुटले चलाने में हाथ थकते थे, उन्हीं खेतों में, उसी असाढ़ के महीने में—

१. सावन की संक्रान्ति।

अबके दुबारा बीज बोने के लिए हल चलाने पड़ेंगे।'—उसी मडुवा-मदिरा के खेतों में असाढ़ के वरुण देवता ने बीस-बाईस दिन तक ऐसी सहस्र-धार वर्षा की थी, कि मिट्टी का मैल भीग-भीगकर अन्न-अंकुरों[१] के लिए अमृत-रस बन गया था, और—और वर्षों की तरह ही—इस वर्ष भी असाढ़ के महीने में जिमदारों के खेतों में हरीपट्ट[२] छा गई थी। और, खेतों में पानी क्या छलछलाया था, जिमदारों के मन-प्राण आनन्द से छलछला उठे थे, हुलस गए थे, हरिया गए थे।

जनेऊ गले में पड़ने से—यज्ञोपवीत-संस्कार हो जाने से—पुरुष बढता है और काला चरेवा गले में पड़ने से औरत के अंग खुलते हैं। इसी तरह, वर्षा की बूँदों के कण्ठ में उतरने से पेड-पौधों को नए प्राण-पल्लव मिलते हैं, और धरती-पार्वती की हरीपट्ट हवा में हिलुरने लगती है।

गाँव के और किसानों की बहू-बेटियों की तरह ही, आजकल थोक-दार जमनसिंह की बहू-बेटियों के हाथ भी हरे हो रहे थे। चौमास के बादलों से बेखबर-बेफिकर धूप-धतूरा फूलता है, तो खेतों में चलने वाले हाथों में फुर्ती आ जाती है। पिछले शुक्क[३] से आज के मंगल तक, सुन्दर धूप चली आ रही थी। उमंग-उल्लास के साथ, सब के हाथ अपने-अपने कामों में जुटे हुए थे।

मगर, आज जमनसिंह थोकदार घर पर ही रह गए थे। आजकल की—लछमा के पेटाली होने के कारण—भात-दाल की रसियारी जैता भी घर में ही थी। थोकदार घर की देली में बैठे, हौले-हौले, तमाखू पी रहे थे—और, जैता लछमा की नानि भौ (नन्ही बच्ची) को गोद में लेकर, उसकी लटी कर रही थी।[४]

डूँगरसिंह ने आँगन में पाँव रखते हुए 'राम-राम, थोकदार चचा!'

---

१. पौधों। २. हरित-पट्ट (हरी चादर) का अपभ्रंश। ३. शुक्रवार। ४. लट गूँथने के लिए 'लटी करना' कहा जाता है।

कहा, तो थोकदार के मुँह की चिलम-नली मुँह में ही रह गई और उसे दाँतों पर से सरकाते हुए, होंठों के एक कोने में दाबकर, थोकदार ने अपने मुड़े हुए घुटनों को सीधा कर लिया—"राम-राम, डुँगरिया भतीजा ! आ, अन्दर बैठ । तमाखू मार ले चार फूँक !"

देली पर से उठकर, थोकदार चाख[1] में चले गए । और, डूँगरसिंह को अन्दर जाने को रास्ता देने के लिए, जैता भी सीढ़ी पर से उठकर, एक ओर हो गई । डूँगरसिंह ने सीढियों पर चढ़ने के लिए बाई टाँग और बैसाखी को सँभालने का प्रयास करते हुए, एक आँख उधर को भी उठाई—"चेली को चुच[2] पिला रही हो, भौजी ?"

जैता शरम से मर गई—'ओ, बवा रे !'[3]

उसका अदूधिल-वैधव्य उसकी आँखो में प्रश्न की सर्प-कुण्डली मार कर बैठ गया—किसी बच्ची को चुच पिलाने की सौभाग्य-रेखा उस जैंता अभागिनी के कपाल में कहाँ ?···

करमसिह बाघ के हाथ पड़ा था, उसी के साथ जैंता की सौभाग्य-रेखा पर भी वज्र-जैसा पड़ गया । सिर की सिन्दूर-रेखा भी काले-घने बालों के बीच से लोप हो गई, जैसे काले बादलो के बीच एक झलक विद्युल्लता भूल गई हो । जिस दिन छाती की गोलाइयों को स्पर्श-सुख से गदरा-गद्गदा देने वाला हाथ करमसिह का उठ गया, उसी दिन से स्तनों के दूधिल होने की आशा भी उठ गई ।

जैंता, लजाकर, और दूर हो गई थी । डूँगरसिंह के हक में यह बात अच्छी ही हुई थी, कि जैंता ने अपना मुँह उधर फेर लिया था, नहीं तो, डूँगरसिंह कितनी भी सँभाले, बाईं टाँग सीढ़ियाँ चढ़ने में लचक ही जाती है । और, ऐसे में, कहीं किसी दूसरे ने आँख जमाकर देख लिया तो, हाथ की बैसाखी भी बाईं काँख से फिसलने लगती है । घर पहुँचने के पहले ही दिन की ठीक संध्या के समय, डूँगरसिंह, सीढ़ियाँ चढ़ने की

---

१. बैठक का लम्बा कमरा । २. स्तन । ३. अरे, बाप रे !

कोशिश में, खिमुली-भिमुली भौजियों के हाथ पड़ गया था। उस दिन को अभी कहाँ भूला जाएगा !

थोकदार ने फिण[1] बिछा दिया था। डूँगरसिंह दाँया मोडकर, बाँया पसारकर बैठ गया, तो थोकदार ने चिलम आगे को बढ़ाई—"ले, चिलम पकड। और क्या हाल-चाल हो रहे हैं, भतिज ?"

चिलम पकड़ते हुए, डूँगरसिंह बोला—"सब आपके चरण-कमलों के आशीर्वाद से ठीक ही चल रहा है, थोकदार चचा !"

"मेरी तो, भतीज, तुझको देखके तबियत खुश हो गई है।"—थोकदार डूँगरसिंह का कंधा थपथपाते हुए बोले—"खास इस हमारे धौलछीना गाँव के कई नौजवान पलटन में भरती हुए हैं, और वहाँ पहुँचकर, तरक्की भी की है, शानो-शौकत के साथ अपने घर, इसी धौलछीना, को लौटे भी हैं। मगर, तेरी बात ही और है। बोलने-लेक्चर देने का जो ऐठम, जो तरीका तेरे कबजे में है, औरो में उसकी जरा-सी खुशबू भी कहाँ से मिल सकती है ? लड़ने में हुशियारी का जहाँ तक सवाल है, हमारी इसी धौलछीना के जंगली इलाकों के लालपोकिया बानर भी लडने में हुशियार हैं—मगर, इंसान की परख उसके दिमाग की तरावट से की जाती है, हाथ-पैरों की ताकत से नहीं। हमारी धौलछीना के, नीचे तेरे ही बौज्यू मेहनरसिंह-की-बाखली में रहने वाले बचेसिंह से तगडा और कौन हो सकता है, इस इलाके में ? मुट्ठी बाँधता है, नाडी की नसें गाय-भैंसों को बाँधने के काम में आने वाली रस्सियों को मात करती है—मगर, पल्यूँ के डिप्टी साहब, डेढ़ छटाँक का जिसम रखने वाले उर्बादत्त ज्यू के साथ चपरासीगिरी में लगा हुआ है···"

डूँगरसिंह, अपने ललाट पर कृतज्ञता का चंदन-टीका लगाते हुए, आगे को झुककर बोला—"अपने इस नाचीज बच्चे पर आपकी इतनी मिहरबानी है, थोकदार चचा, यह इसकी खुशनशीबी है ! बूढ़ी, बल्कि

---

१. चटाई।

यों कहना चाहिए, कि बुजुर्ग आँखों की जो रोशनी होती है, वह देखने में जरा कमजोर हो भी सकती है, मगर परखने मे पुख्ता, याने पुरखों की दिरिष्टि[1] होती है ! और, थोकदार चचा, पुरखो की जो दिरिष्टि होती है, वही अपने गरीब बच्चों के लिए पालनहार होती है । मेरी उम्र क्या है, सिर्फ आने वाले भदो से चौबीसवाँ-पच्चीसवाँ शुरू होगा । आपके नाती[2] रामसिंह की उम्र मेरे ख्याल से, अठार-उन्नीस तक पहुँच गई होगी ? मगर, भतीजा रामसिह एक तकदीरवान लडका है, क्योंकि उसके सिर पर आप-जैसे बुजुर्ग बूबू[3] की छाया है—मगर, मै बदनशीब अभागा हूँ, क्योंकि मेरे सिर पर एक जो बौज्यू मेहनरसिंह कहलाते थे, वो भी परलोक-वासी हो गए ।"

इतना कहते-कहते, डूँगरसिंह की आँखो में पानी फूट आया । चिलम थोकदार की ओर बढ़ाकर, डूँगरसिंह ने अपनी आँखों पर अँगुलियाँ फेरीं; और, अँगुलियों की बीच की जगह से, थोकदार पर होने वाली प्रतिक्रिया को भी भाँपने की चेष्टा की ।

आज डूँगरसिंह घर से ही निश्चय करके आ रहा था, कि थोकदार चचा को जैसे-तैसे अपनी ओर खींचना है । जमीन-जायदाद के बँटवारे में तो, खैर, उनका हाथ लगवाना ही था—और ऐसे जल्दी भी हो जाती—साथ-ही-साथ, इसके अलावा, धौलछीना के पड़ाव मे थोकदार जमनसिंह का एक छोटा-सा मकान था, जिसके आगे की दोनों दरें दुकान-दारी के लिए काम में लगाई जा सकती थी । यह मकान थोकदार ने पिछले वर्ष ही बनाया था, और अभी तक किराए में नही उठाया था ।

थोकदार ने डूँगरसिंह को रोते देखा, तो दया हो आई । बोले—"डुँगरिया, अब कलेश क्यों करता है, रे ? तेरे-जैसे बहादुर नौजवान की आँखों में पानी-जैसी पतली चीज टिकनी ही नहीं चाहिए । मै तो तुझसे

---

१. दृष्टि । २. पहाड़ में (कुमाऊँ में) बेटे के बेटे को नाती ही कहते हैं, पोता नहीं । ३. दादा ।

बड़ा खुश हूँ, और तुझे भी अपनी बहादुरी पर गौरब होना चाहिए, जैसा गौरब कि तुझे पलटन से धौलछीना पहुँचने के ही दिन हो रहा था।"

"थोकदार चचाजी, मेरी जँवामर्द आँखों में जो चार बूँदे बरखा की जैसी दिखाई दे रही है आपको, इनको आप अपनी बुजुर्गी दिरिष्टि से ही देखें।"—डुँगरसिह सशक्त स्वर में बोला—"कौम और मदर कटरी की सेवा के सिलसिले मे जो यह मामूली-जैसा नुकसान मैंने बाईं टाँग का उठाया है, उसका रत्ती-भर भी रंजोगम नहीं है, चचा !—मगर, धरती पर पड़ी तेज धूप से धरती की छाती जलने लगी। छाती में जमा शीतल जल, जो अमृत-समान था—वह बफार[1] बनके आसमान को उडने लगा, तो जैसे बादलों की सिरिष्टि[2] हो गई—अब उन बादलों के बरसने पर किसका काबू है ?—अब आप समझ गए होंगे, थोकदार चचा, कि मैने जो भतीज रामसिंह के सिर पर आप-जैसे बुजुर्ग बूबू के होने से उसके तकदीरबान होने, और अपने तकदीरहीन होने की जो बात कही थी, उस बात की असीलत[3] क्या है ?—याने, पूज्य माता-पिता से हीन होने के कारण, मैं बेदरदी भाई-भौजियों के बीच में कैसे ये दिन काट रहा हूँ, अपनी तकदीर-हीनता के, अपनी बदनशीबी के और दुख-दर्दों के ?—इसे समझें, थोकदार चचाजी !"

इतना कहकर, विषाद-भरी आँखों से डूँगरसिंह ने थोकदार की ओर देखा।

थोकदार ने हुक्के को हिलाकर, कोयलों को ठीक किया और फिर फूँककर, उन पर चढ़ गई राख की पर्त को उतारते हुए, और दो फूँक तमाखू की बड़ी विचार-मग्नता के साथ मारते हुए, बोले—"घर में तेरे साथ कुछ बुराई हो रही है क्या, डुँगरिया ? चनरिया-देबुवा को, या उनकी औरतों को, ऐसी ना-इन्साफी करनी तो नहीं चाहिए ? पलटन से जैसा भी लौटा है, सबसे छोटा भाई घर सही-सलामत लौट आया है,

---

१. भाप। २. सृष्टि। ३. असलियत।

उसको कलेजे से लगाके रखना उनका फरज होता है। खास करके, खिमुली-भिमुली ब्वारियों से तो किसी की बुराई की उम्मीद नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वे दोनों तो बडी सभ्य-सुशील हैं, मोहिल-मन की हैं। मैं उनका सगा ससुर नहीं हूँ, मगर कभी उनके कानों तक मेरे वृद्ध अंगों के चड़कने-तड़फड़ाने की खवर पहुँची है, तो दोनों बेचारियाँ अपनी-अपनी तरफ से गरम तेल का हाथ बडी मिहनत के साथ मार गई है।"

"गरम तेल का हाथ तो वे दोनों बेचारियाँ मेरी बाईं टाँग पर भी मारती हैं, थोकदार चचा ! मगर, असर यही हुआ है, कि अलमोड़ा से धौलछीना तक तेर-चौद मील का पहाडी-सफर पैदल ही पार किया, और ऐसी फुर्ती से अपनी टाँगों पर खड़ा रहके किया, कि इस बैसाखी को कुली अपनी पीठ पर रखकर लाया।—और यहाँ पहुँचने पर, गरम तेल के हाथ जिस दिन से पड़े हैं, एक सीढी चढ़ना मुश्किल हो गया है।··· एक मालिश मिलिटरी-अस्पताल की सिस्टरें भी करती थी, तो ऐसा लगता था, कि पाँव के ऊपर रुई का गोला फिरा रही हैं और एक मालिश मेरी भौजियाँ भी करती हैं, कि बाहर की चमड़ी की तो बात क्या कहूँ, अन्दर की हड्डियाँ भी दर्द करने लगी है···।"

"अरे बाप रे !—नहीं रे, डुंगरिया, वेचारी खिमुली-भिमुली ब्वारियाँ ऐसी गलत मालिश क्यों करेंगी ? मेरी तो जब भी उन्होंने मालिश की है, कुछ फरक ही हुआ है और बड़ा आराम मिला है।"—थोकदार, चिलम डूँगरसिंह की ओर बढ़ाते हुए, वोले।

चिलम बड़ी लापरवाही के साथ थामते हुए, डूँगरसिंह बोला—"उस समय तो, खैर, आराम ही महसूस होता है, थोकदार चचा ! असली असर बाद में होता है।—और, जहाँ तक उनके ऐसा किसलिए करने का सवाल है, चचाजी, तो 'हाथ में आरसी है, और अपनी ही सूरत है'—वाली बात है। पहले हाथ-पाँव से मजबूत था, तो दूसरी बात थी। मगर, अब यह टूटी टाँग सबको साफ दिखाई दे रही है, और सभी यही सोचते हैं, कि बैठे-बैठे खाएगा।"

लछमा की चेली धेवती की लटी करके, जैंता अन्दर को आई। डूँगरसिह तुरत, मँजी हुई आवाज में बोला—"मगर, डूँगरसिह कोई लाचार-बेकार नहीं हो गया है। थोकदार चचा, आपके ही कहने के मुताबिक, ताकत तो जतिए[1] में भी होती है, इन्सान में अक्ल होनी चाहिए!—और जहाँ तक पाँव की तकलीफी का सवाल है, कोई ठीक ढँग से, हलके हाथों से मालिश करने वाला हो, तो थोड़े ही दिनों में ठीक हो सकती है।"

थोकदार ने विचारमग्नावस्था में ही रहते हुए, जैंता को पुकारा—"नानि ब्वारो![2] कितली में मेरे लिए जो मर्चवाणी[3] बचा रखी है तूने, उसमें जरा-सी चहा की पत्ती और छोड दे। डुँगरिया भतिज आया हुआ है, हम दोनो के लिए हो जाएगी। और, यह चिलम जरा दुबारा भर दे।—क्या बताऊँ, डुँगरिया, मेरी तो अक्ल काम नही दे रही है। जहाँ तक हो सके, उन लोगों का तो यही फरज होता है कि तुझे लाड-प्यार के हाथों पकडें। आज तो लाचारी है, सबेरे मेरी कमर में जोर की चड़क उठी थी, अभी तक चसक नहीं गई है। जोर से चलने-फिरने की सामर्थ्य नही है, खेती के काम का भी हरजा करके बैठा हूँ। तलटान के खेतों को मडुवा को कुटल-दनैल लगाए दो दिन हो गए हैं, फिर भी गोड़ने से फुरसत कहाँ मिल रही है।"

थोकदार ने लम्बी साँस ली, कि लगाने को तो खेतों में लछमा ब्वारी के साथ जितुवा ल्वार की घरवाली भागुली भी लगा रखी है, मगर लछमा के हाथ कम चलते हैं, जीभ ज्यादा चलती है।

डूँगरसिह ने थोकदार की जीभ को खेतों की ओर मुडते देखा, तो उदास मुँह से बोला—"थोकदार चचा, आपको तो इस लावारिस डुँगरिया पर इतनी दया आई है, मगर दाज्यू-भौजियों पर आपकी नेकसवाली और दया-दिरिष्टि का कुछ असर पड़ेगा, ऐसी उम्मीद कम है।

---

१. भैंसा। २. छोटी बहू। ३. काली मिर्च की चाय।

खैर, ग्राप भी ग्रपने बचन बरबाद करके देख लें, कि पत्थरों पर पानी डालने से अन्दर का हिस्सा कहाँ तक गीला होता है ।—मुमकिन है कि आपके डाँटने-डपटने से, वे आपके मुख के सामने मेरे साथ शुरू से ही अच्छा बरताव बरतते चले आने की बातें करें, और अपन्यास[1] दिखाएँ ?—क्योंकि, ग्राप इस गाँव के सबसे जोरदार बुजुर्ग हैं, और आपके सामने सभी को जरा तमीज से ही हर बात करनी पड़ती है । मगर, मेरा दिल तो बारम्बार यही फरियाद करता है, चचाजी, कि डुँगरिया रे, भाई-भौजियों ने आज तक किसका कल्याण किया है, जो आज तेरा करेंगे…"

थोकदार, माथे की सिलवटो पर नाखून फिराते हुए, बोले—"बात तो, किसी हद तक, तू दुनियादारी की ही करता है, डूँगर ! मेरे ही घर में देख ले, लछमा मेरी ठुली ब्वारी—इस जैता छोरी और छोटे जसौतिया के लिए सर्प-जैसी डँसैली जीभ लपलपाती फिरती है । गुबरिया बडा बेटा, पूरा गुबर का गुपटौला[2] ही है । गोठ के बैल की तरह जोरू के बश मे रहता है । खैर, मेरी आँखों के सामने तो किसी की क्या मजाल है, कि नानि ब्वारी या जसौतिया को किसी बुरी नजर से देखे !—मगर, इनके बद होने का समय करीब आने लगा है, डूँगर !"

थोकदार ने पलकों को ढाँपकर, आँसू अन्दर ही दबा दिए । थोड़ी देर तक बाहर से ही अँगुलियों से थपथपाते रहे । जैता आके, डूँगरसिंह के हाथ से चिलम ले गई । डूँगरसिह ने, चिलम पकडाने के बहाने अँगुलियाँ सरकाकर, उसका हाथ छू लिया था । स्पर्श-सुख से चुलमुला उठा था, डूँगरसिंह । थोकदार ने आँखें उघाड़कर, उसकी ओर देखा, तो कुरते की जेब से सीजर सिगरेट का डिब्बा निकालते हुए, बोला—"कडवा खमीरा तमाखू तो, खैर, आप हमेशा ही पीते रहते होंगे, थोकदार चचा, आज एक फूँक कैंचीमार की भी मार के देख लीजिए ।"

---

१. आत्मीयता । २. गोबर का उपला ।

१२

जिस दिन डूँगरसिंह धौलछीना पहुँचा था, और उसने थोकदार जमन-सिंह के पटाँगण में बैठकर कश्मीर-फ्रन्ट के हाल-चाल सुनाए थे, कि कबाइली पठानों की राइफिलें-मशीनें वहाँ कैसे नौजवानों की चौड़ी छातियों को तोड़-फोड रही हैं !—उसी दिन से, किसनसिंह के कलेजे में काँटे-जैसे चुभे जा रहे थे, कि, 'हे भगवान्, मेरे चतुरिया बेटे की दुश्मनों से रक्षा करना !'

वैसे चितई के गोल्ल देवता पर उनको भरोसा था, क्योंकि कुछ महीने पहले जब चतुरसिंह छुट्टियों मे घर आया था, तो एक दिन, किसनसिंह को और पुरोहित रुदरमणि पंत को साथ लेकर, गोल्ल देवता के दरबार में हाजिरी दे आया था। नर-बानरों के योग्य जो भी थोड़ी-बहुत सेवा-पूजा होती है, जौल हाथ[1]-नतमाथ करके, समर्पित कर आया था—पूरी-पकवान, नैवेद्य, पुष्प-नारियल के अलावा, अपने ही घर में पला

---

१. युगल-हाथ; प्रणाम।

हुआ एक कुनकुनान बोकिया[1] और साथ में, नाम-तारीख खुदा हुआ काँस्य-घट ! पूजा करने के पहले दिन की रात को, गोपुली काकी के शरीर में गोल्ल देवता के साथ-साथ, गंगनाथ-भाना का भी अवतार करवा लिया था। सो, एक भरोसा परमेश्वर का बँधा हुआ था, कि रक्षा ही करेंगे।

मगर, कलेजे के कान बड़े कोमल होते हैं। अनिष्ट की आशंका का जरा-सा भी प्रवेश हुआ नहीं, कि पूरा कलेजा कलपने लगता है—'हे भगवान, कश्मीर की घमासान लड़ाई में करमचण्डाली[2] कबाइली पठानों से… '

थोकदार जमनसिंह के यहाँ से लौटता हुआ डूँगरसिंह दिखाई दिया, तो हाथ जोड़ते हुए बोले—"राम-राम, डुँगरी भतीज ! कहाँ से चलाई हो रही है ?"

डूँगरसिंह ने एक हाथ से वैसाखी को सँभालते हुए, दूसरे से सैल्यूट-जैसी मारी—"राम-राम, किसनू का ! कहीं से नहीं, यहीं जरा थोकदार चचाजी के घर गया था। आज उनकी तबियत कुछ उदास है। बुढापे का शरीर ठहरा, दुखता रहता है। क्यों हो, किसनू का, तेल-मालिश कराने से भी कहीं बुढापा दूर होता है ? बल्कि, मै तो यही कहूँगा, कि कमजोर शरीर के हक में गरम तेल की तगड़ी मालिश नुकशानदेही ही करती है। मै तो जरा तबियत पूछने चला गया था कि कल को थोकदार चचा कहेंगे, कि उतनी दूर पलटन की सरभिस से आया है, जरा यहाँ दो कदमों की दूरी पर आके तबियत नहीं देख गया। और, वैसे है भी यह मेरा फरज ही कि अपने गाँव के बुजुर्गों की सेवा का मौका भला बारम्बार कहाँ मिलता है ?"

किसनसिंह के समीप पहुँचते हुए, डूँगरसिंह ने जेब से सिगरेट का पाकिट निकाला और उसमें से एक सिगरेट को थोड़ा आगे की ओर

---

१. बकरी का मोटा बच्चा। २. चाण्डालों-जैसे कार्य करने वाले।

निकालकर, किसनसिंह की ओर डिब्बा बढ़ाते हुए, बोला—"किसनू चचा, कैंचीमार लो। आपकी किधर को जावत हो रही है?"

"डुँगरी बेटे, अपने तो अब उधर को जावत के दिन नजदीक आ रहे हैं!"—सिगरेट को, अपनी दो अँगुलियों की कैंची-जैसी बनाकर पकड़ते हुए, किसनसिंह बोले—"कभी हमारी तरफ को भी नहीं आता?"

"चीज यह है, किसनू का, कि एक उम्र ऐसी भी आती है इन्सान के पास, कि सिटौले पछी की तरह आसमान में उडके अपने रंगीन परों को फटफटाते फिरने की जगह, बन-केशरी शेर की तरह कमर कस के शिकार की खोज में निकलना पड़ता है।"—डूँगरसिंह, जेब से सलाई निकालकर, किसनसिंह की सिगरेट सुलगाते हुए, बोला—"याने, आप थोड़ी देर के लिए यों समझ लीजिए, कि डूँगरसिंह के लड़कपन-लौडावस्था में बेफिकरी से सीटी देते हुए वार-पार घूमने के दिन चले गए। बचपना बीत गया। उम्र का भी तकाजा होता है। और मैं भी सँभल रहा हूँ। कुछ बिजनिश याने काम-काज का मिजाम बिठाने[1] की कोशिश में हूँ। और बिजनिश में ताकत शेर की जैसी, मगर बुद्धि सियार की जैसी रखनी पड़ती है···"

इतना कहने के बाद, डूँगरसिंह ने आगे बढने को पाँव उठाया, तो बैसाखी पर जरा अधिक जोर पड़ गया। किसनसिंह सहानुभूति के साथ, बोले—"पाँव ज्यादा लचकता-दुखता है, डूँगर?"

"इस जाँठी, यानी बैसाखी का कसूर है, किसनू चचा!"—डूँगरसिंह मुसकुराने की चेष्टा करते हुए, बहुत ही सधे हुए स्वर में, बोला—"और, किसनू का! खुदा खुद सँभाल देता है हर इन्सान को, दर-दर की ठोकरें खिलाने के बाद!"

डूँगरसिंह आगे को बढ़ गया था। किसनसिंह के कलेजे में चुभे हुए

---

१. व्यवस्था करने।

काँटों में एक जरा बाहर को निकला—"जरा ठैर[1] जा, डूँगर बेटे !"

डूँगरसिंह रुक गया। किसनसिंह आग्रहपूर्वक बोले—'तू तो सीधे अपने घर को चला जा रहा है, डुँगरिया बेटे ? दो पाँव मेरे घर-पटाँगण के पत्थरों पर भी रख देगा, तो कौन-सी बड़ी बात हो जाएगी ? नीचे से थोकदार-की-बाखली तक आता ही रहता है तू, मगर जरा बालिश्त-भर की दूरी पर हमारी डँगरियों-की-बाखली दूर हो गई ? "

डूँगरसिंह किसनसिंह के घर की ओर मुडा—"नहीं, नहीं, किसनू चचा ! आपको गलतफैमी[2] हो रही है। अरे, डूँगरसिंह के लिए कौन-से थोकदार चचाजी, और कौन-से किसनू काजी—दोनों पूज्य पुरखे, दोनों बुजुर्ग है। दोनों का आशीरबाद सिर पर चाहिए। मैं तो अक्सर इस दोयमचित्ती[3] में रह गया, कि किसनू का कहीं काम से निकले हुए रहेंगे, तो और वहाँ—सिर्फ एक गोपुली काकी को छोड़के—किसी दूसरे से ज्यादा मुख-बोलन्ती[4] भी नहीं है।"

किसनसिंह के आँगन में पहुँचकर, डूँगरसिंह आँगन की दीवार पर, पाँव नीचे को लटकाकर, बैठ गया। किसनसिंह की विधवा भानजी कलावती धान कूट रही थी, आँगन में बने ऊखल में।

किसनसिंह ने पुकारा—"कलावती, डुँगरिया भतीज के बैठने को एक किरा या बोरिया दे जा, भांजी ! और, एक चिलम हाईकलास टेस्ट की तमाखू भर दे। डुँगरिया भतीज कैंचीमार की बहुत बडाई करता है, मगर कड़वा-खमीरा मिक्स तमाखू की चिलम अगर कोई जरा कोशिश करके भर दे—गट्टी ऐसे लगे, कि छोटे-छोटे छेद रह जावें, और तमाखू की गोल टिकिया-जैसी बनाके, उस पर पतीली को तरकीब से जमा दिया जाए, साथ में कोयले राख झाड के एकदम लाल-लाल भरे जावें—अहा ! खुशबू-खमीरे और खुशनुमा धुँए से सम्पूर्ण मुख-मण्डल भर जाता है।"

किसनसिंह ने मुँह से सिगरेट के धुँए को तेजी से आसमान की ओर

---

१. ठहर। २. गलतफहमी। ३. द्विविधा। ४. बोलचाल।

फेका। आकाश में धीरे-धीरे बादल जुआरियों की तरह जुडते जा रहे थे। अभी सूरज के आस-पास बादलों का घेरा नही पडा था, तो भी धूप में नरमाई आने लग गई थी। किसनसिंह ने हथेली पर धूप को उतारते हुए, दुबारा गौर से आसमान की ओर देखा; और बोले—"आज के घाम में बजन-ताप कुछ नही है। चार-पाँच दिन से चटक घाम पड़ रहे थे, आज शाम तक बारिश होने की गुंजैस[1] है। कश्मीर के इलाके में, तेरे आने के समय, कैसी बारिश हो रही थी, डुँगरिया बेटे? फसल कैसी है, अब के साल वहाँ?"

कश्मीर का जिक्र छिड़ते ही, डूँगरसिंह के शरीर मे एक झुरमुरी-जैसी उठती है, कि लँगड़ी टाँग की इज्जत रखने के लिए, बस, कश्मीर और कबाइली पठानों की चमत्कारपूर्ण चर्चा का ही आसरा रह गया है।

कलावती फिरए ले आई थी। बिछाकर, चली गई। डूँगरसिंह ने उसे हजारो बार देख रखा था, एक बार और देख लिया—वही थमे ताल के पानी-जैसी अचंचल, स्पंदनहीन मुखाकृति, और वही बेजान-बोटियों से बनी दुबली देह!···डूँगरसिंह ने कलावती के बारे में एक नई बात यह देखी थी, कि धौलछीना-जैसी जगह में—(जहाँ औरत जात की ठंडी हवा भी अगर एक बार फरफराती-सरसराती गुजर जाती थी, तो वन के तमाम बाँज-फल्याँट और सल्ल-वृक्षों की दशा शीघ्र-पतन के रोगियों-जैसी हो जाती थी, पात-बीजों को गिरते समय नही लगता था।)—एक कलावती ही ऐसी थी, जिसने इक्कीस-बाईस की चढ़ती उम्र में ही एक प्रकार से संन्यास-जैसा ले लिया था। लेने को तो सन्यास बज्योली की चंद्रिका माता ने भी ले लिया था, और धौलछीना की सडक से बागेश्वर की तीर्थ-यात्रा पर निकलते हुए एक हमल (गर्भ) इसी धौलछीना के 'सदानन्दी माई धरमशाला' में गिरा गई थी! मगर, बाल-विधवा कलावती ने, आज से चार साल पहले दी हुई, डूँगरसिंह की 'बर्मचारिणी'[2] उपमा को साक्षात करके दिखा दिया था।

---

१ गंजाइश। २. ब्रह्मचारिणी।

माँ-बाप तो उसके बहुत पहले ही, कलावती के ब्याह से पहले ही, विदा होके चले गए थे। विधवा हो गई। ब्याह के चौथे ही महीने में, खसम एक मामूली से सिर-दर्द को भी नही सँभाल सका। गले का कालाच रेवा काल के हाथ पड़ गया, तो ससुराल वालों ने लत्या-लत्या के[1] गाँव के फाटक, बुरूँशी गैर के मोड़ से बाहर कर दिया कि राक्षसी ने आते ही हमारा भी नम्बर लगाना शुरू कर दिया है! अरे, जिस भुतणी ने माँ-बाप की हड्डी-बोटियों को चबाने में टैम नही लगाया, वह पराए गोत[2] को क्या बखशेगी?

कालपुत्री-कलावती अपने मामू किसनसिंह के यहाँ आज से चार साल पहले पहुँची थी। और, वह दिन था, आज का दिन है—किसी को उसके हाथ तक नही दिखाई दिए। सूखी टहनी-सी अपल्लविनी कलावती के होंठों से हँसी का कोई फूल-पत्ता नही फूटा।

डूँगरसिह उन दिनों गाय-बकरियों का ग्वाला था। और, धौलछीना के वन-खेतो में औरत जाति की हवा वृक्षों की बगल से लग-लगकर बीज-पातों को गिराती थी, और पुरुष जाति का डूँगरसिह लाल रुमाल गले में बाँधे जीभ को अँगुलियों से मोडकर सीटियाँ देते हुए, छेडने-लायक तरुणियों को देखते ही, कभी दाईं, और कभी बाईं आँख को बंद करता फिरता था।

डूँगरसिह को औरतो को छेड़-छेड़कर, रिझाने की अपनी पिरेम-विद्या पर इतना भरोसा और गुमान था, कि वह अपने साथी ग्वालों से कहा करता था—"अरे, वह बोकिया कोई और होता है, जो बकरी के बल्वाली[3] आने की इन्तजारी करे। डूँगरसिह को तुम क्या समझते हो? वह कच्चे केलों को पकाने की तरकीब जानता है!..."

मगर, कलावती के मामले में डूँगरसिह की पिरेम-विद्या निष्फल

---

१. लातों से मार-मार कर। २. गोत्र। ३. बकरी के गर्भ-धारण का समय।

सिद्ध हो गई थी, और 'मेरी सीटी और बाँसुरी की आवाज सुनने वाली लोक-लाज या धरम-सत्त मे डरके, मुझको नाउम्मीद करके भले ही खिसक जाए, मगर उस दिन अपने खसम की तबियत जरूर खुश कर देगी !' कहने वाले डूँगरसिह को यह कहना पड गया था, कि 'भट्टी में डालके भी ठडा ही निकलने वाला कच्चा लोहा एक यही देखा !'

कोशिश-पर-कोशिश करके भी, जब नाकामयाबी ही हाथ आई, तो डूँगरसिह ने कलावती को देखकर, रूमाल की गाँठ मारने, जीभ को अँगुलियो से लौटकर, सीटी बजाने, दो में से किसी एक आँख को बद करने, और नाक पर तिरी (कनिष्ठा) अँगुली फिराने की आदत छोड दी थी।

बहुत दिनो बाद, आज देखा, तो फिर भी वही बात पाई, और डूँगरसिह हलकी-सी खाँसी खांसकर, खामोश हो गया।

० ० ०

डूँगरसिह को बोलते हुए सुना तो, घर पर रह गए करीब-करीब सभी लोग किसनसिह नेगी के आँगन मे पहुँच गए, और चिलम को चेतन करते हुए, सभी ने चर्चा को आगे बढाने के लिए, मुँह के अन्दर का रास्ता देने में फुर्ती दिखानी शुरू कर दी।

बात घूम-फिरके फिर उसी कश्मीर की बारिश और फसल पर आई, जहाँ से हाल मे ही डूँगरसिह लौटा था, तो डूँगरसिह ने लोगो की जानकारी बढाना अपना फर्ज समझा—"कश्मीर की बारिश और फसल के समाचार पूछ रहे हैं आप लोग ? आपकी इनफरमिशन, याने जानकारी हासिल करने के लिए, यह बता देना सबसे पहले जरूरी समझता हूँ, कि कश्मीर हमारी मदर कटरी भारतमाता का एक फ्रन्टेरिया, याने युद्धस्थान है। लडाई-फौजदारी का वह फिल्डेरिया, याने घमासान मैदान है। महाभारत का नाम आप लोगों ने सुन ही रखा होगा ?"

"अरे, वही महाभारत तो, जिसमें पाँच पाण्डव और उनकी एक घरवाली दुरोपदी की कथा बयान की गई है ? पल्यूँ के कथा-बाचक जयदत्त ज्यू ने पिछले साल उसका भगौत-गीता वाला प्रसग सुनाया था।"

"हाँ, उसी पाण्डव-दुरोपदी वाली पुस्तक की बात मै कर रहा हूँ, जिसमें भगवान कृष्ण ललाजू के द्वारा महाबली मामू कंस की हत्या होती है, और मामू-हत्या के पातक से बचने के लिए—महाभारत की लड़ाई समाप्त हो जाने के बाद—पाँचों पाण्डवों के साथ कैलाश-यात्रा पर निकलते है और समस्त पाण्डवों के जमीन पर गिर जाने के बाद, जब सिर्फ धरमराजा युधिष्ठिर बचते है, तो कृष्ण ललाजू कुत्ते का रूप धारण करके···"

"लेकिन, पंडित वेदव्यासकृत महाभारत में तो धरमराज युधिष्ठिर की परीक्षा के लिए साक्षात् असली धरमराज के कुकुर बनकर पीछे-पीछे चलने की कथा दर्ज की गई है ?"—सैम देवता के डँगरिया हरकसिंह ने प्रश्न किया।

"हरकु का, आप पंडित वेदव्यास कृत महाभारत की बात कह रहे हैं, मै महापंडित संत तुलसीदास-विरचित महाभारत की बात कर रहा हूँ—तो, पंच पाण्डवों-सहित दुरोपदी की कथा वाली महाभारत पुस्तक का मै जिक्र कर रहा था·· "

"संत तुलसीदासजी ने तो सिर्फ श्री मानस की रचना की है, जो बाल-काण्ड से शुरू और उत्तर-काण्ड में समाप्त होता है ?"—हरकसिंह ने और तेजी के साथ प्रश्न किया।

हरकसिंह के प्रश्नो से डूंगरसिंह सावधान हो गया। रामायण-महाभारत की थोड़ी-बहुत जानकारी प्रत्येक ग्रामीण को रहती है, चाहे वह अपढ़ ही क्यों न हो। डूँगरसिंह ने समझ लिया, कि रामायण-महाभारत की चर्चा आगे बढी, तो हरकसिह के हाथ से मात खा जाएगा। सो, झट से मुँह को किसनसिंह नेगी की ओर घुमाते हुए, बोला—"कश्मीर में बारिश कैसी और फसल कैसी ? जिस समय मैं पठानों के साथ मोर्चे पर लड़कर, अपनी कुरबानी करके, मिलीटरी-कैम्प को लौट रहा था, उसी समय तक होश-हवास दुरुस्त थे, और बारिश-फसल के नाम पर, मै बारूद के बम-गोलों के बीच मे से लौट रहा था। तो मैं कह रहा था, कि कश्मीर

शुरू से ही फ्रन्टेरिया याने लडाई-फौजदारी का घमासान मैदान रहा है—हमारी मदर कंटरी भारतमाता का। पहले यही एरिया कुरुक्षेत्र के नाम से मशहूर था, जहाँ कि दुनिया की 'फस्ट वरल्ड वौर' लड़ी गई थी!"

"मगर, डुंगरिया बेटे, कुरकछेत्तर की तीरथ-यात्रा पर तो मै भी एक साल होके आया हूँ। और, वह कुरकछेत्तर दिल्ली-शहर के कहीं आस-पास ही पड़ता था ?"—अबके किसनसिह ने प्रश्न किया।

डूँगरसिह अटपटा गया। दरअसल, कश्मीर तो उसने आँखों से देखा ही नहीं था। रानीखेत और देहरादून में वह जरूर रहा था, और वही लडाईयो, हथियारो और हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बारे मे थोडी-बहुत जानकारी प्राप्त की थी। इसके अलावा जो-कुछ ऊपरी जानकारी थी, उसको पलटन की जानकारी के साथ मिलाकर, डूँगरसिह अपनी जीभ के लिए बोलने का सामान जुटाया करता था।

मगर, आज उसे लगा, कि गाँववालो को चमत्कारपूर्ण विवरणो से भरमाने की उसकी धारणा टिकने वाली नही है ज्यादा दिन।

यह सोचकर, कि गाँव के लोगो के प्रश्नो का उत्तर देने मे जितना ही विलम्ब करो, वे सामने वाले को उतना ही मूर्ख समझते हैं—डूँगरसिंह ने इस बीच लगातार तमाखू पीने की कोशिश की थी।

"तमाखू, किसनू का, दरसल टेस्टी आपके यहाँ की होती है, और मेरी कैंचीमार सिगरेट को मात करती है!"—कहते हुए, डूँगरसिह ने किसनसिंह की शंका को तमाखू के धुँए के साथ हजम कर लिया। और, बडे आदर के साथ, हरकसिंह की ओर चिलम बढाते हुए बोला—"हरकू चचा, कहिए, आजकल आपका काम-काज कैसा चल रहा है ?"

डूँगरसिंह का यह अनुमान एकदम सही निकला, कि गुड़ चटा देने से डंक मारने वाली मधुमक्खी भी काबू में की जा सकती है। हरकसिह का प्रश्न-प्रधान कंठ-स्वर तत्काल नरम पड़ गया—"सब ठीक-ठाक ही चल रहा है, सैम देवता की मिहरबानी से, भतीज! तेरे मिजाज तो ठीक है ?"

"मेरे ऊपर भी अपने सैम राजा की ही कृपा-दिरिष्टि समझो, हरकू चचा !"—डूँगरसिंह ने विनम्र-स्वर मे उत्तर दिया, और आकाश की ओर देखते हुए, बोला—"अब मैं चलने की कोशिश करूँगा, किसनू चचा ! बादलों की बढोतरी हो रही है, आकाश में। गीली मिट्टी मे पाँव का बूट फिसलने की धैसियत[1] रहती है।"

तभी कलावती का अगूँजिल स्वर सुनाई पड़ा—"ममा, चहा !"

० ० ०

डूँगरसिंह के चाय पीने तक, बादलो ने गरजना शुरू कर दिया था।

"आज तो बादल बहुत घौड़ाट-भौड़ाट कर रहे है।"—हरकसिंह ने, अपनी दोकलिया-टोपी सिर से उतारकर, आसमान की ओर देखा।

डूँगरसिंह के हाथ बात पड़ गई—"बस, बस, हरकू चचा ! धौल-छीना और कश्मीर-फ्रन्ट में इतना ही फरक समझ लीजिए, कि यहाँ जो घौड़ाट-भौड़ाट होती है, वह बादलो के जरिए होती है, जिससे बाद में बारिश गिरती है। कश्मीर के कुरुकछेत्तर, याने फ्रन्टेरिया मे इससे भी जबर्दस्त और जबरजण्ड भड-भड़-भड़-भड़-भड-भड़ाम्—पड़-पड-पड़-पड-पडाम बिलैती हथियारों-रैफलों, मशीनगनो और टौमीगनो, बिरेन गनों, हडगिरनटों और तोपो—बम्पार्टो के जरिए होती है, जिसके जरिए वहाँ दिशा-बिदिशा दशों दिशाओ में बारूद की जबरजंड तूफानी-हैवानी बारिश पड़ने लगती है। और, सारे फिल्डेरिया में घटाटोप हाहाकर छा जाता है—ओ, बबो, ओ इजो, हे परमेश्वरो !—और मुँह से यही प्रार्थना फूटती है, कि हे शंकर—याने, हे सैमराजा, तू ही रक्षा कर !"

ढोल-नगारों के बजने पर अतरने[2] वाले हरकसिंह के शरीर में डूँगरसिंह के विकट-वर्णन से रोमांच और ध्वनि-सम्मोहन के कारण थुर-थुराट-जैसी होने लगी थी। और, जब डूँगरसिंह ने, आखिरी वाक्य

१. आशंका। २. जब डँगरिया के शरीर में देवता अवतरित होता है, तो उसकी उस स्थिति को अतरना (अवतरना) कहते हैं।

कहते हुए, उनकी ओर देखकर, हाथ जोड़े—"हे, सैमराजा !"—तो, घि-रि-रि-रि-थ-र-र-र हरकसिंह का सारा शरीर आमूल-चूल कंपायमान हो गया—हिंगोर्त ! घि-रि-रि-रि—छोर्त-होर्त-फोर्त घि-रि-रि-रि-थ-र-र-र...

"दया करो, दाएँ हो जाओ, हे सैम देवता !"—सबने अपना-अपना सिर झुका लिया। किसनसिंह ने थाली में कुछ कोयले डलवाकर, उस पर घी डालकर धूप-बास भी उठा दी। पाँच मुट्ठी चावल भी थाली में रख दिए, कि सैम देवता अपना अंग-प्रक्षालन कर ले, चावल के दानों से गग-धार-दूध-धार फोड़कर।

हरकसिंह का शरीर प्रचंड वेग से थरथराता ही जा रहा था। मुट्ठियाँ बँधी हुई थी, और पद्मासन लग गया था। यों ही आधा घंटा बीत गया, मगर हरकसिंह का शरीर कंपायमान ही रहा। एक लहर देव-चाल आती थी, हरकसिंह प्रचण्ड स्वर में होर्त-फोर्त-छोर्त-हिंगोर्त—कहने लगते थे।

इतने में कहीं से जगरिया केशरसिंह पहुँचे, तो हरकसिंह को अतरते हुए देखकर, सभी लोगों को डाँटते हुए, बोले—"अरे, मुँह क्या देख रहे हो ? सैमराजा का आसन लग गया है। जल्दी से एक आदमी दौड़के ववेटी जाओ और वहाँ से देवदास[1] उदेराम को बुलाके लाओ।"

सब आदमी एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे, कि कौन जाए। ववेटी वहाँ से करीब चार-पाँच मील था। और जहाँ सैम देवता का आसन लग गया था, तो बिना पूर्ण अवतार लिए, उस पद्मासन ने खुलना भी नहीं था। ऐसा ही पद्मासन हरकसिंह का तब लगा था, जब थोकदार-की-बाखली के त्रिलोकसिंह-माधोसिंह दो भइयों ने बचन देके 'सैम-पूजा'

---

१. कुछ लोक-देवता ऐसे होते हैं, जो ढोल-नगारों के बजने पर ही अवतरित होते हैं। ढोल चूँकि शूद्र ही बजाते हैं कुमाऊँ में, सो उन्हें ढोली कहते हैं; और जो ढोली देवता-अवतार भी कराता है, उसे उस देवता का दास कहते हैं।

टाल दी थी। पूरी एक रात-भर हरकसिह् का आसन उनके पटाँगण में लगा रहा था, और सबेरे उदेराम के पहुँचने पर ही खुला था। उस साल माधोसिह् की घरवाली घास काटते में फिसलके खड्ड में गिर गई थी और त्रिलोकसिह् की कमर में बाई (पक्षाघात) पड गया था।

—और इस साल किसनसिह के पटाँगण में लग गया है, हरकसिह् का पद्मासन!—किसनसिह् के कलेजे में कश्मीर की बर्फीली-हवा घुस गई—"मेरे चतुरिया बेटे की रक्षा करना, हो सैमराजा!" फिर केशरसिंह् से बोले—"जरा अपने बेटे उधमिया को ही भेज दे, केशर! फुर्तीला लौंडा है, चुटकी बजाते में निकल जाएगा। मै तो, यार, अपनी तरफ से कभी भी किसी देवता का अपमान-नुकसान नही करता हूँ, केशर! दया करो, हे सैमराजा!..."

डूँगरसिंह् बोला—"गोपुली काकी के आँग का गोल्ल नही खोल सकता क्या हरकू चचा का पद्मासन? केशरू का से हुडके[1] पर चार हाथ मार देने को कहो। गोपुली काकी ने तो कई बार आसन खोले है!"

केशरसिह् बोले—"गोल्ल-गगनाथ का आसन होता, तो गोपू के अंग का देवता अलग कर देता। मगर, सैमराजा या हरू राजा का आसन या तो उनका दास ही खोल सकता है, आसन-मुक्ति का औसाण[2] देकर, या फिर सैम-हरू का कोई डँगरिया ही। मेरे उधमिया के आँग में नारसिंह् आता है, पर वह अभी नौताड डँगरिया[3] है!..."

एक छोकरा उधमसिह् को बुलाने भेज दिया गया था, कि उसे वहाँ से बबेटी जाने को बोल देना, कि देवदास उदेराम को साथ में लेकर, फौरन यहाँ को रवाना हो जाए।

केशरसिह् बोले—"कलावती से हरकसिह के चारों ओर गाई के

---

१. एक वाद्य जिसे बजाकर गोल्ल-गंगनाथ आदि लोक-देवताओं का अवतार कराया जाता है। २. देवताओं को अवतरित करने के लिए गाया जाने वाला छंद-विशेष। ३. नया-नया अवतरणशील डँगरिया।

गोवर की बाड डलवा दो। आसन-बैठे देवता पर किसी की अशुद्ध छाया नही पडनी चाहिए। फिर हरकसिह तो बाल-बरमचारी डँगरिया है !"

० ० ०

बचिया ने उधमसिह तक खबर पहुँचाई, कि 'हरकू बूबू आसन बैठ गए हैं', तो उधमसिह के साथ खेत में मडुवा गोड रही गोपुली काकी के हाथ का कुटल हाथ मे ही रह गया, और तेजी से उठकर, घर की ओर दौड़ी।

हरकसिह की पलकें लगी हुई थी और मुट्ठियाँ भिची हुई थीं। शरीर की कंपायमानावस्था वैसे ही कायम थी। आँगन के सिरे के पथरौटे पर पाँव धरते ही, गोपुली काकी—'अल्लख, गुरू की अल्लख ! आदेश, गुरू का आदेश !' कहती हुई, प्रचंड वेग से काँपती हुई, हरकसिह की ओर-दौडी। और, हरकसिंह के कानो मे गुरु-मंत्र फूँककर, चावल की मुट्ठी का आसन-तोड अभिषेक ललाट पर देकर—थोडी देर तक देवालिंगन[1] करते हुए—हरकसिह के पद्मासन को खोल दिया।

चारों तरफ से "जै हो, गोल्ल-गंगनाथ देवो ! जै हो, सैम राजा !" का स्वर-घोष होने लगा। कलावती के हाथ से गाय का थोड़ा-सा गोबर लेकर, ललाट पर लगाके, हरकसिह, होठो-ही-होंठों में कुछ बड़बड़ाते हुए, एक ओर बैठ गए।

ववेटी के लिए रवाना होने की जगह, गोपुली काकी का सौतिया-बेटा उधमसिंह भी किसनसिह के पटागण में पहुँच गया था।

"किसनू ज्याठज्यू[2] हो, आँगन में देव-आसन लग गया है। पूर्णावतार जरूर करा लेना, इसी आते ऐंतवार को।"—कहकर, गोपुली काकी फिर खेतो की ओर जाने लगी, तो डूँगरसिंह प्रशंसापूर्ण स्वर में बोला—"गोपुली काकी के अंग का गोल्ल देवता भी बड़ा ही चमत्कारी है। सैम

---

१. दो डँगरियों के कंठ-मिलन को देवालिंगन कहते हैं। २. जेठ जी।

देवता का पद्मासन खोलना, कोई मामूली बात थोड़े है ! और वह भी बाल-बरमचारी डँगरिया का ?…"

बगल में खड़ा उधमसिंह हँसते हुए बोला—"अरे, डूँगर दा, तुम भी क्या बात करते हो ! कम-से-कम धौलछीना में तो ऐसा पद्मासन लगाने वाला कोई डँगरिया नहीं है, जिस पद्मासन को गोपुली कैजा[1] नहीं खोल सके !"

---

१. सौतेली माँ ।

१३

उधमसिंह से हाथ मिलाकर 'गुडनैट' कहने के बाद, किसनसिंह के यहाँ से विदा हुआ डूँगरसिंह। बादलों का आपस में मिलन हो रहा था, पर अभी बूँदो की बौछार नही छूटी थी।

घर पहुँचने तक, दोपहर हो गई। खिमुली ने पुकारा—"डुँगरसींग हो, खाना तैयार हो गया है।"

अपने कमरे की ओर बढते हुए, डूँगरसिंह बोला—"उधर ही खाऊँगा।" और जल्दी-जल्दी आगे चला गया। सावधानी के साथ सीढ़ियाँ चढते हुए सकुशल अंदर पहुँच गया, तो एक आराम की साँस खीचकर, नीचे बिछे हुए कंबल पर लेट गया।

थोकदार ने उसे आश्वासन दिया था, कि आज शाम को उसके बारे में चनरसिंह और खिमुली-भिमुली को समझाएँगे, कि 'देखो, बड़ों का फर्ज छोटों को हिया से लगाकर रखना है।'

आते समय, डूँगरसिंह उनके चरणों पर अपना सिर रख आया था—"मुझको तो, थोकदार चचा इस गाँव-भर में सिर्फ आप से ही पालन-हारिता की कुछ उम्मीद है। और, मैं यह भरोसा लेकर जा रहा हूँ, इस समय आपके चरणो का आशीरबाद लेकर, कि अगर खुदा-न-खास्ता मेरे भाई-भौजियों ने मेरा कोई इन्साफ नही किया, तो आप जरूर ही मुझे शरण में लेकर, कुछ-न-कुछ बन्दोबस्त कर ही देंगे, जिससे मैं अपनी बाँकी जिन्दगी को जैसे-तैसे काट सकूँ···"

थोकदार ने सब-कुछ ठीक कर देने की बात मुँह से निकाल दी थी, और इसका पूरा-पूरा भरोसा भी था। मगर, एक समस्या यह रह गई थी, कि अगर थोकदार को कही खिमुली-भिमुली के मीठे वचनों ने वश मे कर लिया तो ?

"डुँगरिका, उठो, हाथ-पाँव धो लो।"—कहते हुए, दिवान अंदर आया। पानी का लोटा सबसे ऊपर की सीढी पर रख आया था।

डूँगरसिंह ने अभी पाँव के बूँट भी नहीं उतारे थे। करवट लेकर, दूसरी तरफ लौटते हुए, बोला—"क्यों रे, हाथ-पाँव धोना कुछ जरूरी है क्या ?"

"मेरे दर्जा चार की 'साहित्य-सुधा' के चरित्र-निर्माण पाठ सातवें में तो ऐसा ही लिखा हुआ है, कि 'सवेरे उठने के बाद हरेक मनुष्य को इस्नान करना चाहिए और अपने बड़ो की आज्ञा का पालन करना चाहिए।' "—दिवान बोला।

"क्यों रे, इस्नान करने और हाथ-पाँव धोने में कुछ डिफरेन्स याने फर्क नही है ?—ए-बी-सी-डी-एफ-जी-ऐमन-पीक्यू-यस्टी सिखाते हैं, तेरे दर्जा चार में ?"

"नही हो, डुँगरिका ! तुम भी कहाँ की बात करते हो ? ए-बी-सी-डी से आगे के अक्षर तो खुद हमारे हेड मास्टर मोतीराम पडितजी को भी नही आते है !—हाँ, ऊपर थोकदार बूबू-की-बाखली के थोकदार बूबू का नाती रमूदा—(जो दो साल मिडिल स्कूल की फायनल-परीक्षा

मे फेल हो चुका है और इस साल पराइवेट देके आया है)—इस भाषा में बडा होशियार है। वह तो अपने बौज्यू के दस्तखत भी ए-बी-सी-डी में कर देता है! तुमको आते हैं, डुँगरिका, ए-बी-सी-डी के दस्तखत ?"

डूँगरसिंह उठकर बैठा। फिर कुर्ते की जेब से किलिपदार पेन्सिल निकाली। उसकी नोक को थूक से गीला किया, और दिवान का हाथ पकडकर, उसमें 'D. S. BISTA' (डी० एस० बिष्ट) लिखा।

"अपने दस्तखत मेरे हाथ में क्यों कर रहे हो, डुँगरिका !"—हथेली पर लिखे नीले अक्षरो को ध्यानपूर्वक देखते हुए, दिवान ने प्रश्न किया।

"अरे, फूल ! तेरे दसखत भी ए० बी० सी० डी० के अक्षरो में यही डी० यम० बिस्ट होते हैं।"—डूँगरसिंह ने दिवान के मुँह पर एक हलकी चपत मारते हुए कहा।

दिवान ने खुश होते हुए, दस्तखत वाले हाथ को सँभाल लिया, और बाएँ हाथ से डूँगरसिंह के बूँटों का फीता खोलने लगा—"डुँगरिका, ए० बी० सी० डी० वाली इंगरेजी-भाषा में भतीजे को 'फूल' कहते है ?"

"बस, तू बड़ा प्यारा नेफू (इसी को अगरेजी में भतीजा के मतलब में लिया जाता है) है, दिवनिया !"—डूँगरसिंह बरबस ही हँस पडा। सहसा उसे विचार आया, कि घर में कौन है, जो उसे भला नहीं मानता ? भौजियाँ हैं, टट्टी-पेशाब साफ करने को भी तैयार रहती हैं। भाइयो की ओर से भी कभी दुर्व्यवहार नहीं हुआ है।

मगर, हुआ है। कम-से-कम भौजियो की तरफ से तो हुआ ही है। नये बैरनें बचन मारती, न डूँगरसिंह बारूद की बुलेट खाता···और अब तो यह निश्चित है, कि मुँह से भले ही कोई मीठा बोले, हाथो से कोई भले ही थोड़ी सेवा कर दे, मगर डूँगरसिंह की लँगडी टाँग को तो सभी ने ऐसी दया-दृष्टि से देखना ही है, कि डूँगरसिंह अंदरूनी-चोट से तड़फता-कलपता रह जाए।·· अरे, कलेजे मे अगर किसी ने घाव कर दिया, तो दर्द ने तो दिल को सिल-बट्टे में जैसा पीसना ही है—और ऊपर से मीठी बातों का मरहम कोई लाख बार लगाए, उसने कलेजे तक

पहुँचना है नहीं।—फिर भाई-भौजियों के आधीन रहने से, गाँव वाले भी उसको निकम्मा समझेंगे, और जहाँ चनरसिंह-देबसिंह को शाबाशी देंगे, कि 'अच्छा कर रहे है दोनो भाई, लँगड़े भाई को पाल रहे हैं, पुण्य कमा रहे है।' वहाँ डूँगरसिंह की कश्मीर-फ्रन्ट की चमत्कारपूर्ण बातो का हौल[1] जहाँ फटा नही, कि सब यही कहते फिरेंगे कि 'चतुरसिंह भी तो आखिर फ्रन्ट में ही ठाठ से हौलदारी बजा रहा है। आदमी सँभल के चलने वाला ही टिक सकता है।'

डूँगरसिंह का मन फिर कड़ुवा हो गया। दिवान से अपनी बेचैनी छिपाने के लिए, सिगरेट का डिब्बा जेब से निकाला, मगर उसमें सिगरेट नही थी। दिवान के सामने सन्दूक नही खोलना था। सो, पैंट के पीछे की जेब से प्लास्टिक का बटुवा निकालकर, एक रुपए का नोट दिवान को देते हुए, बोला—"जा रे, दिवान, जरा दो पैकेट कैंची-मार के ले आ तो।"

दिवान जल्दी से उठा, और रसोई के कमरे में जाकर, एक बार अपनी माँ को अपनी दाईं हथेली दिखाते हुए, कि 'देख, इजा! डुँगरिका ने मेरे हाथ मे क्या कर रखा है? ए-बी-सी-डी में अपने और मेरे एक ही दस्तखत डी-एस-बिस्ट के डबल दस्तखत मार रखें है!' कहकर, आगे निकल गया, दुकान की ओर।

० ० ०

खिमुली रोटियाँ थाली मे लगाकर, डूँगरसिंह को देने पहुँची, तो अंदर से उधमसिंह की आवाज सुनाई पड़ी—"डुँगरदा हो, इधर कभी ऐसी फुरसत ही नहीं मिली, कि तुमारे साथ बैठ के जरा दुख-सुख की बातें हो जाएँ। आज जरा गोड़ने के पलीत काम से फुरसत-जैसी है, क्योंकि गोल्ल देवता की घोड़ी गोपुली कैंजा[2] हरकू-का का पद्मासन

---

१. कुहासा। २. जिस व्यक्ति के शरीर में जो देवता अवतरित होता है, उसे उस देवता का घोड़ा भी कहते है।

छुड़ाने में थक गई है। बौज्यू ने भी काँचुला जाकर, किरपालसिंह के यहाँ गंगनाथ देवता का अवतार कराना है। मुझे भी फुरसत है। जिस समय तुमने हाथ मिलाते हुए 'गुडनैट' कहा, उसी समय मैं समझ गया ा कि तुम मुझको भूले नहीं हो। मगर, खाना नहीं खाया था। इस समय सीधे खाके ही आ रहा हूँ। और कैसी चल रही है···?"

"सब ठीक ही चल रहा है", कहते हुए, डूँगरसिंह ने बाहर को झाँका, तो खिमुली के सिर का चाल (कपड़ा) दिखाई दिया। खिमुली ने पहली सीढ़ी पर पैर धरा ही था, कि डूँगरसिंह—(ऐसे, जैसे खिमुली के आने का उसे कुछ पता ही न हो)—बोला—"यार, उधम, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है। आज सबेरे थोकदार चचा के यहाँ गया था। सबेरे घाम फटते समय से पहले ही टट्टी को गया था, तो नौल से आती हुई जेता भौजी मिल गई थी। पहले हँसकर 'क्यों हो देवर, अच्छे हो?' कहते हुए बाद में बोली, कि 'सौरज्यू की तबियत आज ठीक नहीं है।'—मैं जरा चला गया, कि बुजुर्ग आदमी हैं, जरा देख आना अपना फरज होता है।"

"अब कैसी है फिर तबियत उनकी?"

"तबियत तो उनकी ठीक ही थी, यार! बोले—तुझसे कुछ बातें करना चाहता हूँ। तेरे भाई-भौजियों का सलूक कैसा हो रहा है, तेरे साथ?' मैंने कहा, 'थोकदार चचा, अभी तक तो मुझे उनके बर्ताव में अच्छाई ही मिली है।' तो बिगडकर बोले, 'लेकिन, आगे नहीं मिलेगी। जब तू पल्टन में भर्ती नहीं हुआ था, उस समय ही जब तेरी भौजियों ने बाण-जैसे वचन मार-मारकर, तुझे पलटन में भर्ती करवाया, तो अब जहाँ एक प्रकार से कौम और मदर कंटरी भारतमाता के लिए कुरबानी ही सही, मगर अपनी जिन्दगी बरबाद करके घर लौटा है, तो अब क्या तेरा कल्याण करना है उन्होंने?'—मैंने कहा, 'थोकदार चचा, अभी तक दोनों भौजियों ने मुझे ऐसा सोचने का मौका नहीं दिया है। दोनों भौजियाँ जी-जान से मेरे पाँव की गरम तेल-मालिश में जुटी हुई है।"

"तुमने अपनी भाई-भौजियों की लाज रख ली, डूँगरदा ! फिर थोकदार कुछ और भी बोले, या नहीं ?"

"कहने लगे, 'डुँगरिया भतीजे, तेरी आदत दूसरे किसम की है। तू मर जाएगा, मगर अपने भाई-भौजियों के जुलमों के खिलाफ अपने मुँह से फरियाद नही निकालेगा। जो-कुछ कहना होगा, उनके मुँह पर भले ही कह देगा। मगर, भतीजे, यह कलजुग भलाई का नहीं है। मुँह से मीठा बोलके, अपना मतलब निकाल लेने वाले बहुत हैं, मगर निष्कपट रहके किसी का कल्याण करने वालों में कमी आ गई है। अरे, वावले डुँगरिया, भाई-भौजियो को अगर तेरी भलाई का जरा भी ध्यान होता, तो आज तक कही अच्छी जगह से लड़की आ गई होती, और तू भी अपने दोनों भाइयों की तरह बाल-बच्चेदार बनकर, गृहस्थी वाला बन गया होता ! मगर, भाई-भौजियों ने ऐसी भलाई की तेरे साथ, कि खुद जवान-जोबनदार औरतों का सुख देख रहे है, बाल-बच्चेदार बनकर मौज कर रहे हैं। कोई दुकानदार बना हुआ है और कोई सरकारी हलकारा। मगर, तुझे लावारिशों की तरह एक तरफ फेक रखा है।'…" इतना कहकर, डूँगरसिंह ने फिर बाहर की ओर झाँका। खिमुली का ऊपर की सीढी का पैर ऊपर ही था, और नीचे का नीचे पटाँगण में ही।

उधमसिह देली की ओर पीठ किए बैठा था, इसलिए खिमुली के आने का पता नही था। बोला—"एक हिसाब से कह तो ठीक ही रहे थे, थोकदार का ! एक बात सोचने की है, यार डुँगरदा ! अगर, चनरदा या देबदा या उनकी घरवालियों की जरा-सी भी यह इच्छा होती, कि हमारा छोटा भाई भी सँभल जाए, उसकी भी गृहस्थी जम जाए, तो क्या बात थी, जो आज तक तुम भी उनकी तरह बाल-बच्चेदार नहीं बन जाते ?"

"जरा धीरे से बोल, यार उधमसिंह ! तू मेरी भौजियों की चुरड़ी-आदत नही जानता है। खरगोश के जैसे कान और बिल्ली के जैसे पाँव लेकर पीछा करती है। थोड़ी ही देर में खिमुली भौजी रोटियाँ लेके

आने वाली है ।"—डूँगरसिंह फुसफुसाते हुए बोला, ताकि खिमुली को ऐसा लगे, कि मेरे आने की खबर किसी को नहीं है ।

"मगर, यार डुँगरदा ! मैं भी यही सोच रहा हूँ कि तेरी जिन्दगानी इन लोगों के बीच सुख से कटनी मुश्किल है···"

"थोकदार चचा भी यही कह रहे थे, यार, कि 'डुँगरिया भतीजे दाँतों के बीच में जीभ रहती है, तो दाँत बेचारे खुद मिहनत करके उसको रस पिलाते है । मगर, तेरी भौजियों ने तुझे अपने बीच में इस तरह रखना है, कि मीठी-मीठी बातों से तुझे बहलाकर, जवानी-भर बिगैर संगी-साथी के ही रख देना है । और, बुढापे के दिन करीब आते हैं, तो भेलों में लात मारके एक तरफ कर देना है !'—क्या बताऊँ, यार उधमसिंह ! कहने में जरा शरम की बात है—थोकदार चचा को तो जरा ऐसा भी भैम (सदेह) है, कि शायद दोनों में से किसी भौजी के साथ किसी किस्म का नाजायज-सम्बन्ध रखने की वजह से ही मेरी शादी रुकी हुई है !—कह रहे थे, 'तेरा मुख बेआब होता जा रहा है, दिन-पर-दिन !' "—डूँगरसिंह मन-ही-मन अनुमान लगा रहा था, कि बस, अब, खिमुली भौजी के सब्र का धागा टूटने ही वाला है, सो आखिरी बात बोला—"थोकदार चचा ने अन्त में यही कहा, कि डुँगरिया भतीजे, गाय अपने लिए चरती है, बाछी अपने लिए । तू भी जवान आदमी है । टाँग में जरा तकलीफ हो रही है, तो क्या हुआ ? कोई टूटके अलग तो नहीं हो गई है ? शादी कर लेगा, तो घरवाली जरा अपना-जैसा समझके हलके हाथों से गरम-तेल की लगातार मालिश करेगी, तो चार दिन में तैयार हो जाएगी । मगर, सबसे पहले तू यही कर कि अपना हिस्सा अलग करवा के न्यारा हो जा । तेरे हिस्से की खेती का काम-काज मैं अपनी जैंता ब्वारी से सँभलवा दूँगा । एक बेटा करमसिह हाथ से निकल गया, तो तुझे उसकी जगह पर समझ लूँगा । और आज शाम को वह मेरे चनरदा से, भौजियों से बातें करने को आने वाले हैं । मुझको कह

रहे थे, कि उनके मुँह-सामने मैं जरा होशियारी से ही तेरा पक्ष लूँगा—और···"

"क्यों, इजा, यहाँ सीढ़ी पर खड़ी-खड़ी क्या कर रही है ?"—कहते हुए, दिवान सीढियों से चढने लगा, तो व्यथित खिमुली के हाथों से रोटियों की थाली नीचे गिरते-गिरते बची। दिवान पर उसे गुस्सा आया, कि कहीं इसकी बात डूँगरसिंह ने सुन ली होगी, तो सोचेंगे, 'खिमुली भौजी, छिपकर, बातें सुन रही थी।' उसका मन ग्लानि से और भी खिन्न हो गया, और आँखों में आँसू आ गए, कि जिस देवर को मैं छोटे भाई की तरह प्यार करती हूँ, वही ऐसा कलेजा चीरने वाली बातें करता है।

उदास मन लिए, खिमुली रोटियों की थाली लेकर, अन्दर की ओर चली—टूटे हुए घुटनों से सीढ़ियाँ चढ़कर। दिवान ने सिगरेट के दो डिब्बे दिए डूँगरसिंह को, और नोट लौटाते हुए, बोला—"बौज्यू कह रहे थे, डुँगरिका से पैसे लेकर सिगरेट ले जाएगा, क्या रे ? कह रहे थे, कि डुँगरिका से कहना अपने, कि कहीं घर की चीज भी मोल मँगाई जाती है ?"

"मगर, डूँगरसिंह को फोकट की सिगरेट का धुँवा जरा कड़ुवा लगता है !"—कहते हुए, डूँगरसिंह ने नोट और सिगरेट के डिब्बों को दिवान के हाथ में रख दिया—"अपने बौज्यू से कहना, कि पहले दोनों डिब्बों के दाम काट लें, फिर डूँगरसिंह के पास भेजें। दुकानदारी में घर की चीज कहीं बिकती है ?"

दिवान हताश होकर चला गया, तो डूँगरसिंह विस्मय जताते हुए बोला—"अरे, ठुलि भौजी ! खड़ी-खड़ी तकलीफ क्यों उठा रही हो ?"

खिमुली कुछ नहीं बोल सकी। चुपचाप रोटियों की थाली सामने रखकर, आँसुओं को पोंछती हुई, बाहर निकल गई।

१४

एक बात सोचने की है कि अगर थोकदार के मन में यह लालसा नहीं होती, कि तीनों भाइयों का एक परिवार बना रहे और डूँगरसिंह बेचारा सबसे छोटा और इस समय विपदा में है, तो उसके साथ जरा लाड़-प्यार का बर्ताव हो, ताकि आगे चलकर उसकी भी कोई जड़ जमाई जा सके—तो बादलों-भरे आकाश को खास अपनी आँखों से देखते हुए भी, बात से चड़कते-चसकते शरीर को मेहनरसिंह-की-बाखली तक लाने की गरज क्या थी ?···

मगर, थोकदार की इस भलमनसाहती का बदला यह मिला, कि और दिनों उधर से गुजरता देखते ही, 'बैठो सौरज्यू, एक चिलम तमाखू पी जाओ !' कहकर, नरम-ऊन वाली खाल बिछाकर, आग्रहपूर्वक बैठाने वाली खिमुली ने आज एक बार तिरछी आँखों से देखा, और फिर पीठ फरकाकर, अपने काम में लग गई।

वर्षा तो नहीं हुई थी, मगर बादल अपनी जगह पर अड़े हुए थे।

सूरज ढले अधिक समय नहीं हुआ था, मगर अँधेरा एकदम घना होने लगा था। गाँव-घरों में दीपक जल गए थे।

खिमुली ने भी घर और देपताथान[1] मे दिए जला लिए थे। गोठों के लिए बत्तियाँ बना रही थी। गाय-भैंसों का दूध दुहना था। भिमुली भी खेतों से लौट आई थी, और अपने दो बरस के रतनुवा को दूध पिला रही थी।

दो दियों में बत्तियाँ रखकर, शीशी में से तेल डालते हुए, खिमुली ने भिमुली से कहा—"ले वे, दिवान की काकी! आज ठीक साँझ की बेला में हमारा कल्याण चाहने वालों के पाँव पटाँगण में गड़ गए हैं। जरा यह दीपक रख आ, गोठ की देली के ऊपर वाले जाले[2] में।"

थोकदार को ऐसा लगा, कि बाहर ठंडी हवा बड़ी बेचैनी से वार-पार फिर रही है। मन हुआ, कि लौट जाएँ। मगर, अँधेरा बढ गया था। घर से तो यह सोचके चले आए थे, कि आते समय छिलुक[3] जलाकर तो दे ही देगी कोई ब्वारी! मगर, खिमुली का तो रूप ही अलग दिखाई दे रहा था। थोकदार समझ नही पा रहे थे, कि आखिर अकारण ही आज उनके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार क्यों किया जा रहा है?

कहने को तो खिमुली ने डूँगरसिह की सभी बातें अपनी देवरानी भिमुली से कह रखी थी, कि 'थोकदार सौरज्यू-जैसे बुजुर्ग आदमी से ऐसी घरफोड़-बातों की उम्मीदी नहीं थी।'—मगर, भिमुली ने दिया रखकर लौटते हुए, थोकदार को आँगन में उदास-मुख देखा, तो उससे नही रहा गया। आगे बढ़कर, बोली—"क्यों, थोकदार सौरज्यू, पटाँगण में क्यो खड़े हो? किसी खास काम से आए हो, तो अन्दर चाल में चल के बैठो;

---

१. देवता का मंदिर। २. आलना। ३. चीड़ के पेड़ में से एक विशेष प्रकार की लीसावाली लकड़ी निकलती है, उसी को छिलुका कहते हैं और यह मशाल का काम देती है। इसकी मशाल को लोग 'पहाड़ी गैस' भी कहते हैं।

खिमुली के जोर से बोलने से आँखें उघड़ीं, तो झटपट बैसाखी टेकता बाहर को निकला। उनींदेपन के धुँधलके में, सीढ़ियों पर से गिरते-गिरते बचा।

झिमुली ने 'अदर बैठो, सौरज्यू !' कहा था, तो थोकदार का मन थोडा शान्त हो गया था, मगर खिमुली ने देली में खड़ी होकर, फिर खुदा के घर की जैसी बातें सुनाई, तो क्रोध आ गया। लाठी से पटाँगण के पत्थरों को ठकठकाते हुए, थोड़ा आगे बढ़कर, बोले—"खिमुली ब्वारी वे, इस दीपक जलाने के टैम मुझ बूढ़े को ऐसे खोटे बचन सुना रही है, और 'आओ, सौरज्यू, बैठो !' कहाँ कहेगी ! चार बातों को अपने से बड़ों के सामने कैसे करना चाहिए, इस बात का लिहाज कहाँ से रखेगी—उलटे काटने-खाने को जैसा मुँह खोल रही है ? एक बात सोचने की है, कि जब तू मुझ-जैसे बुजुर्ग आदमी से ऐसी बदसलूकी कर रही है, तो भला डुँगरिया बेचारे की क्या लाज रखती होगी ?"

खिमुली तो खार खाए बैठी थी। तमककर, बोली—"सिर्फ बुजुर्ग होने से ही कुछ होता नहीं, थोकदार सौरज्यू ! आदमी में बडों की जैसी नेकी और लियाकत होनी चाहिए। सल्ल[1] का पेड़ ज्यों-ज्यो बूढ़ा होता है, त्यों-त्यों रास्ता चलने वालों के लिए खतरा पैदा करता है। जितना बासी दही होना है, उतना ही मुँह खट्टा करता है। बुजुर्ग आदमी को तो हमेशा गूड[2] की जैसी डली होना चाहिए, कि जितना ज्यादा पुराना पड़े, उतना ही गुणकारी होता जाए !—और जहाँ तक लियाकत-लिहाज रखने का सवाल है, तो यह बात है, थोकदार सौरज्यू, कि घर बनाने वाले ओड़-मिस्त्रियों की सभी लोग आव-भगत करते हैं, घर की दीवारों को भतकाने-उधारने की कोशिश करने वाले दुश्मनों को कलेजे से कोई परमात्मा भी नहीं लगा सकता।"

"थोकदार चचा, ओ हो, आप भी कहाँ दुष्टों के बीच में अपना

---

१. चीड़। २. गुड़।

फजीता करवाने को आ बैठे हैं ?"—डूँगरसिंह, थोकदार को हाथ पकड़-कर, पीछे को खींचते हुए, खेदपूर्ण स्वर में कहने लगा—"मैंने तो आपसे पहले ही कह दिया था, कि आपके समझाने-बुझाने और चार बातें नेकी की करने की वकत-कीमत गाँव के हर घर में हो सकती है, क्योंकि आप इस गाँव के थोकदार हैं, सिरताज बुजुर्ग हैं—मगर, हमारे घर के दुष्ट लोगों के लिए तो यही बात है, कि 'हाथी की सलाह शेरों की समझ में भले ही आ जाए, पर स्यालों[1] ने तो उसे पाद मारके उड़ा देना है।'..."

खिमुली देली में खड़ी-खड़ी दोनों हाथ जोड़कर, बहुत ही व्यथा और आक्रोश के साथ चिल्लाई—"धन्य हो, डूँगरसींग ! धन्य हो ! मेहनरसींग सौरज्यू ने भी एक ही नमूना पैदा करके रख दिया, धौलछीना में। अभी दाढ़ी-मूँछों के बाल भी पूरे नहीं फूटे हैं, अभी से ऐसी महा-सत्यानाशी बुद्धि है, तो आगे चलकर न-मालूम कितनों का घर उजाड़ोगे !"

"जरा जबान सँभालकर बोल, ठुलि भौजी ! लावारिश ही हूँ, अकेला ही हूँ करके, यों मेरी छाती में पत्थर-पर-पत्थर मत मार। इसके अलावा, अपनी औकात भी मत भूल, कि इस घर में मेहनरसिंह के बेटे डूँगरसिंह का जितना हक है, उतना ही चनरसिंह का भी है—उससे ज्यादा नहीं। भौजी है, सोचकर, इज्जत रखता चला आ रहा हूँ, तो ..."

"अरे, डूँगरसींग देवरिया, तू क्या रखेगा किसी की इज्जत ? छोटे भाई की जगह पर समझकर, अपना है करके मोह-ममता से, लँगड़ी टाँग की मालिश करती हैं, भिमुली और मैं—तो, तू बेहया पेट का चिथड़ा ऊपर उठा-उठाकर, मुस्यार[2] होने की तैयारी दिखाता है। अरे, हम लोग तो यह समझती रहीं, कि अनब्याहा देवर है, तो बालकों की जगह पर है। जब दिवनिया या रतनुवा की मालिश करते समय कभी बुरा नहीं लगा, तो देवर का क्या बुरा माना ? और फिर अपना मन पवित्र है, तो

---

१. गीदड़ों। २. खसम।

दूसरे का पाप उसके सिर पर !"—खिमुली, देली से पटाँगण में उतरते हुए वोली—"अच्छा बताओ, हो डूँगरसिह ! ऊपर को होती उमर है तुम्हारी, भगवान् करे, सौ बरस की हो, मगर अपना ईमान-धरम देखकर बताना, कि आखिर आज के दिन तक हमने तुम्हारे साथ, भलाई की जगह, बुराई वदनेकी क्या की ? हाँ, भौजियों के नाते कभी हँसी-ठट्टा कर लेती थीं, कि शायद, ऐसे जो व्या करके गृहस्थी सँभालने की कोशिश करोगे। मगर, गाई का अमरित-जैसा दूध सर्प के मुँह में जाके विप बन जाता है। तुम्हारा तो मच्छरों का जैसा स्वभाव है, देवर, जो गाई की कचुनी[1] में बैठकर भी, दूध की जगह, खून ही पीता।"

हल्ला-गुल्ला सुनकर, पास-पड़ोस के लोग भी एकत्र हो गए थे। यहाँ तक कि डँगरियों-की-बाखली और थोकदार-की-बाखली के भी पहुँच गए। गोपुली काकी ने आगे आकर, खिमुली की च्यून[2] में हाथ लगाकर, पूछा—"क्यों, वे खिमुली ब्वारी, क्या हो गया है ?"

खिमुली का मन तो डूँगरसिह की दोपहर की बातों से बासी दूध-जैसा फटा हुआ था, अन्दर-ही-अन्दर। झगडे की आँच लगी, तो टुकडे जैसे हो गए। दिन में चनरसिह भात खाने को आया था, तो खिमुली ने उससे डूँगरसिह की सब बातें कही थी, और उसका हिस्सा अलग दे देने को कह दिया था। चनरसिंह भी खार खाए ही बैठा था, सिगरेट के डिब्बे लौटाने से। वाद में उसने दिवान के हाथ सिर्फ रुपया ही वापस भेज दिया था, कि डुँगरिया से बोलना—"चनरसिह की दूकान में घमंडी लोगो के लिए किसी किस्म का सौदा नहीं बिकता।"

देबसिह घर पर था ही नहीं। भिमुली की राय ले ली गई थी, और उसने भी खिमुली की हाँ-में-हाँ मिलाई थी, कि डूँगरसिह को मन-ही-मन डँखर[3] और असन्तोष बहुत है। हमारे साथ न वह खुद चैन से रहेंगे, और न हमें ही निष्कंटक जीने ेंगे। जब से पलटन से लौटे है, और भी

---

१. थनों के ऊपर का हिस्सा। २. ठोढ़ी। ३. डाह।

खूँखार होकर। पहले तो ऐसा था, कि सिर्फ आवारागर्दी और गुडई करते फिरते थे, तो हम लोगो ने विशेप ध्यान नही दिया, कि लौडिया-उम्र है, आगे चलके पाँव अपने-आप थिरने लग जाएँगे, जहाँ एक बार घर-गृहस्थी के जाल में पाँव फँस गए। मगर, ज्याठज्यू, हम लोगों को तो वर्षों हो गए देखते, डूँगरसिंह के डिमैक[1] दिन-पर-दिन खराव होते गए, और अब तो यह हालत है, कि 'धनानन्द हो, तुम्हारा बेटा सदानन्द घर-फूँक तमाशा देखने को तैयार है, आनन्द-ही-आनन्द है।'—सबसे भलाई इसी बात में है कि दिदी जो कह रही है, वही फैसला कर दिया जाए। अच्छा ही है, यदि अलग रहकर, अपनी मति को सुधार लें।"

और चनरसिह ने कह दिया था, कि मैं भी यही ठीक समझता हूँ।

खिमुली से कुछ उत्तर नहीं मिला, तो गोपुली काकी ने डूँगरसिह की ओर मुँह किया—"क्यो रे, डुँगरिया, यह आज बेकार की बकमध्यायी[2] कैसी हो रही है ?

डूँगरसिंह की आँखो में आँसू आ गए—"देख तो रही है, अपनी ही आँखों से, गोपुली काकी, कि कैसे मुझ अभागे, लावारिश, बिपदा मे फँसे इंसान को ये दो दैत्यवशिनी चुड़ैले दातुली कमर में खौस-खौंस के चीरने को आ रही है!—आज मेरे इज-बौज्यू जीवितावस्था में होते, तो मेरी ऐसी दुर्गत थोडे होती!—अरे, बाप रे, 'तिरिया-चरित्तर कोई ना जाना, क्या ब्रह्मा, क्या विष्णू!' मैंने तो सदैव माता के स्थान पर समझा, मगर खुद खिमुली भौजी के ही ये अक्षर हैं, कि 'भौजी पर तो देवर का भी भरपूर हक होता है, और हमारी पहाड में तो बड़े भाई के बाद उसकी औरत, याने अपनी भौजी, से ब्या करने का सम्पूर्ण हक देवर को है!'—और, इस साँझ की टैम बाल-बच्चों वाली होकरके मुझ पर तोहमत लगा रही है। अरे, शरम कर, कुछ शरम कर! धरती फट जाएगी, अपवित्र होकर!—हे भगवान्! इन महापातकी शब्दों को सुनने से तो यही

---

१. दिमाग। २. बकवाद।

अच्छा था, कि मैं कश्मीर-फ्रन्ट में ही मारा जाता।"

इतना कहकर, डूँगरसिंह जमीन पर सिर पटकने लगा—'राँडियों ! पहले तो माता के स्थान पर समझता था, मगर अब तो 'राँडियों' ही कहूँगा ! लावारिश और अभागा समझकर, मुझ गरीब के साथ जो क्रूर अत्याचारी तुम एक थैली की खुस्याणियों[1]—जैसी जेठाणी-देवराणी राँडी लोग कर रही हो, इसका जवाब तुम्हे वहाँ मेरे स्वर्गावस्था को प्राप्त माता-पिता को देना पड़ेगा। मैं तो अब अपना जीना बेकार समझता हूँ—और यही, इसी स्थान पर आज आत्महत्या करके मरता हूँ—हे परमेश्वर···"

इतना कहकर, डूँगरसिंह ने फिर जोर-जोर से सिर पाथरों पर पटकना शुरू किया, और वीभत्स-रुदन करने लगा—"हे, प···र···मे··· श्व···र ! उठा लो मुझे—हे, प···र···मे···श्व···र—हे प···र···म··· पि···ता······"

अरे, रे !···कितने ही लोग वहाँ पहुँच गए। खिमुली और भिमुली को भी 'यह क्या हो पड़ी' हो गई !—लछमा ने डूँगरसिंह के सिर को उठाकर, अपनी गोद में रखा—"अरे, कोई जरा पानी लाओ जल्दी। हाय रे, डंकणियो ! ऐसे सता-सताकर अपने देवर की हत्या कर रही हो ! धिक्कार है, धिक्कार है !···"

आवेश में आकर, डूँगरसिंह ने सिर को पथरौटों पर जोर-जोर से पटक लिया था। जगह-जगह से खून बहने लगा था। उधमसिंह आगे बढ़के बोला—"अरे, डुँगरदा की हत्या कर दी गई है !" और सारे वातावरण में एक भयंकर सन्नाटा-जैसा व्याप गया। खिमुली तो एकदम चिन्ताकुल होकर, लछमा की गोद से डूँगरसिंह का सिर उठाकर, अपनी गोद में रखने लगी थी—"ओ बवा रे, क्या हो गया देवर को ?"—मगर, लछमा ने उसके हाथों को झटक दिया—"बस, बस ! बहुत थूक

---

१. मिर्च।

के आँसू मत लगा अब !"

थोकदार बोले—"उधम, तुम दो-चार लोग लगकर जरा डुँगरिया को मेरे घर तक पहुँचा दो, रे ! यहां तो इसकी हत्या आज नहीं तो कल—एक-न-एक-दिन होने ही वाली है। चलो, उठाओ। मगर, जरा अच्छे ढंग से उठाना। क्यों, बे ठुली ब्वारी, डुँगरिया होश में तो आ गया है ना ?"

"कहाँ से ?" एक लम्बी अवसाद-डूबी साँस खींचकर, लछमा बोली—"बरमान[1] में चोट बैठ गई है, एकदम नाजुक हालत हो गई है। जरा जल्दी करो, सिर में जरा गोरू का या छाती का दूध छपकाना पड़ेगा।"

थोकदार बोले—"बचिया रे, जरा जल्दी मलघर के बिशनसिंह के यहाँ से लैलटेन या छिलुक जला के ले आ। अँधेरे में कहीं और मुशीबत हो रहेगी।"

डूँगरसिंह, बड़े ही जतन से आँखें उघाड़कर, कराहता हुआ बोला—"अरे, प···र···मे···श्व···र—उधम, जरा तू चला जा, मेरे कमरे में। बिस्तरे के सिराने[2] मे—ओ—बबा रे—मेरा तीन श्यालों वाला इवेरेडी-टोर्च रखा हुआ है।"

---

१. ब्रह्माण्ड का अपभ्रंश। यहाँ सिर के अर्थ में। २. सिरहाने।

१५

चनरसिह खबर पहुँचने पर भी, कि डूँगरसिंह पटागण के पथरौटों पर सिर पटक-पटककर आत्म-हत्या कर रहा है, अपनी दुकान में ही बैठा रहा, कि वह तो जरा सँभाल के ही पटकेगा अपने सिर को पथरौटों पर, क्योंकि छ-सात महीने पलटन में रहकर, प्राणों की कीमत पहचान गया है—मगर, मैं पहुँच गया, और गुस्से मे आकर सिर्फ एक बार भी उसका सिर पटक दिया, तो फिर उसके उठने की उम्मीद कम ही रहेगी ! आग लग रही हो, तो उसकी बगल में सूखा इनण[1] नही ले जाना चाहिए। फिर दिवान की इजा जब मौजूद है घर में, तो जो आग उस ठंडे पानी से नही बुझ सकती, उसे मैं क्या बुझाऊँगा ?…"

बात भी, चनरसिंह की, एकदम सही थी।

डूँगरसिह के दुर्वचनों और मिथ्या लांछनों से व्यथित-चित्त और क्रोधित होने पर भी, खिमुली ने दिवान को थोकदार के यहाँ लगा दिया

---

१. ईंधन।

था—"जा पोथी, जरा देख आ—तेरे डुँगरिका होश में आए है या नहीं ?"

डूँगरसिह को थोकदार ने अपनी चाख (बैठक) में रखवा दिया था—"मेहनरसिंह मेरा बालपन से दोस्त रहा। अठेतरी[1] की उमर में वह गुजरा था, चौहत्तरि अब मुझे होते हैं।—मगर कभी तू-तू करने की नौवत नहीं आई। मेरी 'मेहनरदा' और उसकी 'थोकदार भइया' ही चलती रही। डुँगरिया उसी के जिसम का एक टुकड़ा है। कसाइयों के हाथ पड गया, तो जी दुखता ही है।—और आज तो तुम सब गों वालों ने भी हकीकती अपनी आँखों से देख ही ली है ? गों मे किसी के ऊपर भी अन्याय हो, अपनी तरफ से न्यो-निसाफ की कोशिशी करना हरेक का फरज है। अब ऐसा करना है, कि जैसे-तैसे इस छोकरे की जान बच जाए, तो इसके लिए, कुछ-न-कुछ बंदोवस्त कर ही देना है।"

प्रायः सभी ने सिर हिला-हिलाकर, अपनी सहमति प्रगट की, कि 'थोकदार, जैसा तुम ठीक समझोगे, उसमे हम सबकी रजामंदी ही रहेगी।'

दिवान थोकदार की देली के अंदर नहीं घुस पा रहा था। देली तक लोगों की भीड़ लगी हुई थी, इधर-उधर से थोड़ा झाँककर, दिवान घर लौट आया। खिमुली ने पूछा—"तेरे डुँगरिका कैसे हैं, रे, अब ?"—तो खिन्न-स्वर मे बोला—"इजा वे, मैं तो देली के अदर घुस भी नहीं पाया। एकदम भिड़च्याप्प[2] जैसी हो रही है। इधर-उधर से झाँकने की थोड़ी कोशिशी की थी, मगर मुझे तो कुछ ठीक-ठीक अंताज[3]-जैसा नही आया, वे ! एकदम लमतूम पड़े हुए है, डुँगरिका। जैसे परारके साल मरते समय हमारे बूबू पड़े हुए थे।"

"चुप, छोरा ! अलिच्छन बोलता है !"—दिवान को एक थप्पड़ मारते हुए, खिमुली भिमुली के पास गई—"हवे, दिवान की काकी, मैं

---

१. ७८ वर्ष। २. भीड़। ३. अंदाज।

जरा ऊपर डूँगरसीग की तबियत देख आती हूँ। तू दूद लगाले। डूँगरसीग के लिए, गोरू का दूद एक लोटे में वही पहुँचा देना, दिवान को भेजकर।"

झिमुली बोली—"क्यों, वहाँ अपना फजीता कराने को जाती है, दिदी ? डूँगरसींग से बातें करना, कानों में कच्यार[1] भरवाना—एक ही बात है। बबा रे, दुष्टताई की भी कोई हद होती है !"

खिमुली की आँखों में आँसू आ गए—"दिवान की काकी, उमर देख-के कहती हूँ, ऐसे सत्यानाश की उम्मीद नहीं थी मुझे। उस समय मेरे मुँह में भी कीड़े पड गए थे, दिवान के बौज्यू तो समझा ही गए थे, कि थोकदार का आएँगे, तो उनसे कह देना, कि हम राजी-खुशी से डुँगरिया का हिस्सा अलग देने को तैयार हैं। मगर, मेरा चित्त दूसरे किसम का है। अपने जिसम का तो सड़ा हुआ हाड़-मास भी नीचे गिरने लगता है, तो दुख ही होता है। अब अगर डूँगरसीग को कुछ हो गया, तो मैं गाँव वालों को क्या मुख दिखाऊँगी ?"

इतना कहकर, खिमुली जोर-जोर से रोने लगी। झिमुली को भी रुलाई आ रही थी, पर खिमुली को रोते देखकर थम गई—"अरे, दिदी ! ऐसा अपना हिया चीर-चीर के क्यों रोती है ? कोई तूने तो किसी को मारा-काटा नही। देखने वालों की भी आँखें ही होगी ? फिर सबसे बड़ी आँखों वाला तो परमेश्वर है। वही देखेगा, कि कौन कसूरवार है और कोन बेकसूर ? मेरा भी वर्म[2] बोल रहा है, कि आज जो थोकदार सौरज्यू डूँगरसिह को अपनी ठुलि ब्वारी लछिम दिदी के कलेजे से चिपका-चिपका कर ले गए हैं, देख लेना, वही थोकदार सौरज्यू एक दिन 'झिमुली ब्वारी, तू लाख की बात कहती थी !' कहते हुए, इसी पटाँगण में परा-शित[3] के आँसू गिराएँगे।"

खिमुली सकसकाट करती बोली—"बैणा, तू कल की बात कर रही है, और मेरा हिया आज के लिए कंपायमान हो रहा है। सौरज्यू जब

---

१. कीचड़। २. ब्रह्म। ३. प्रायश्चित्त।

मरे थे, तो प्राण छोड़ते समय, डूँगरसींग की ओर आँख उठाकर, मेरा हाथ दबाते हुए कह गए थे, कि 'ठुलि ब्वारी, डुँगरिया ने माँ का मुख ठीक से नही देखा। इसी से उसमे जरा कोमलता भी कम है। मगर, तू मेरे इस बेटे को अपने दिवान के हिस्से की ममता देके पालना, ठुलि-ब्वारी !'—और मैने सिर हिलाते हुए देखा, कि सौरज्यू मुझे अपनी कंपायमान आँखो से आशीरबाद दे रहे थे, 'जी रौ, ब्वारी !'—तू ही बता, मेरी बैणा भिमू, डूँगरसीग को कुछ हो गया, तो मै सौरज्यू की आत्मा को क्या मुख दिखाऊँगी ?…"

पटाँगण के पथरौटों में आँसुओं के मसूरदाने गिराती, खिमुली थोकदार की बाखली को दौड़ी।

थोकदार के पटाँगण में पहुँची, तो देखा, कि देली के पास बहुत लोग जमा हैं। धडकते-काँपते हिया से पीछे की तरफ को दौड़ी। पीछे की तरफ गोठ की खिड़की पड़ती थी। वहाँ से देखा, कि जैंता गाय का दूध दुह रही है, तो धीमे से पुकारा—"जैंता ब्वारी वे !"

जैता दूध दुहके, उठने को हो ही रही थी। पास पहुँचकर, बोली—"क्या है, दिदी ?"

खिमुली ने उसके कपोलों को थपथपाया, और बोली—"जैंता वे, बैणा, डूँगरसीग की तबियत कैसी है ?"

"अरे, इतना क्यों घबरा रही है, दिदी ? तुम्हारा तो कंठ ही एकदम कंपायमान हो रहा है ! जरा सिर में चोट लगी है, ठीक हो जाएँगे। फिकर क्यों करती है ? अच्छा, मैं चलती हूँ, दिदी ! जेठाणी ने दूद मँगाया है, सिर में छपछपाने को।"

"ला, बैणा, दूद की लोटिया मुझे दे दे।"—कहकर, खिडकी से ही उसके हाथ का दूध का लोटा लेकर, खिमुली फिर घूमकर, आगे के पटागण में पहुँच गई। सिर का चाल नीचे करके, मुँह ढाँप लिया। पतले आँचल से झाँकती अंदर को बढ़ी। लछमा ने अंदर से 'नहीं लाई, वे जैंता, गोरू का दूद लगाके ?' पुकारा, तो देली में खड़े लोगो ने खिमुली

को रास्ता दे दिया।

लछमा कह रही थी—"हमारी जैंता ब्वारी के भी खाने के लक्षण कम ही देख रही हूँ मैं। चार छरक दूद लगाने में दिनमान[1] लगा देती है। यहाँ डूँगरसींग परलोक पहुँचे हुए है।"

लछमा के पास पहुँचकर, खिमुली ने जल्दी से दूध का लोटा आगे को बढ़ाया, तो दूध छलककर, डूँगरसिह के मुँह पर गिरा। डूँगरसिह बिलकुल हाथ-पाँव छोड़के लेटा हुआ था। अचानक दूध आँख-नाक में गया, तो 'छीं-छी-छी' करता, इधर-उधर करवटें बदलने लगा। लछमा ने जैंता की ओर देखा और सिर का चाल ऊपर को उठाते हुए, तेज आवाज में बोली—"क्यों वे, खिमुली! शांति से मरने भी नहीं देगी देवर को क्या ?"

थोकदार ने पूछा—"क्या हुआ, ठुलि ब्वारी ?"

"अरे, होना क्या है! जासूसी-भेप धारण करके डूँगरसींग की कातिल भौजी आई है।"—लछमा भर्त्सनापूर्ण स्वर मे बोली—'एक तो बेचारों का अरमान पाथरों मे फोड-फोड़कर पहले ही निश्चेत कर रखा था, उपर से नाक-आँख मे दूध घुसेड़कर साँस बंद कर देने की कोशीश कर रही है।"

खिमुली ने दु:ख से कातर होकर, लछमा के पैर पकड़ लिए—"मैं तो वैसे ही घोर दुखी हो रही हूँ, लछिम दिदी! ऊपर से गुलेल-जैसी क्यों छटकाती है? देवर का बुरा ही चाहने वाली होती, तो कलेजे के कंपायमान टुकड़ों को सँभाल-सँभालकर, यहाँ क्यों आती? अपने दिवान को ही···"

"बस, बस! अब रहने दे, वे खिमुली, अपने ये तिरियाचरित्तर! औरों को उल्लू बना सकती है तू, मगर लछमा को चलाने में जरा टैम

---

१. दिन-भर।

लगेगा !"—कहते हुए, लछमा ने खिमुली को एक ओर को धकेल दिया। दुसह वेदना और असह्य अपमान से छटपटाती खिमुली, दाँतों को किट-किटाने से रोकने की कोशिश करती, गिरती-पड़ती, सीढ़ियों से नीचे उतर गई।

लछमा चिल्लाई—"जैसे अपने दुखी और मरणावस्था को पहुँचे हुए देवर के लिए दाँत किटकिटा रही है, हाय वे डंकिणी खिमुली !···भला तो तेरा सात जन्म में भी क्या होगा !"

० ० ०

डूँगरसिंह को, बाद में, भीतर एक अलग कमरे में सुला दिया गया था। सिर में हल्दी-चूने की पट्टी बाँध दी गई थी।

सबेरे तक डूँगरसिंह की नाजुक हालत में थोड़ा-सा फर्क हो गया, तो थोकदार बोले—"ठुलि ब्वारी, जब तक इसके भाई इसके हिस्से का मकान नहीं देते, तब तक यहीं अपने आप रहता है।"

डूँगरसिंह को चोट लगने से उसकी तबियत क्या बिगड़ी थी, थोक-दार की तबियत—डूँगरसिंह के हक मे लड़ने-बोलने की फुर्ती और मेहनत से—टकटकान हो गई थी।—और वह सबेरा होते ही, जसौंतसिंह को साथ लेकर खेतों की ओर निकल गए थे, कि 'जरा धान के खेतों में एक नजर मार आता हूँ। बड़े खेत का भिड़[1] भतक गया है। जरा चार हाथ लगाकर, उसको भी अधार दे आएँगे।"

जैंता अलग बैठ गई थी[2]—सो, आज भात गोबरसिंह पकाने वाला था······

जैंता सबेरे पानी जाते समय अलग बैठी थी, तो सूचना पाते ही, लछमा ने लताड़ दिया था—"कामचोरों को ठीक काम के समय ही खून

---

१. दीवार। २. रजस्वला हो गई थी।

छूटता है !"—और कटक की चहा[1] पिलाकर, खेतों में लगा दिया था, कि खेती के काम का जहाँ तक सवाल है, उसे तो कोई भी औरत अपने अलग बैठने के ही दिनों में और ज्यादा फुरसत-फुरती से कर सकती है, क्योंकि दूसरे किसी काम में हाथ लगाने-लैक तो वह रहती नहीं—मैं समझती हूँ, चोखी होने तक[2] तू तलटान का सब मडुवा गोड डालेगी ? जाले जितने निकलेंगे, गाड़ धो के नितरने लगा देना, और दिन में घर को आते समय एक गढौल[3] घा का काट लाना, भैंसों के लिए।"

जैता चुपचाप, सिर हिलाकर, चली गई थी। पिछले तीन वर्षों से वह लछमा का कठोर शासन सहती आ रही थी, और अब अभ्यस्त हो गई थी। करमसिंह था, तो उसके सब-कुछ था। लछमा ज्यादा काम बता-बताकर बिलमाती, तो बुरा भी लगता था, और कभी-कभी विरोध भी कर देती थी। तब लछमा मुँह मटकाकर, गाँव की किसी दूसरी औरत से बातें करते हुए, अप्रत्यक्षरूप से व्यंग्य करती थी—"बहुतों को तो एक नई ही जवानी-जैसी आती है, वे ! ब्या क्या होता है, बमकने लगती है। ब्या तो हमारा भी हुआ था, मगर, ऐसी बेचैनी-बेकाबू जवानी कभी नहीं आई, कि घर का काम-काज छोड़के खसम की ही परदक्षिणा-जैसी फिरते रहना, कि मैं तेरी दिवानी, तू मेरा दिवाना है'—जैसी आग होगी, धौ[4] भी नहीं होती।"

और, जब करमसिंह को बाघ ने मार दिया था, तो कुछ दिनों तक जैसे-तैसे सब्र करने के बाद—आखिर लछमा ने कह ही दिया था—"अरे,

---

१. कुमाऊँ में तीन प्रकार की चाय पी जाती है। एक चीनी डालके, जिसे चीनी की चहा कहते है, दूसरी गुड़-मिसरी या मिठाई को कुतर-कुतरकर खाते हुए, ऊपर से चाय की घूँट भरकर, जिसे 'कटक की चहा' कहते हैं, और तीसरी पद्धति यह है, कि हथेली में चीनी रखकर, उसमें जीभ लगाकर, चाय की घूँटें भरना—इसे 'टपक की चहा' कहते हैं। २. रजस्वला होने के कहीं तीसरे दिन, कहीं चौथे और कहीं पाँचवे दिन औरत शुद्ध मानी जाती है। ३. घास। ४. तृप्ति।

औरत का निचोड़ा हुआ मरद था, बाघ का मुकाबला कैसे करता ?"

जैंता के कानो तक यह बात बहुत दिनों बाद पहुँची थी। वह जानती थी, लछमा से बोलने मे अपना ही फजीता होगा। जैंता स्वभाव से भी शर्मीली थी। विशेषकर लछमा के सामने बोलने मे तो वह अपने को असमर्थ ही पाती थी। जब तक जैंता कोई बात कहने की तैयारी करती, तब तक सौ बातें सुना करके, लछमा चल भी देती थी।

लछमा अगर थोड़ा किसी से हिचकती थी, बोलने में, तो भिमुली से। भिमुली हँसी-हँसी में ही लछमा पर ऐसा टौन्ट कसती थी, कि लछमा चुलबुलाकर रह जाती थी।

जब तक सुहागिन थी, जैंता-भिमुली का एक गुण आपस मे मिलता था, एक नही। मिलने वाला गुण यह था, कि जितनी विनोदिनी प्रफुल्ल-वदना और स्मितमुखी भिमुली थी, वैसे ही, 'जैंता वे' पुकारने पर बाँसुरी के सबसे नीचे के छेद में से निकलने वाले स्वर मे 'हो ऊ' कहने वाली जैंता थी। उसके कपोलों पर हँसते-बोलते समय बुरूंश-फूल जैसे दौड़ते थे। नही मिलने वाला गुण, बस, यही था कि जैंता जबाव लगाने मे तेज नही थी और लछमा जेठानी से टक्कर नही ले सकती थी।

दूसरा गुण तो पहले से ही नही था, और निराधार रह गई, सिर-छत्र करमसिंह के गुजर जाने से, तो पहला गुण भी लोप-जैसा हो गया था। कभी-कभार खिमुली-भिमुली और गोपुली काकी से बात करते में होंठों-ही-होंठों में तैयार की हुई हँसी हँस देती थी, या कभी देवर जसौतिया और भतीजे रमुवा की विनोद-भरी बातों से उसके उदास मुख में थोड़ा घाम-जैसा आता था।

उसको कुछ ऐसा लगता था, कि वैधव्य की अमंगल-छाया पड़ जाने के बाद, उसे लछमा की तरह अधिकारपूर्वक इस घर मे रहने, खाने-पहनने और बोलने का सुख पाने का कोई हक नही रह गया है। उसने सोच लिया था, कि अगर सुख ही उसे पाना होता, तो संतानवती होने की उम्र में विधवा क्यों होती ?···

यों ससुर के लिए बेटे की जगह पर थी, देवर जसौतसिंह मुँह से वचन जमीन में नहीं गिरने देता था, भतीजे भी सुजात थे, अच्छे ही मुख से 'काकी-काकी' पुकारते थे—मगर, जैता ने अपना मन मार लिया था। उसने लछमा को स्वामिनी, और अपने को नौकरानी के रूप मे समझ लिया था, सो लछमा जो-कुछ कहती, उसे 'हाँ, दिदी!' कहते हुए, निर्विरोध कर लेती थी।

यही हाल खाने-पीने-पहनने में था। इधर तीन महीने से जरा भात की रसोई उसके हाथ आई हुई थी, लछमा के पेटाली होने के कारण। अन्यथा, घर में भरपूर-भण्डार होते हुए भी, जैता के लिए कसर ही थी। बड़ी और नौ बच्चों की महतारी होने के नाते, घर की एक-छत्र स्वामिनी लछमा ही थी। सो, जैता के लिए सास के समान थी। दूध-दही से लेकर, हर अच्छी-भली चीज में ताला ही लगा रहता था, और उन तालों की चाबियाँ सिर्फ लछमा के गुच्छे मे ही शोभा पाती थी।

आजकल दिन को रसोई का सामान—चावल-दाल-साग-नून-तेल के अलावा—निकाल के रख जाती थी। जैता का काम सिर्फ उसे अच्छे ढँग से पका देना होता था। कोई कोर-कसर रह जाती, तो रसियारी वही थी, चार बातें उसी को सुननी पड़ती थीं, ससुर और जेठ की। ऊपर से लछमा भी अपनी तरफ से जरा काम की शिक्षा दे देती थी—"हँवे, इतनी उमर हो गई है तेरी, मगर चार मुट्ठी दाल-चावल उबालना नही आया! रसियारी का चित्त ठिकाने पर हो, जरा मन लाकर काम करे, तो अपने आप ही खाने-पीने की चीजों मे मिठास आ जाती है।"

जैता चाहती, तो विरोध कर सकती थी, शिकायत कर सकती थी—और अभी सिर पर ससुर मौजूद थे, लछमा को डाँट-फटकारकर ठीक कर सकते थे। मगर, जैता न-जाने अपने किस पाप का प्रायश्चित्त-सा करती रही।

° ° °

जैता को रवाना करने के बाद, लछमा ने बड़ी कढाई मे दूध गरम

किया और सब बच्चों को लैन से बिठाया। एक-एक, दो-दो रोटियाँ घी से चुपडी देने के बाद, किसी को गिलास, किसी को कटोरा भरके दूध दिया। एक-एक गुड़ की डली दी। गोबरसिंह नौल नहाने चला गया था, और ननद गोविन्दी उखल कूट रही थी। 'जरा फुर्ती से हाथ चलाओ, हो गोविन्दी!' कहकर बच्चों को दूध-रोटी देकर, लछमा ने एक गिलास दूध भरा, और डूँगरसिंह के लिए ले गई। डूँगरसिंह नीद से जगा नहीं था। लछमा ने आवाज दी—"डूँगरसींग हो, उठो, अब दोफरी[1] होने को है।"

डूँगरसिंह आँखों पर हाथ फेरता हुआ उठा, और लछमा को थोडी देर तक देखते रहने के बाद, लपककर, उसके पाँवों को छूकर, पड़े-पडे ही बोला—"लछिम भौजी, तुम्हारे रूप में मेरी इजा ने दूसरा अवतार लिया है। इमान से कहता हूँ, एक जनम इजा ने जनम-माता के रूप में दिया था, कल दूसरा जनम तुमने धरम-माता के रूप में दे दिया।"—और डूँगरसिंह ने दुबारा लछमा के पाँवों पर अपने हाथ धर दिए—"लछिम भौजी, तुम्हारा ऋण मेरे सिर पर आखिरी टैम तक रहेगा।"

लछमा तो गौरव से गदगद हो गई। मीठे, वात्सल्य-भरे कंठ से बोली—"अरे, पोथी! मेरे लिए जैसे रमुवा-सबलुवा है, ऐसे ही तुम हो। तुम्हारे सगे नहीं है हम, तो क्या हो गया? चार दिन किसी भी मनुष्य-प्राणी की सेवा-टहल कर देना, एक फरज होता है। लियो, यह दूद पी लियो। आज जरा चीनी खतम हो गई है, गुड़ ही लेकर आई हूँ। बड़ा कुटुम्ब है, चून-चून करके पर्वतों का पता नहीं चलता।"

डूँगरसिंह बैठ गया था। लछमा के हाथ से दूध का गिलास लेते हुए, बोला—"अरे, लछिम भौजी! एक काम करना। जरा अपने रमुवा और सबलुवा को भेजकर, मेरा टिरंक-बिस्तर और किट मँगा लो। देली के दरवाजे के कोने में मेरे एक जोड़ी बूँट भी पड़े होंगे। टिरंक में जरा

---

१. दोपहर।

तुम्हारे बच्चों के लिए मिठाई है, और गौं वालों में बाँटने के लिए गुड़-मिसरी।"

लछमा तेजी से लौटकर, रसोई के कमरे में पहुँची। सबलुवा और रमुवा के कंधों को हिलाते हुए बोली—"जाओ तो, चेलो, जरा नीचे मेहनर सींग सौरज्यू की बाखली तक। वहाँ से अपने डुँगरिका, जिनको कल उस डंकिणी खिमुली ने पटाँगण के पाथरों से मारा था और रात को जिनके सिर में दूद छपछपाकर पट्टी बाँधी थी मैंने—अपने डूँगरिका का सन्दूक, बिस्तर, बोरिया, देली के दरवाजे मे उनका बूँट पड़ा हुआ होगा—सारा सामान उठा ले आओ तो।"

रमुवा-सबलुवा में विशेष उत्साह-जैसा नहीं जगा, तो लछमा बोली—"सन्दूक में तुम्हारे डुँगरिका ने तुम्हारे लिए मिठाई रखी है।"

और रमुवा-सबलुवा ने वहाँ की कूद अपने पटाँगण में ही मारी। सबलुवा तो फिसलकर, ऊखल-कूटती गोविन्दी से जा टकराया। गोविन्दी के हाथों का मूसल, ऊखल की जगह, पाँवो में लगते-लगते बचा और वह चिल्लाई—"क्यों रे, सबलुवा, आँख नही देखता है क्या?"

सबलुवा तो 'दिदी, नाराज क्यो होती है, वे? हम डुँगरिका का मिठाई का सन्दूक लेने जा रहे हैं!' कहते हुए, रमुवा के साथ दौड़ गया। लछमा पाँव पटकाती अंदर से बाहर को निकली और नौल से गागर भरकर लौटते हुए, गोबरसिह को सुनाते हुए बोली—"हमारा कल्याण ही चाहने वाली हो, गोविन्दी ननदी हो, तुम भी। ओ, बबा रे! सबेरे-सबेरे बालकों की आँखों पर मुसिया-चील की तरह लपकते हुए तुम्हे जरा दया भी नहीं लगी?"

गोबरसिह के 'क्या हुआ, वे?' पूछने तक—अपना मतलब पूरा करके लछमा अंदर भी चली गई।

१६

पहले तो रमुवा और सबलुवा दोनों में विवाद होता रहा। रमुवा कहता था—"तू बिस्तरा ले जा, मैं मिठाई का सन्दूक ले जाऊँगा।" और सबलुवा कहता था—"तू बाकी सब सामान ले के जा, मैं मिठाई का सन्दूक लेके आता हूँ।"

आखिर रमुवा ने, कुछ सोच-विचारकर, कह दिया—"अच्छा तू ही ले जा मिठाई का सन्दूक, और खुद बिस्तरा बाँधने लगा। सबलुवा को पहले तो खुशी हो गई, मगर उठाने की कोशिश करते-करते मुँह पसीने से भर गया, सन्दूक नहीं उठाया जा सका।

रमुवा को हँसी आ गई—"खाता है मिठाई? सन्दूक उठाने वाले हाथ दूसरे ही होते हैं।"

सबलुवा खिसियाकर, बोला—"अच्छा, तू ले जा अकेले। मै अपने हिस्से में से एक लड्डू तुझे दूँगा।"

रमुवा जल्दी से लपका पूरी ताकत लगाकर, थोड़ा उठा भी लिया।

मगर, फिर सोच लिया, कि अकेले घर तक ले जाना कठिन है। समझौते के स्वर में, बोला—"देख, रे सबलुवा ! ले जाने को तू बोल, तो मै अकेले ही पहुँचा सकता हूँ, मगर रास्ते में एक-दो जगह गिरेगा जरूर। सन्दूक की तो नमो-नारायण होगी ही, मिठाई के लड्डू भी तो टूट जाएँगे।

सबलुवा पहले-पहले तो व्यंग्यपूर्वक बोला—"जा, जा, ऐसे अकेले ले जाने वाले बहुत देखे थे, रमदा-जैसे पहलवान !"—मगर, फिर यह सोचकर, कि कही जोश में आकर, सचमुच ही उठा ले गया, तो जरूर कही-न-कही पटकेगा ही ? हो सकता है, सीढ़ियो मे नीचे पटाँगण के पत्थरों पर गिरा दे ? सन्दूक की तो नमः शिवाय होगी ही, लड्डुवो की नमो-भगवते-वासुदेवाय होने में भी टैम नहीं लगेगा !—सबलुवा जल्दी से बोला—"अच्छा, दोनों मिलके ले चलते हैं, और पहले मिठाई का ही टिरंक पहुँचा के आते हैं। बाकी सामान बाद में ले जाएँगे।"

रमुवा, सन्दूक की एक ओर की कड़ी को पकड़ते हुए, बोला—"अपने हिस्से में से जो एक लड्डू देने की शर्त लगाई थी तूने, उसमें से आधा देना पड़ेगा।"

० ० ०

खिमुली विषाद-भरी आँखों से रमुवा-सबलुवा को डूँगरसिह का सामान ले जाते देखती रही, जरा-सा भी विरोध नही किया। भिमुली ने अर्थपूर्ण आँखों से उसकी ओर देखा, तो व्यथित स्वर में लापरवाही से बोली—"बच गए है, इतना ही बहुत है। अब हमारी तरफ से कुछ भी करें। लकड़ी के टुकड़े हों, तो कील ठोककर, जोड़ने की उम्मीद रहती है। मगर, सख्त पाथर टूटके अलग चला गया, तो कहाँ जुड़ने वाला है ?"

रमुवा और सबलुवा ने थोडी ही देर में डूँगरसिह का सारा सामान पहुँचा दिया था अपने घर, बल्कि उसके कमरे मे रखा हुआ, एक धान का बोरा भी उठा लाए थे। गोबरसिह ने उनको फटकारा भी, कि 'अरे, छोरो, धान का बोरा क्यों उठा लाए ?'—मगर, लछमा ने डपट दिया—"डूँगरसिंह के हिस्से के क्या ये चार मुट्ठी धान भी नही होते है, पिछली

फसल के ?···तुम भी बड़ी अन्याय की बातें करते हो, रमुवा के बौज्यू !"

गोबरसिंह बोला—"अरे, जो कुछ डुंगरिया के हिस्से का होगा, उसे बँटवारे के समय मिल जाएगा। अभी से ऐसा करना ठीक नहीं है। जाओ रे, छोरो, धान का बोरा वापस रख आओ।"

लछमा ने लपककर, आगे बढ़ते हुए रमुवा को 'ठैर' कहते हुए, हाथ पकड़कर, एक तरफ खड़ा कर दिया; और, फिर क्रोधपूर्वक गोबरसिंह से बोली—"हँहो, तुम से बीच में पड़ने को कौन कहता है ? आगे से चूल्हे मे दाल की पतीली खौल रही है, चावलों का माण नीचे गिर-गिर-कर, लकड़ियों को बुझा रहा है, और तुमारा ध्यान इधर चार मुट्ठी धानों में घुस रहा है ? जाओ, जरा धोती पहन के पहले चूल्हा तो सँभालो ! हजार बखत कह दिया है, समझा दिया है, कि रमुवा के बौज्यू, तुम हो शरीफ और भोले आदमी। तुम घर-गृहस्थी की पेचदार बातों में दखलन्दाजी मत किया करो !···मगर बाबा रे, जो जरा भी इनको अकल आ गई !···"

गोबरसिंह सकपकाकर धोती ढूँढने में लग गया। लछमा रमुवा-सबलुवा से बोली—"अरे, चेलो ! अपने डुंगरिका का बाकी सब सामान तो इसी चाख के एक कोने में लगा दो, और मिठाई का सन्दूक उनके कमरे में पहुँचा दो।"

मिठाई के सन्दूक के पीछे-पीछे, लछमा भी डूँगरसिंह के कमरे में चली गई। लछमा को और रमुवा-सबलुवा को देखकर, डूँगरसिंह समझ गया, कि ये लोग सन्दूक के अन्दर झाँकेंगे जरूर !—और वह, कम-से-कम बिस्कुटों के डिब्बों को किसी को दिखाना नहीं चाहता था। थोड़ी देर सोचने-विचारने के बाद, जेबों को टटोलता हुआ, बोला—"चाबी का गुच्छा नहीं मिला, रे, तुम लोगों को उधर ? जाओ तो, जहाँ मेरा बिस्तरा पड़ा हुआ था, वहीं-कहीं आस-पास में, या जहाँ मेरा टिरंक रखा था, कहीं उसके इर्द-गिर्द ही पड़ा होगा। जल्दी ढूँढ के ले आओ तो। शाबाश !"

रमुवा-सबलुवा दौड़ चुके, तो लछमा से बोला—"लछिम भौजी, लड़कों के वापस आने तक तुम मेरे लिए एक घुटुक चहा की और बना दो। दूध से अमल बुझता नहीं है। चीनी की चिन्ता मत करो। अभी चाबी आ जाएगी, तो कलाकंद के साथ पी लूंगा।"

लछमा चली गई, तो डूँगरसिंह ने छुट्टी की साँस लेकर, सबसे पहले बिस्कुट के डिब्बों को एक तौलिए में लपेटकर, सन्दूक के नीचे के हिस्से में रख दिया। इसके बाद आधी कलाकंद जूतों के खाली डिब्बे में भरकर रख दी, और फिर उतावली से पुकारा—"लछिम भौजी, लछिम भौजी !"

चूल्हे में आग तो जली ही हुई थी, सो कितली में पानी भरके गोबरसिंह के हाथ में थमाकर, 'जरा यह चहा की कितली चूल्हे में चढा देना, हो !' कहकर, लछमा डूँगरसिंह के पास पहुँच गई—"क्या है, डूँगरसिंह ?"

"चाबी मिल गई है। कल से मेरे होश भी ठिकाने पर नहीं हैं। यहाँ अपने सिरान चाबी का गुच्छा धर रखा था, ढूँढने को छोकरों को वहाँ पदा दिया है।"—कहकर, डूँगरसिंह हँस पड़ा, और मिठाई बाहर निकाल कर, लछमा से बोला—"यह लो, मिठाई और जिलेबी, लछिम भौजी ! मेरा ध्यान कल से जरा ठीक नहीं है। गुड़ की भेलियाँ और मिसरी किट में होंगी ! किट कहाँ रखा है ? वहीं से निकाल लेना।···और लछिम भौजी, मिठाई जलेबी तो सब तुम्हारे ही बाल-बच्चो के लिए है, मगर जरा-जरा गुड-मिसरी गाँ वालों में बाँट देना। लोग कहेंगे, इतनी बड़ी पलटन की नौकरी से घर लौटा, तो जरा मुँह मीठा नही कराया···और, लछिम भौजी, ऊपर डँगरियों-की-बाखली के किसनूका और गोपुली काकी के यहाँ जरा चार कुजे मिसरी के ज्यादा भेज देना।"

लछमा मिठाई की पुन्तुरी (गठड़ी) बाँधते-बाँधते, जरा-सा हँस पड़ी। डूँगरसिंह कभी नरूली पर आसक्त था, यह बात लछमा को मालूम थी। खैर, लछमा को इससे क्या करना था ? पुरुष के मन और कमल-वन

के भौरों को आज तक किसने समझा है। बेचारा उसे तो माँ की जगह पर समझ के, बडी श्रद्धा के साथ चरण पकड़ता है।

"जरूर, जरूर ! तुम बेफिकर रहो, देवर !"—कहते हुए, लछमा कमरे से बाहर निकल आई। उसी की बगल में लछमा का कमरा था। फुर्ती से अपने बड़े सन्दूक का ताला खोलकर, लछमा ने मिठाई की पुन्तुरी अन्दर रखी, और दूनी फुर्ती के साथ चाख के एक कोने मे रखे किट में से गुड की भेलियों और मिसरी को निकाल लिया। दो भेली गुड और थोड़ा मिसरी बाहर रखकर, बाकी सब भी टिरंक में रखा। और, फिर मिठाई की पुन्तुरी में से थोडे बाल के लड्डू, भुटी कुन्द[1] के लड्डू निकाले और थोड़ी कलाकन्द।

रमुवा और सबलुवा के लौटने तक, लछमा ने गुड़ की दोनों भेलियों के छोटे-छोटे टुकड़े बनाकर, एक बड़ी थाली भर ली थी। एक थाली में मिसरी के कुंजे रख लिए थे।

रमुवा और सबलुवा निराश-मुख लौटे, तो लछमा दूर से ही बोली—"अरे, चाबी का गुच्छा यहीं मिल गया है, तुम्हारे डुँगरिका का। क्या करें, बेचारे कल से बेहोशी-बेखबरी की जैसी हालत में पडे हुए है, अपने ही तन-बदन की सुध-बुध नहीं है।···बीच बरमान मे चोट बैठ गई है। अच्छा, रे ! तुम लोगो को मै मिठाई बाद में दूँगी। पहले तुम दोनों जरा अपने स्कूल जाने वाले वस्ते खाली करके ले आओ तो।"

रमुवा-सबलुवा दोनों जल्दी से लपके और अपना-अपना खाकी बस्ता खाली कर लाए। लछमा ने पहले दोनो झोलों में आधी-आधी थाली गुड़ और आधी-आधी थाली मिसरी के कुजे डाले। फिर एक-एक लड्डू भुटी कुन्द और एक-एक बाल का दोनों को दिया—"लो, रे चेलो, डुँगरिका के सही-सलामत पहले पलटन से, और बाद मे अपनी डंकिनी भौजियो के पाथरों से बचकर यहाँ पहुँच जाने की खुशी में मिठाई के लड्डू

१. भुने हुए खोए को 'भुटी कुंद' कहते हैं।

खाओ।···और, रमुवा रे, यह झोला लेकर, अपने डुँगरिका की तरफ से ऊपर डँगरियो-की-बाखली में जा। और, एक-एक डली गुड़ की, दो-दो कुंजे मिसरी के—ये तो तीन हो जाएँगे ? ऐसा करना, दो टुकड़े गुड़ और दो टुकड़े मिसरी के हरेक घर मे पहुँचा आना, कि डगरिका ने पलटन की घमासान लड़ाइयों से सही-सलामत लौट आने, और कल रात भी अपनी जिन्दगानी के जाते-जाते बच जाने की खुशी में यह मिष्ठान्न सारे गों-घरों में बँटवाया है।···और तू भी इसी तरह से नीचे मेहनरसिंह-की-बाखली में अपने झोले की गुड़-मिसरी दो-दो टुकडे कुजो के हिसाब से बाँट के आ, रे सबलुवा! डाढ़ू-पन्यौलों[1]-जसे हाथ दोनो डकिणियों ने भी छोड़ ही दिए, तो एक-एक टुकडा उनके हाथ में भी धर देना। अरे, हमारा क्या है, हम बाल-गोपालो वाले हैं। हमे तो सभी के ऊपर दया ही आती है।·· अच्छा, चेलो, जाओ फुर्ती से। फिर भात खाने का टैम हो जाएगा। अपनी बाखली में तो मै अपने-आप तकलीफ कर आऊँगी।" इतना कहकर, लछमा फिर जरा जोर से बोली—"और, हाँ, रे रमुवा! गोपुलिज्यू और नब्ली ब्वारी को, डुँगरसीग की तरफ से दो-दो कुजे मिसरी के ज्यादा दे देना!"

रमुवा-सबलुवा दोनों अदम्य उत्साह के साथ, अपने-अपने खाकी झोले को कंधे मे लटकाकर, आगे बढ़ गए। रमुवा-सबलुवा को ऐसे मिष्ठान्न बाँटने का अभ्यास भी था। मिडिल और अपर प्राइमरी के गाधी-जयन्ती, पंद्रह अगस्त और गणतन्त्र दिवस आदि के उत्सवों में दोनों ने मिष्ठान्न बाँटने के काम में हिस्सा ले रखा था।—और आज तो, खैर, यह घर की मिष्ठान्न-बँटाई थी।

आगे तिबटिया आया। यहाँ से दोनों को अपने-अपने जिम्मे की बाखली की ओर जाना था। अलग-अलग होने से पहले, रमुवा ने सबलुवा का हाथ पकड़ा—"ला रे! शर्त के लड्डू में से आधा।"

---

१. कलछी-चम्मच।

"शर्त का कैसा लड्डू, रमदा रे ? टिरंक अकेले न तू लाया और न मुझको लाने दिया—दोनों भाई मिल के लाए हैं। ऐसा करेंगे, घर-लौटने पर इजा से एक भुटी-कुद का लड्डू और माँगेंगे—उसे आपस में आधा-आधा बाँट लेंगे। बस ?"—सबलुवा ने समस्या हल कर दी।

रमुवा ने सबलुवा के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। और, उसके कान के पास मुँह ले जाकर, फुसफुसाकर बोला—"देख रे ! जरा होशियारी से बाँटना। झोले के अन्दर जो भीतरी जेब है, कलम-पेन्सिल और रबर इत्यादि रखने की, उसको भरके बचा लेना। कुछ तेरे स्कूल की पानी पीने की छुट्टी में काम आ जाएँगे, और कुछ मेरे ग्वाल जाने मे। एंत्वार के दिन तू भी चलना। मैं कश्मीर-फ्रण्ट का खेल करने वाला हूँ। डुँगरिका से सीख रखा है।...अच्छा, जरा होशियारी से ही बाँटना, हाँ रे ?"

"तू बिलकुल बेखबर रह, रमदा !" सबलुवा, झोले को कंधे पर ठीक से जमाते हुए, बोला—"मगर, एक अकल की बात मैं भी बता देता हूँ। गुड़ मत रखना, बस्ता जहाँ रखेगा, वहीं एक तो किरमलों[1] की बारात लग जाएगी, दूसरे चौमास के दिन हैं गुड़ गल जाएगा। इसलिए सिर्फ मिसरी के ही कुजे बचाकर रखना।"

o o o

एक कटोरे में कलाकन्द और एक बड़े गिलास में गटमट (गाढ़ी) चहा भरकर, लछमा डूँगरसिह को दे आई। एक थाली में गोबरसिह को दो लड्डू भुटीकुन्द, और दो बाल के दे दिए, एक तरफ एक बड़ा टुकड़ा कलाकन्द भी रख दिया—"लो, हो ! जरा तुम भूख मार लो मिष्ठान्न में। अहा, क्या भुटैन खुशबू छोड़ रहे है भुटीकुन्द के लड्डू !·· एक तुम लोग भी मिठाई लेके आते थे, एक डूँगरसिह भी लाए हैं। अहा, परदेश देख-सुनकर आए हुए आदमी की क्या बात है ?...ये लो, पकड़ो जल्दी।

---

१. चींटियाँ।

थोड़ी देर में फिर सभी लौट के आ जाएँगे। मेरे खसम, और मेरे बालकों के हाथ की चीज सभी को ज्यादा दिखाई देती है।"

बच्चों की तो तबीयत खुश हो गई थी। खाने की जगह, लड्डुओं को चमटने में ज्यादा आनन्द आ रहा था उन्हें।

गोविन्दी, इस बीच, धान कूटकर अन्दर रख गई थी। और, पानी भरने नौल चली गई थी। लौटकर अन्दर पहुँची, तो लछमा ने अपने हाथ का भुटीकुन्द लड्डू जल्दी से समाप्त किया और गरम-गरम चाय के घूँट मारकर, मुँह साफ करते हुए एक बाल का लड्डू और एक मिसरी पकड़ाकर बोली—"लो गोविन्दी! फौल[1] एक तरफ रखकर, तुम भी ले जाओ मिठाई। मेरे बालकों का तो तुम कल्याण ही सोचती हो, खैर! ··मगर मेरा तो मयेड़ी[2] का हिया है, पराई संतान की भी हमेशा भलाई ही सोचती हूँ।"

गोबिन्दी को बात लग गई। फौल रखकर, सीधे बाहर को चली गई—"ठुलदा[3] हो, मैं नानी भौजी[4] के साथ गोड़ने को जाती हूँ। कल पाँव में काँटा चुभ गया था, दुखता है। मैं आज बन नहीं जाऊँगी, घा काटने।"

लछमा ने चाय का गिलास एक तरफ रखा जोर से, और चाय की घूंट से लटपटाती जीभ से—दाएँ हाथ के पंजे को तिरछा करके, बाएँ हाथ की हथेली पर मारते हुए बोली—"अरे, तेरे बमकुवा भेल[5] तेरी नानी भौजी के साथ तलटान के खेतो से घर को नहीं लौटें! अरे, अरे, बबा रे! ऐसी चण्डाल ननद परमेश्वर दुश्मन को भी नहीं दे। सासू ने तो मुझे इस घर में आने के दिन से ही अच्छी आँख से नहीं देखा। मरने से पहले, उस वृद्धावस्था मे भी इस गोविन्दी को छाती पर बिठा गई। अरे, बबा रे! मैं तो अपनी-जैसी चेली समझकर प्यार से दो भुटीकुन्द,

---

१. गगरी। २. माँ। ३. बड़े भैया। ४. छोटी भाभी। ५. चंचल चूतड़।

दो बान के—चार लड्डू दे रही थी, और ऊपर से यह इतना बड़ा कलाकन्द का टुकड़ा भी देने वाली थी—मगर, बमकुली[1] अपने जतिए के जैम भेन[2] मटकाती चली गई !—अरे, अकेली निगरगण्ड बन जाती है, तो यार-दोस्त बना रखा होंगे, उसे मिठाइयों की क्या कमी जिसे·· ”

“बम कर, ओ रण्डा !”—गोबरसिंह, चूल्हे में से जली हुई लकड़ी दिखाते हुए, बोला—“तेरी बकतरुवा-जीभ को इसी जलती लकड़ी से डाम दूंगा। अंट-शट जो-कुछ गलीच मुँह से निकलता है, बकती ही चली जाती है। मेरे ही सामने गोविन्दी को जब तू ऐसी-ऐसी कमीन गालियाँ दे रही है, तो पीठ-पीछे न जाने ···”

“पीठ-पीछे किसी को कुछ बुरा-भला कहे वो डरपोक, जिसकी मुख-सामने कहने में सात जगह फटती हो !”—लछमा गोबरसिंह की तरफ बढ़कर बोली—“लो मारो, जलाके भसम कर दो ! क्यों हो, मुझे खुदा के घर की सुना रहे हो, मगर तुम्हें खुद जरा-सी भी किसी बात की शरम है ? अरे, बबारे, तुम्हारे-जैसा अन्यायी-निर्दयी भी मैंने कोई नही देखा—गर्भवती माता को धू-धू जलती हुई लकड़ी लेके भसम करने को दौड़ रहे हो ? लो, लो, मेरे सभी बालकों का पाप-पराशित तुम्हारे सिर पर रहा—लो, जलाओ मुझको। दुनिया के मर्दो को अपनी मरी हुई घरवाली को चिता में जलाने के लिए ले जाते देखकर, छलछल आँसू फूटते हैं—मगर, धन्य हो तुम्हारे निठुर-निर्दयी मन को ! बबा रे ! जीती-जिन्दगी गर्भवती घरवाली को जलाने दौड़ रहे हो ?—लो लो, लगाओ आग··· मेरा क्या है ? खसम के हाथ से भसम होके तो मेरा तारण ही होगा। बाल-गोपालों की ‘हाय-हाय, हमारी इजा !’ तुम्हारे सिर रहेगी !—लो, जलाओ······”

गोबरसिंह का गुस्सा तो लछमा के प्रचण्ड-रौद्र रूप के सामने तेज धूप में रखी बर्फ-सा बिला गया था। एकदम घबराकर, पीछे हटते हुए

---

१. ओछी और उदण्ड। २. भैसे की जैसी पिछली टाँगें।

काँपती आवाज में चिल्लाया—"अरे, अरे, चूल्हे में झूँत करेगी क्या ?···अरे, रमुवा की इजा, मैं क्या तुझे सचमुच ही जला रहा था ? तू ही बता, आज तक कभी जोर से हाथ भी लगाया है ?"—कहते-कहते, उसके हाथ की लकड़ी अपने-आप नीचे गिर गई और गोबरसिंह का पैर जल गया। पीड़ा के कारण चीख निकलने को हो रही थी, मगर लछमा की अंगार-उगलती आँखों को टुकुर-टुकुर ताकता रह गया गोबरसिंह।···

"अब मेरा मुँह क्या देख रहे हो ? जला लिया न अपना पैर ? बाहर निकलो, रमुवा की दवात में से स्याही लगा दूँगी।"—लछमा उठते हुए बोली, और गोबरसिंह चुपचाप चूल्हे से बाहर आ गया।

स्याही से जले हुए पैर को पोतती हुई, लछमा संताप जताते हुए, दुःख-भरे स्वर में बोली—"अरे, तुम तो बस, गोबरगणेश ही हो। नौ बच्चों के बाप हो गए, मगर जरा-सी की हुशियारी नहीं सीखी। अरे, तुम तो या मुझे दुःख दोगे और मेरे बालकों को सताओगे—या खुद घोर तकलीफ सहन करोगे ! मगर, दूसरों की तो तुम हमेशा बिगैर मतलब की मदत और पैरवी ही करोगे। इतनी भी अकल तुमको नहीं है, कि आख़िर को अपनी ही संतान काम आएगी, अपनी ही जोरू सेवा करेगी।"

गोबरसिंह खिसियाए हुए, और कृतज्ञतापूर्ण स्वर में बोला—"रमुवा की इजा वे, तू तो जानती ही है, कि मैं जरा सीधे किसम का आदमी हूँ, और घर-गृहस्थी की बारीक-पेचदार बातों को समझ भी नहीं पाता हूँ और, इसीलिए, यह उमर होने को आ गई, बाल सफेद होने लग गए हैं—मगर, कभी किसी के काम में दखलंदाजी-ऐतराजी नही की। सब तेरे भरोसे पर छोड़ दिया।"

"तो कौन-सा नुकसान उठा रहे हो ? मेरे भरोसे पर चल रहे हो, तो आखिर सुख से ही चार गास खा रहे हो और चमेली के लगिल[1] जैसी फूलदार गृहस्थी बनाके रख दी है मैंने। नौ-नौ रतन किसी परम

---

१. लता।

भागवान के पास ही होते हैं। जरा सबको सयाना होने दो, राजा की जैसी फौज तैयार हो जाएगी। शान-गुमान के साथ अपने दिन काटोगे—और ये सफेद बाल मुझे क्या दिखाते हो?—मैं तो हजार तरह से कोशिश करती हूँ। दूद के गिलास में घ्यू[१]-मलाई डाल देती हूँ। भात की रसोई आजकल छूटी हुई है, मगर रात की रोटियों के साथ मिलने वाले साग को तो तुमने देखा ही होगा? करीब छटाँक-भर घ्यू छोड देती हूँ।—मगर, जब तुमसे खाया जाए! हर चीज के लिए औरों की पैरवी, कि 'बौज्यू को फलानी चीज दी कि नहीं—जसौंतिया ने दूद पिया, कि नहीं—जैंता व्वारी और गोबिन्दी के साग में घ्यू डाला कि नहीं?' लछिमा और लछिमा के बालक गए तुम्हारी तरफ से तेल लगाने को! अरे, हजार बार समझा चुकी हूँ, कि अपनी-अपनी सभी जता लेते हैं, कोई तुम्हारे-जैसे भोले-भाले नहीं हैं!···जसौंतसींग इतनी दफा लकड़-चिरान में काम करके, रुपए कमाके लौटते हैं—कभी तुम्हारे-मेरे हाथ में कुछ रखा है? जैंता और गोबिन्दी ननदी के तो 'चैना के चुपड़े गुलपिया के ड्योढ़े'[२] कर देते हैं!"—लछमा, गोबरसिंह को प्रज्वलित-प्रश्नवती आँखों से घूरती, कहती गई—"मगर, तुमको समझ नहीं आएगी, हो रमुवा के बौज्यू! खैर, अभी भी सँभल जाओ, तो गनीमत है। अपनी, और अपने बालकों की तन्दुरस्ती की चिन्ता करो। उनको पढा-लिखाकर आगे बढ़ाने की कोशीश करो। और अगर तुम से ये काम खुद नहीं हो सकते, तो कम-से-कम जरा समझदारी से चुप तो रहा करो? ले, मेरी हर बात में अपनी-जैसी दखलन्दाजी-बरकंताजी करने लगते हो! अच्छा जाओ, दाल की पतेली उतारकर, जौल की कढ़ाई चढ़ा दो। ठेकी मे छाँ रखी है, सब डाल देना। पैर में ज्यादा पीड़ तो नहीं हो रही है?"

"नहीं-नहीं। जरा ऊपर लकड़ी ही तो गिर गई थी।"—कहकर,

---

१. घी। २. एक आंचलिक-मुहावरा, जिसका भावार्थ होता है, 'पौबारह' या 'पाँचों अँगुलियाँ घी में'······

गोबरसिंह रसोई में चला गया।

o o o

"तुम जरा बच्चों की देख-रेख कर देना, हो रमुवा के बौज्यू ! मैं जरा पड़ोस में गुड़-मिसरी बाँट आती हूँ। डूँगरसींग बेचारे कहेंगे, 'मैं इतनी तकलीफी में था, पड़ा रह गया। लछिम भौजी ने मेरा जरा-सा काम भी नहीं कर दिया'।"—कहकर, बड़ी थाली मे एक भेली गुड़ की डलियाँ और थोड़े मिसरी के कुंजे लेकर, लछमा पड़ौस के घरो में जाने लगी।

अपने घर की बगल में रहने वाले मानसिंह की घरवाली को मिष्ठान्न देकर, लछमा आनसिंह के घर पहुँची। आनसिंह मानसिह का छोटा भाई था, न्यारा रहता था। उसका बेटा अमरसिंह धौलछीना में ही पोस्टमैनी करता था।

लछमा ने आनसिंह की घरवाली को, हाथ से संकेत करके अपने पास बुलाया, और फिर उसके फचीने (आँचल) में गुड़-मिसरी डालकर आगे बढ़ने लगी, तो आनसिंह की घरवाली ने पूछा—"हँहो, रमुवा की इजा ! आज यह मिष्ठान्न कैसा बँट रहा है ? तुम्हारा बालक होने मे तो, मेरे अंताज से, अभी एक-दो महीना बाकी ही होगा ?"

"द, चिट्ठीरसैन की इजा ! इस उमर में भी तुम्हारी मजाक करने की आदत नहीं गई। वैसे कहती भी सही हो, मेरे बालक तो पूरे महीने लेकर ही जनमते है, ज्यू[1] तुम्हारी तरह सातवें से पहले ही नहीं झाड़ते ! खैर, चिट्ठीरसैन की इजा, यह तो आपसी-मजाक की बात हुई !·· यह मिष्ठान्न मैं मेहनरसिंह सौरज्यू के बेटे डुँगरसीग की तरफ से बाँट रही

१. रिश्ते में सास लगने वाली प्रत्येक औरत को ज्यू, और ससुर लगने वाले प्रत्येक पुरुष को सौरज्यू कहा जाता है। वैसे नाम के आगे लगने पर यह ज्यू आदर-सूचक 'जी' का भी काम देता है, जैसे—जयदत्त ज्यू, या जमनसींग ज्यू।

हूँ।"—कहते हुए लछमा वड़ी भावपूर्ण मुद्रा में अमरसिंह की माँ के साथ खड़ी हो गई—"डूंगरसिंह बेचारों की कल रात क्या दुरगत-बुरगत[1] हुई है, तुमने भी कल देख ही लिया होगा ? ज्यू, हाय-हाय ! बेचारों ने अपनी डंकिणी भौजियों की अत्याचारी से कुपित होकर, अपनी आत्महत्या ही करली थी। जगह-जगह बरमान में चोट बैठ गई है। अभी तक अपने सही होश-हवास में नहीं हैं—यह मिष्ठान्न तो, खैर, वो पलटन से घर पहुँचने के दिन ही ले आए थे, कि पलटन की घमासान लडाई के मैदान से सही-सलामत घर पहुँच गए है, तो इसी खुशी में गौं वालों का मुख मीठा करा देंगे।···मगर, घर पहुँचते ही, उनकी भौजियों ने जो प्रपच-जाल बिछाया, तो आज जरा अपनी सुध-बुध मे लौटे है।—इसलिए, चिट्ठी-रसैन की इजा, यह निष्ठान्न तो एक प्रकार से यह डबल-जिन्दगी बच जाने की खुशी में है ! ये लो, तुम दो कुंजे मिसरी के और लो।" कह-कर, दो कुंजे मिसरी के आनसिंह की घरवाली के हाथ पर रखकर, लछमा आगे बढ गई।

पड़ोस के सभी घरों में गुड़-मिसरी बाँटने के बाद, लौटते समय लछमा फिर आनसिंह के पटांगण में रुक गई। आनसिंह की घरवाली भैस को पानी पिला रही थी—'हे पाणि, हे पाणि' करते हुए, लछमा को देखकर, बड़ी आत्मीयता के साथ पूछा—"हँवे, रमुवा की इजा ! मिष्ठान्न बाँटने का काम सम्पूरण कर लिया ?"

"आपके आशीरबाद से, जितना भी पहुँचता था, सभी का मुख मीठा करके आ गई हूँ, ज्यू !"—कहकर, थाली और आवाज को जरा ऊँचा करते हुए, लछमा ने, सभी को सुनाने को गरज से, आनसिंह की घरवाली की ओर मुँह किया—"अपनी तरफ से मैं सभी को दे आई हूँ, मगर फिर भी कोई रह गया हो, तो मुझसे माँग के ले जाए। अरे, मैं तो जरा दूसरे किसम का हिया रखती हूँ। पडोस के लोग तो, खैर, तुम अपने ही ठहरे।

---

१. दुर्गति-बुरी गति।

मैंने चेले सबलुवा के हाथ डुँगरसींग के प्राण-घाती दुश्मनों के लिए तक मिठाई भेज दी है।···अरे, ऐसे राजकुँवर-जैसे देवर के साथ जो घोर अन्याय उन दोनों निर्दयी औरतों ने किया है, जलती हुई लकड़ी हुई कहाँ जाएगी ? जल-जलकर, आगे ही तो आएगी ?"

"यही तो मैं भी कह रही हूँ, लछिम दिदी, कि आज जरा हमारे घर में फूट पड़ी है, और छाती पर पत्थर जैसे पड़े हैं···कल के दिन, कभी-न-कभी तुम्हारे घर भी यही नौबत नही आई, तो भिमुली ने मुँह से नहीं भेल से कहा था, कह देना !"—पानी के नौल को जाती भिमुली ने दूर से ही कहा।

"दबे, मेरे घर का दुख तेरी आँखों मे निमुवे का चूक[1] जैसा पड़ रहा है !···मैं कहती हूँ, परमेश्वर करे, तुम्हारे घर में रोज पाथर-ही-पाथर पड़ते रह जाएँ !"—लछमा, पटाँगण की दीवार पर चढकर बोली—"और तुम्हारी गदुवा[2]-जैसी छातियाँ तो वैसे ही बजर-पाथरों की बनी हैं, टकरा-टकराकर, बेचारे डूँगरसींग का अरमान फूट गया।"

मगर, भिमुली तब तक जा चुकी थी। नौल सबका एक ही था। ऊपर की बाखली वालों का नौल जाने का रास्ता थोकदार के घर के जरा ऊपर से, और नीचे की बाखली वालो का थोकदार के जरा नीचे से जाता था।

भिमुली चली गई, तो फिर लछमा आनसिह की घरवाली की ओर बढ़ी—"देखा, ज्यू ? देखा बमकुली डंकिणी को ? अरे, बाबरे, नौ बालकों की गर्भवती माता मैं, थोकदार ज्यू की जेठी ब्वारी मैं—मुझको जो डँकिणियाँ सरे-आम काटने-खाने को दौड़ रही हैं—अब तुम्हीं सोचो, ज्यू ? वो बेचारे बगैर शादी-शुदा और छोरमुल्या[3] छोकरे, उनकी कहाँ से चलती इनके साथ ? और ये डंकिणियाँ उनका लिहाज ही क्या करती होंगी ?—डूँगरसीग बेचारे अभी पीठ-पीछे है, मगर बड़े लैक और

---

१. नींबू का अचार। २. कद्दू। ३. मातृ-पितृहीन।

शरीफ है। जरा होश में आए, तो सबसे पहले मेरे ही पाँव पकड़ लिए, कि—'लछिम भौजी, फूटे हुए बरमान में गाई का दूद छपछपाकर, तुमने—धरममाता के स्थान पर खड़ी होकर, मुझे पुनरजनम दिया है !' —और हाथ जोड़कर—"

लछमा की आँख सहसा ऊपर को उठी, तो नरुली को पानी भरने जाते देखकर, जरा और जोर से बोली—"ज्यू, वैसे देश-परदेश से लौटने वाले खसम तो औरों के भी बहुत हैं, मगर, कसम है, जो कभी किसी के हाथ से एक चने का दाना भी छूटते देखा हो !—बेचारे डूँगरसींग लौटे हैं, पलटन से, तो ले मिष्ठान्नों की दनर-फनर[1] कर दी है। गो-घरों में कोई ऐसा बाकी नहीं है, जिसका मुख मीठा नहीं हो गया हो। बल्कि, बच गई तो, ज्यू, अभी एक रौंड[2] और जिलेबियों का लगाके जाऊँगी।—"

---

१. बहुतायत। २. अंग्रेजी के Round (राउंड) का अपभ्रंश।

१७

घर में तो गोबिन्दी पाँव में काँटा चुभा रहने की बात कहकर, लछमा की दी मिठाई को अस्वीकार कर, जैता के साथ जाने को निकल पड़ी थी !—मगर, चलते-चलते उसे बड़ी जोर-हँसी आती रही—पाँव में काँटा लग गया था, बन घास काटने में, इतना तो उसने गोबरदा से कह दिया था फुर्ती से, मगर—ओ बबा रे, यह किस मुँह से बताती, कि कैसे लग गया ?

एक बार अपने चारों तरफ देखकर, कि कोई देख तो नहीं रहा है, गोबिन्दी ने बड़ी ललक-भरी आँखों से सामने, सौलखेत की सुँयाल नदी के पार पड़ने वाले उद्‌याँ गाँव की ओर देखा—कभी उद्‌याँ बन का घास काटना पड़ेगा उसे ? अहा, परमेश्वर बौज्यू को मना देता और गोबिन्दी, साल-दो साल बाद ही सही, उद्‌याँ के पदमसिंह की घरवाली, सम्बोधन को पा लेती, तो ! ओह, उद्‌याँ अगर सौरास हो जाता, तो वहाँ से मैत धौलछीना भी तो एकदम आँखों के सामने पड़ता है ?

कल्पना के सुख से आह्लाद-चंचला गोबिन्दी तलटान के खेतों की तरफ रि-रि-रि दौड़ने लगी। फिर, दौड़ते-दौड़ते, काँटे की सुधि आई, तो ऐसा लगा, पदमसिंह पाँवों मे कुतकुती लगा रहा है—

मेरी सुवा गोबिन्दा, वे, छाल खुट ले नै हिट,
खणकनी झाँवरा, वे, छाल खुट ले नै हिट।
तेरि माया जाणीछ, वे, छाल खुट ले नै हिट,
मेर हिया रणीछ, वे, छाल खुट ले नै हिट।[1]

—अहा, कैसा सुरीला बचन[2] पाया है उसने ? मुँह से आवाज क्या निकलती है, काँसे की थाली-जैसी धरती पर गिरती है—मेरि सुवा गोबिन्दी वे—

ओ वबारे, यह अनहोनी किधर को ले जाएगी ?

कल को क्या होगा, क्या नही होगा—कौन जानता है ? कन्या तो कलश-जैसी अपने माता-पिता के हाथों में रहती है, उसके जल से न-जाने वो किसका पाँव धो दे ?

गोविन्दी को भी तो आखिर वहीं जाना पड़ेगा, जिधर से जमनसिह थोकदार की बुलाई हुई बारात आएगी ?—'ना, बौज्यू, मुझे तो उट्याँ के पदमसिह पोस्टमैन की ब्योली (दुलहन) बना दो !' कह सकेगी वह ? अरे, वबारे, ऐसी बिशरम बात मुख से निकालने से पहले ही, वह मिट्टी के अन्दर नही चली जाएगी ?

---

१. मेरी प्रियतमा गोबिन्दी वे, स्फूर्त-पाँवों न चला कर तू ! अरे, तेरे चरणों के झाँवर खनकते है, तेज कदमों से न चला कर तू ! तेरे तेज चलने से, तेरे प्यार का आभास मिल जाता है, वे, तू जल्दी-जल्दी पाँव मत उठाया कर ! अरे रे, मेरा मन विह्वल होने लगता है, वे, तू क्षिप्र गति से न चला कर ! २. कुमाउँनी में 'बचन' कहीं-कहीं कण्ठ-स्वर के अर्थ में भी उपयोग में लाया जाता है।

गो-घरों के लोग-बिरादर क्या कहेंगे, कि—'लो, रे, ये देखो थोक-दारज्यू की चेली के करम ! शकुन्तला से भी ऊँचे दर्जे का स्वयंबर रचा रही है !'—अरे, बबारे, घर में बौज्यू तो हैं ही, खैर, ऊपर से लछमा भौजी है ! वह तो पातर कहने से भी नहीं चूकेगी—गोबिन्दी किस-किसके सामने निर्लज्ज बनेगी ?

ना, रे, ना ! कान पकड़े दोनों। जो चमत्कार, अपने मन से वर ढूँढने के सिलसिले में—कम-से-कम कन्यावस्था में तो—आज तक धौल-छीना की कोई लड़की नही कर पाई, उसे भला गोबिन्दी क्या कर सकेगी ! कुल को कलंक लगाने से पहले कन्या का मर जाना ही ठीक होता है।

तो फिर वह पदमसिंह को 'मेरी सुवा गोबिन्दा वे !' क्यों पुकारने देती है ? कल कहीं दूसरे से ब्याह हो गया, तो पदमसिंह का पाप न रहेगा उसके सिर पर ?

मगर, न-जाने उस समय गोबिन्दी को क्या हो जाता है, जब पदम-सिंह की सूरत देखती है, और उसके मुँह का मीठा वचन सुनती है ! बातों को तो फैलने के लिए हवा-जैसी घर-घर-बन-बन पहुँचने वाली चीज का सहारा रहता है, इसलिए वो ज्यादा छिपती नहीं हैं कभी। और चार लोगों के मुँह-कान से होते-गुजरते, गोबिन्दी तक भी यह बात पहुँच गई थी, कि कलौन, काँचुला, नैल, पल्यूँ, पत्थरखाणी और सुपै—जितने भी आस-पास के गाँव है, उन सभी के बन-ग्वाल जाने वाले जवान छोकरे रोज इसी शोध में रहते है, कि आज गोबिन्दी कौन-से बन जाने वाली है, घास काटने को ?

और जिस बन का अनुमान उन्हे मिल गया, उसी में उस दिन वृन्दावन-जैसा रचा देते थे। जौल-मुरली तो, खैर, हाथ में रखने की चीज होती है, हुड़का[1] तक वहाँ पहुँच जाता था। और, ग्वाले धौलछीना

---

१. कुमाऊँ का सर्वाधिक लोक-प्रिय बाद्य, जिसके दोनों ओर खाल के पुड़े होते है।

की ओर के ऊँचे टीलों पर चढकर, एक हाथ कान के पीछे, और एक होंठों के पास आड़ा लगाकर एक-से-एक रसीले और शृङ्गारिक-जोड़ मारना शुरू कर देते थे, कि—'काकड़ी को केर-बाट में बैठक लियो, ओ-ओ-धौलछिना लै जानू धुर—धुरा वे, तू, आली कबेर—धौलछिन लै जानू धुर-धुर वे, तू, आली कबेर—धौलछिन लै जानू धुर।'[1]

मगर, गोबिन्दी थी, कि साथ वालियो से बात करती-करती अकस्मात ही बिछुडकर, सौलखेत की रौली[2] से फरफराई छाँछ-जैसी सुर्र-सुर्र-सुर्र करती बहती-सुँयाल नदी के सिरहाने की ओर जा पहुँचती थी, जहाँ धौलछीना से चिट्ठियों का थैला लेकर लौटता हुआ, पदमसिंह कभी-कभी, मिल जाया करता था उसे।

और गोबिन्दी अक्सर सोचा करती थी, कि क्या इस पदमुवा के गोठ में गाय-बकरियाँ नहीं होंगी, जो यह, गाय-बकरियाँ चराने को बन जाना छोड़कर, पोस्टमैनी करता फिरता है?

और, वह पदमसिंह के ग्वाल-भेष की कल्पना करने लगती थी, कि हाथ में जौंल मुरली लिए, धौलछीना की ओर पड़ने वाले सबसे ऊँचे टीले पर चढ़कर वह गोबिन्दी के लिए जोड़ मार रहा है, कि—

ऊँलो, ऊँलो कूने त्वीले लगै दिन मान !
आँख पटै गया म्यारा त्वीकें चान-चान,
त्वीहूँ हैरै खेलाखेली, मेरि जाँछ ज्यान !
काहुणी हराणी तू, वे, हृदया-परान ?—[3]

---

१. तू आएगी, इसी आशा में, हम सड़क पर बैठे हुए हैं—'चलो भाई, धौलछीना के वनांचल को जाएँगे', यह टेक-पंक्ति या मुखड़ा है। २. मथानी। ३. ओह 'आऊँगी, आऊँगी', कहते हुए, तूने दिन बिता दिया, मगर आई नहीं। तुझे हेरते-हेरते, मेरी आँखें थक गई हैं। सम्भवतः, तेरे लिए यह एक खेल हो रहा है? मगर, मेरे प्राणों पर बीती हुई है। ओ, मेरी हृदयेश्वरी, ओ, मेरी प्राण-वल्लभा, तू कहाँ खो गई है?

—कल, 'गोबी' कहते हुए, पदमसिंह ने उसका हाथ पकड़ने की कोशिश की, और वह शरम के मारे अकुलाकर, जोर-जोर से दौड़ती हुई भाग गई थी—और उसी समय पाँव में वह, गोबरदा को बताया हुआ, काँटा भी पाँव-तले चुभ गया था।

ख़ैर, उस काँटे को तो गोबिन्दी ने अपने कनगड़[1] में लगी सुई से खोद-खोदकर, निकाल लिया था—मगर उसके कोमल-कुमार मन में लाज-भीति और व्यथा का एक तिमुखिया-काँटा बड़ी गहराई तक चुभ गया था—अरे, बवारे! कहीं यह लाज-शरम से डूब मरने-जैसी बात घर बौज्यू-दाज्यू और लछमा भौजी तक पहुँच गई तो?—हे भगवान, कहीं बौज्यू ने किसी-दूसरी जगह ब्याह कर दिया तो?—ओह, गोबिन्दी, तू पदमसिंह से विलग हो गई तो?—

तिमुखिया-प्रश्न से बिंधी गोबिन्दी और जल्दी-जल्दी चलने लगी।

० ० ०

पहाड़ी प्रदेशों में—विशेषकर हिमालय के पार्श्ववर्ती पहाड़ी-प्रदेशो मे, ऊँची-ऊँची पर्वत-श्रेणियाँ होती हैं। और, जैसे ललाट के नीचे शाश्वत-नीरांजना आँखें होती है, ठीक ऐसे ही, पर्वत-श्रेणियों की तल-हटियों में इकतारे-जैसी बजनेवाली नदियाँ बहती है।

नदियाँ मैदानी प्रदेशों में भी बहती है, पर उनके होठों पर मायके में सीखे-गाए गीत-संगीत की मोहन-मादन-मधुर कल-कल-कल-छल-छल-छल-हुँ-हुँ-हुँ-कुन-कुन-कुन नहीं होती।—अल्हड़ किशोरियों-सी फर्र-फर्र नाचने वाली, होंठों के दायरे में ही प्रतिध्वनित होकर रह जाने वाली

१. कनगड़ एक गुच्छा-जैसा होता है, इसमें सामयिक-उपयोग के लिए काँटा निकालने की सुई, कान का मैल निकालने की एक तीली और एक छोटी-सी चिमटी रहती है। बहुत-सी औरतें इसमें एक छोटी-सी विणँ (दन्त-वीणा) भी लगा के रखती हैं, जिसे अवकाश के समय बजाती हैं।

देते थे। मगर नजदीक के जंगलों में लकड़-चिरान लगने पर, अनुमति दे देते थे।

जसौंतसिंह ने थोकदार की ओर देखा था, तो थोकदार ने कह दिया था—"जा फिर, बातचीत करके आ। कौन-सी दो-चार मैल है, गजुवा की दुकान? भात खाने के टैम तक तो लौटकर आ ही जाएगा। और, देख, इधर सौलखेत-धौलछीना या पानेहड़ के आस-पास का ही काम होगा, तो हाथ मे लेना—नहीं तो अपने-आप रहा। घर को आ जाना।"

इतना कहकर, थोकदार फिर दीवार चिनने में लग गए थे, और जसौंतसिह सौंलखेत की ओर उतरने लगा था। जहाँ धान-खेतों की सार थी, वहाँ धौलछीना की छोटी-सी, सौंलखेत की शाखा-नदी, तलि-गाड बहती थी।

तलिगाड़ के दोनों पार्श्वों में धान के खेतों की सार थी, जो नीचे गह्री तलहटी में बहती सुँयाल तक पहुँचती हुई थी। सुँयाल के किनारे सिंचाई की सुविधा होते हुए भी, एकदम सँकरी घाटी होने के कारण, खेतों का सिलसिला टूट जाता था। धौलछीना-वासियों के लिए तो सुँयाल बेटी-जैसी थी, जो अपने घर का धन दूसरे घर को ले जाती है, और अपने मायके में पले हाथों से ससुराल को सँवारती है—बहू तो वह पल्यूँ से नीचे को पडने वाले अवैं-छानी-तिलाडी गाँवों के लिए थी, जहाँ उसके हाथों के मांगलिक जल-कलश की बूँद-बूँद चौड़ी-चौडी छातियों वाले खेतों के काम जाती थी।

और, तलिगाड दुबली-पतली जैसी भी थी, धौलछीना-वासियों के चूल्हे में भात की तौली उसी के आशीर्वाद से चढती थी, क्योंकि बिना सिंचाई के धान होता कहाँ है?— कहीं सिमार के खेतों में थोड़ा-सा हो गया, तो हो गया।

मगर, जसौतसिंह उस समय न जाने कैसी उतावली में था, दीवार चिनने में लगी हाथ-पाँवों की मिट्टी वह धो नहीं पाया था। नही तो,

जहाँ असाढ़ लग गया था, वर्षा हो गई थी, तो तलिगाड़ के पानी में भी बढ़ोतरी हो ही गई थी।

खैर, जसौतसिंह उतरते-उतरते सुँयाल-किनारे पहुँच गया, तो सुधि आई। हाथ-पाँव धोए, मुँह धोया और अँजलि में लिया जल छपाक से ताल में छोड़ दिया तो—कुर्तुरुक्क—अरे, खेल करने को तो मन होगा ही? परार-निरार के साल तक [1] तो जसौतिया, धौलछीना पड़ाव के पास बहने वाली धार[2] में बॉज-फल्यांट के पातो का पनेला लगा-गलाकर, आलू के फितौड़े[3] का घट चला-चलाकर, पानी भरने-पीने वालों की डांट-डपट सुनता रहा है।

अपने-आप ही जसौंतिया को एक छोटी-सी हँसी आ गई—कभी-कभी जैता-भौजी भी आती थी, घास काटने से या लकड़ी लाने से लौटते हुए, ठण्डा पानी पीने के लिए और जसौंतिया—(अरे, बबा रे, बड़ा चंठ था तब तू)—न-जाने किससे सीख लाया था, एक साँस में कह देता था—"भौजी वे, दूद के दो नाले तो तेरे पास ही हैं, तू ठण्डा पानी क्यों पीती है?…" और जैता भौजी तो 'चल, चट कही के!'—कहती हुई शरमाकर, भागती ही थी, उससे भी पहले, जसौंतिया लजाकर, खिसक जाता था…तब इतना ध्यान कहाँ था, जसौंतिया को, कि बिना जतकाली (प्रसविनी) हुए दूध नहीं फूटता किसी औरत के स्तनों में!

---

१. दो-तीन साल पहले तक। २. जहाँ नल से निकलने वाले पानी की तरह कोई सोता फूटता है, उसे और नल को भी 'धार' कहते हैं। ३. पहाड़ी नदियों के किनारे पनचक्कियाँ चलती हैं, जिन्हें 'घट' कहते हैं। कई मंजिला होता है यह। नीचे काठ की पंखोटियों वाला फितड़ा लगा रहता है, जिसकी एक कठ-पंखुटी पर पनेले (जो किसी वृक्ष-तने में गहरी-सँकरी खुदाई वाला होता है) की तेज धार का पानी गिरते ही, वह तेजी से घूमता है और, उसी के साथ-साथ, ऊपर लगाए हुए पत्थर-पाट भी घूमने लगते हैं।

और होलियाँ आती थीं, तो भौजियाँ अपने छोटे-छोटे देवरों से ठट्टा करते-करते, 'चुच पिछा हो ?'[1] कह देती थीं, मगर जसौंतिया से न लछमा भौजी कहती थी, जबकि उसने एक बार जसौतिया को मरणासन्न होने पर अपनी छाती का दूध, चम्मच में दुह-दुहकर पिला भी रखा था— और न जैंता भौजी कहती थी, जिसके स्तनों में दूध उतरा ही नहीं था।

जसौंतसिंह एक पहले से भी छोटी हँसी हँस पड़ा—'अरे, तब बचपना था तेरा, अब ढांट (तरुण) हो गया है, तो ऐसी अक्का-बक्का बातें सोचते हुए, शरम नही लगती ?···' जसौंतसिंह गजाधर की दुकान को चल पड़ा।

० ० ०

गोविन्दी जैंता के पीठ-पीछे पहुँचकर, उसकी आँखें भींचकर, 'पहचान कौन है, नानि भौजि ?' कहने ही वाली थी, कि जैंता ने 'अहाँ-अहाँ, गोबी छूंत !' कहकर, उसे चौंका दिया।

"अरे, मै तो भूल ही गई थी, कि आज सबेरे-सबेरे मेरी नानि भौजी व्या गई है···" मगर, तभी उसे ध्यान आया—अरे, विधवा भौजी से ऐसा मजाक क्यों कर बैठी वह ? आगे की तरफ आकर, जैंता का मुख देखने लगी, तो उसने अपनी आँसू-भरीं आँखों पर सिर का चाल डाल लिया, और हँसने का कृतिम-प्रयास करती हुई, बोली—"आज वन नहीं गई, गोबी ? अरे, गोवी, तुम सोचती होगी, कि मुझे खड़ी देखकर, नानि भौजी आँखें बन्द कर रही है—जबकि पुरुष-जात का वन का सुवा[2] भी मुझे देखकर, बड़ी-बड़ी आँखे खोलता है ! मगर क्या करूँ, ननदी, गोड़ने में कुटली से उड़-उड़कर मिट्टी आँखो में पड़ रही है।"

गोबिन्दी और भी उदास हो गई, 'अरे, कैसी प्यारी नानि भौजी का

---

१. दूध पियोगे, हो ? २. तोता। शुक प्रणय का प्रतीक माना जाता है, इसलिए प्रेमी को भी सुवा कहते हैं, और प्रेमिका को भी।

दिल दुखा देती हूँ मैं भी···'

जैंता ने, आँचल-अन्दर से ही भाँकते हुए पूछा—"क्यों हो, गोबी, किसकी याद आ रही है ?"

"मुझे तो किसी की याद नहीं आ रही है, नानि भौजी ! मगर, तुमको ऐसी याद किसकी आ रही है, जो खेत की गीली मिट्टी भी तुम्हारे लिए हवा में उड़ने लगी है ? और, तुम्हें बार-बार सिर का चाल आँखों पर डालना पड़ रहा है ?···" गोबिन्दी ने व्यथापूर्ण स्वर में पूछा।

"द, ननदी ! मेरे अभागी मन के याद करने को अब रह ही कौन गया है ?···" कहकर, एक अवसाद-भरी उसाँस खींचकर, जैंता सिर नीचा करके, गोड़ने मे लग गई।

गोबिन्दी ने अपना कुटल ठीक से पकड़ा और, जैंता की सीध में दाएँ हाथ की ओर बैठकर, मडुवा गोड़ते हुए, कहने लगी—'नानि भौजी, तुम्हारे लिए तो 'बैद्य मर गया है, बीमारी बच गई है !' वाली कथा हो गई है !"

जैंता अबोले गोडती रही। करमसिंह के साथ व्यतीत दिनों की संसर्गात्मक-संस्मृतियों की संवेद्यता से आर्द्र, उसके अनाधार मन का अवसाद आँखों तक आ-आकर दृष्टि को धूमिल कर रहा था। मगर, गोबिन्दी से अपनी अश्रुमुखी-व्यथा छुपाने के लिए आँखों के अन्दर ठौर कहाँ थी, जो वह आँचल उठाकर गोबिन्दी से बातें कर पाती ?···

गोबिन्दी कहती रही—"नानि भौजी, वे ! तुम-जैसी को भी विधाता दुख क्यों देता होगा ? मैं नादान इन्सान हूँ, भौजी, मगर मेरे हिया के, तुम्हारे दुख को देख-देखकर, ककडी के जैसे चीरे होने लगते हैं, काँस से जैसा कटने लगता है कलेजा—फिर वह तो उतना बड़ा भगवान है, भौजी ! उसका पाथर-हिया कैसे इतना निठुर हो गया है ?"

"ना, रे, लली ! भला, भगवान बेचारे की इसमें क्या खता है ? पूरब-जनम के मेरे ही करमों में खोट रही होगी, गोबी, उन्हीं का

पराशित[1] हो रहा है··· परमेश्वर क्या करेंगे ? अपने पूरब-जनम के पापों को तो धोना ही पड़ेगा, कभी खून से, कभी आँसुओं से। विधाता से एक ही शिकैत[2] है मेरी, ननदी !··· और वह शिकैत यही है, कि उनके लिए तो उसने अपने यहाँ के राज-दरबार के फाटक-जैसे खोल दिए, मुझ पापिणी के लिए क्या उसके यहाँ गोरू-बछिया-गोठ[3] में भी ठौर नहीं थी ?"

"यह कलजुग है, भौजी ! इस कलजुग में परमेश्वर के यहाँ भी उलटा इन्साफ होता है !··· पापी मूँछ मलासता है[4], पुण्यातमा दण्ड भोगता है। तूने भी पूरब जनम में पुण्य-ही-पुण्य किए होंगे, नानि भौजी, इसलिए तेरे साथ भी 'चोर कें बखशीश, सौकार कें सजा'[5] वाला इन्साफ कर दिया है, परमेश्वर ने। तुमसे तो, भौजी, किसी पापी की अत्याचारी का जरा-सा मुकाबला तक नहीं होता है, पाप करने की ताकत कहाँ से लाओगी ?" गोबिन्दी किंचित रोषपूर्वक बोली—"ठुलि भौजी तुमको इतना सताती है, मगर तुमसे जरा भी किसी किसम की हौशियारी नहीं हो सकती ? 'ले मेरी चानि, मार त्यार ज्वात'[6] कहने में तुम-जैसा उस्ताद मैंने कोई नहीं देखा, नानि भौजी !···"

जेंता बरबस ही मुसकरा उठी—"एक ठुलि दिदी थोड़ा डाँटती-फटकारती है, तो क्या हो गया, गोबी ? मान लिया कि ठुलि दिदी मुझे बुरा ही मानती है—मगर, उसके बालक कैसी 'काकी-काकी' करते हैं ? तुम मेरे लिए 'नानि भौजी-नानि भौजी' करती फिरती हो, गोबी !··· और सौरज्यू के लिए तो, खैर, मै उनकी ही जगह हूँ··· इसके अलावा बेचारे जसौंतसींग ··अँ-अँ···वह भी बेचारे अच्छा ही मानते हैं मुझे, कि बेचारी बिना ठाँगर-की-लगिल-जैसी[7] पड़ी हुई है।···एक मन तो कभी-

१. प्रायश्चित। २. शिकायत। ३. गाय-भैंसों के रहने की जगह। ४. मूछों पर ताव देता है। ५. 'चोर को इनाम, साहूकार को सजा'—एक मुहावरा। ६. 'ले मेरा सिर, मार तेरी जूतियाँ !' एक मुहावरा। ७. बिना आधार-खम्भ की लता-जैसी।

कभी करता है, कि मैत चली जाऊँ ! जहाँ गोठ-बल्द[1] नहीं रहा, वहाँ गल्वों[2] का क्या काम ? मगर, तुम सब लोगों का मुख देखती हूँ, तो जैसे धरती पकड़ लेती है…"

"अच्छा, तो नानि भौजी, तुम मैत जाने की भी सोचती हो ? सोचती होओगी, कि इन परायों के बीच रहके क्या करूँ ?—मैत में माँ-बाप है, भाई-भौजियाँ है—हमारा मोह क्यों होने लगा तुम्हें ?"

"दुत्, चंठ ! खार खा गई हो ? अरे, गोबी, ऐसा ही समझती, तो अब तक चली न जाती, रे ? पिछले बरस भिटौली[3] देने आए थे, मेरे ठुल दाज्यू, तो तुम्हारे सामने ही कितनी जिद्द कर रहे थे, कि 'चल बैणा, हिट बैणा !'—मगर, मैं नहीं गई । मन तो हुआ था, कि चार दिन तो हो ही आऊँ मैत । मगर, विचारे जसौंतसिंह की तबियत खराब थी, तो जाने को मन नहीं हुआ, और… ."

"मेरे जसौती दाज्यू को तुम अच्छा मानती हो, नानि भौजी ?"

"ओ, बबारे, बड़ी चंठ हो, गोबी ! जरा-सी बात हाथ पड़ी नहीं कि, बस, बचन मारने लगती हो !—ननदी, एक घर में रहते है, तो मोह होना ही है न ? सोचती हूँ, उनके छोटे भाई हैं, तो अपने-आप ही मन मोहित हो जाता है—मैं सोच रही हूँ, गोबी, एक-दो साल के अंदर-ही-अंदर तुम्हारी झगुली[4] उतर जाए, और जसौनसिंह के माथे भी मुकुट

---

१. बैल । २. बैल बाँधने की रस्सी, जो खूँटी और गले में बाँधने के लिए विशेष ढंग से बनी होती है । ३. चैत के महीने में भाई या पिता—या कभी-कभी माँ-बहन ही—अपनी विवाहिता बहन या बेटी को भेंटने जाए ही, ऐसी यहाँ प्रथा है । भिटौली में बहुधा ऐसा भी होता है, कि टोकरी-भर पूरियाँ पकाकर ले जाई जाती हैं, और जिस गाँव में बहन-बेटी ब्याही गई हो, उस गाँव के प्रत्येक घर में पूरियाँ बाँटी जाती हैं, जिसे 'भिटौली की पूरी' कहते है । ४. झगुला (एक फ्राकनुमा वस्त्र) उसी समय तक कन्या पहनती है, जब तक उसका विवाह नहीं हो जाता ।

बँध जाए तो फिर मैं भी अपनी सड़क पकड़ूँ। या तो मैत चली जाऊँगी, या जोग्याणी[1] माता बनकर कहीं हरद्वार-बदरीनाथ की तरफ मुँह काला करूँगी !"

"चल, चोट्टी ! बड़ी आई अपनी सड़क पकड़के मुँह काला करने वाली !—कोई तेरा अपना हो, उसे सड़क दिखाना, तू सड़क नापना, अपनों का मुँह काला करना और अपना करना—मगर, मेरि नानि भौजी, मेरी जैंता भौजी से कुछ भी कहा, उसके मुँह मे जरा-सा भी मैला हाथ लगाया, तो इसी कुटली से कुटकुटा दूँगी !"

"तुम्हारी नानि भौजी-जैंता भौजी तो मै ही हूँ, गोबी !"

"तू तो है, मेरी भौजी, जो 'तुम्हारी नानि भौजी-जैंता भौजी हूँ, गोबी !' कहती है—मगर, जो अन्दर मे अपना स्याल का जैसा मुख निकाल-निकालकर, 'मैं चली जाऊँगी, जोग्याणी-माता हो जाऊँगी !' की कुभाखा बोल रही है, वह काहे की मेरी भौजी, और मैं कैसी उसकी गोबी ? है न, नानि भौजी ?"

"अरे, बबारे, गोबी ! तुमने तो मेरे गले में अंगाल[2] डालदी !—छूंत कर दी—अब यहाँ गौत[3] कहाँ से डालोगी ? ठुलि दीदी जानेगी, तो कहेगी, 'दोनों ननद-भौजियाँ कुतकती होगी खेतों में, काम कहाँ से करेंगी ?'—है न, गोबी ?"

"अरे, हट्ट ! तुम्हारी ठुलि दीदी को उठा ले जाएँ गणानाथ के मन्दिर के जटाधारी जोगी और वहाँ उससे भरवाएँ अपनी अत्तर[4] की चिलम !······उससे तो तुम डरती हो, मैं क्यों डरूँ ?—अच्छा, नानि भौजी, एक बात बता, फिर तेरे गले से अँगाल छोड़ दूँगी।"

"पूछो, गोबी !"

---

१. जोगन। २. आलिंगन-आकुल-भुज-बन्धन। ३. गो-मूत्र। रजस्वला या प्रसविनी औरत से शरीर छू जाने पर, शुद्धि के लिए, गो-मूत्र छिड़का या पिया जाता है। ४. चरस।

"तुम बताओ तो जरा, नानि भौजी, छुँती कैसे होते हैं ?"

"इस सवाल का जवाब तुम्हें ब्या होने पर मिलेगा—[1] जब घाघरे में पहली पाल के बेल-बूटे-जैसे निकलेंगे।"

"चल्ल, चंठ !—अच्छा, रे नानि भौजी, तुम यह भी जानती हो, कि बालक कैसे पैदा होता है ?—हि-हि-हि-हूँ......"

"गोबी, इस सवाल का जबाब तुम्हें ब्या के एक साल बाद मिलेगा, जब पीड़ से—अरे बबारे, मेरा गला घोट दोगी क्या, गोबी ? बातो में मात खा गई हो, तो अब हाथों से लड़ने लगी हो ?"

"अच्छा-अच्छा तो, भौजी, तुम खाली गल्यों-जैसी पडी हो, तो किसी-न-किसी का गला तुमने फाँसना ही है ?—मेरे जसौती दाज्यू के गले में पड़ जाओ, तो कैसा रहेगा ?—मेरे जसौती दाज्यू से तुमको बालक हो जाए, तो......"

० ० ०

"क्यों वे, नानि भौजी, अब क्यों मारा मेरे मुँह पर थप्पड़ ?—बात से हार गई, तो हाथ से काम लेती हो ?—मगर, मैं तो सच कह रही हूँ, अपने मन की बात कह रही हूँ, रे ! पहाड़ में तो कई भौजियाँ देवरों के घरबार चली जाती हैं। जब बड़ा भाई नहीं रहता, तो छोटा भाई हकदार होता है—और, सुनो, भौजी ! तुम और मैं तो यहाँ पर दोनों औरतें ही हैं !—जवान औरत रह सकती है मरद के बिना ? एक-न-एक दिन तो पाँव ने फिसलना ही है ? जोग्याणी-काता बनकर ही कौन-सी पतिव्रता रहती हैं औरतें ? सच्ची पूछो तो, यह जवानी की भूख को मिटाने का सबसे आसान तरीका है। घरबार जाने से बदनामी होती

---

१. कुमाऊँ में अधिकांश कन्याएँ वास्तव में कन्या के रूप में ही ब्याही जाती हैं—रजस्वला होने से पहले ही। रजस्वला लड़की व्यभिचारिता मानी जाती है और रजोधर्म-संपृक्त कन्या के दान से पिता नरकगामी होता है।

है। जोग्याणी बनकर, चारधाम करने को सड़क मिल जाती है, और हर पड़ाव, हर तीरथ, हर मन्दिर में जोगियों की जमात भी ऐसी ही जोग्याणी माताओं की इन्तजारी में बैठी रहती है। सच कहती हूँ, नानि भौजी, जोग्याणी बनने से तो पातर[1] बनना अच्छा है—बज्योली की चन्द्रिका माता का किस्सा तो तुमने भी सुन ही रखा है ? इसी हमारी धौलछीना के सदानन्दी माई धरमशाला में हमल गिरा गई थी, बागेश्वर की तीर्थयात्रा को जाते समय। नानि भौजी, दश ठौर चोरों की तरह मुँह डालने से एक जगह खुले दिल से मलाई चाटना अच्छा रहता है—फिर कर्मी दाज्यू होते, तो जसौती दाज्यू तुम्हारे लिए भाई की जगह पर रहते ही, रहे ही—मगर जहाँ कर्मी दाज्यू चले गए है तो, तुम यह क्यों नहीं सोच लेतीं, कि जसौती दाज्यू को अपनी जगह पर छोड़ गए है ?"

"ननदी, तुम्हारा मुख किस हाथ से बन्द करूँ मैं ? एक हाथ से थप्पड़ मार बैठी हूँ। तो ऐसा कलेजा कलप रहा है, कि जैसे गो-हत्या कर बैठी हूँ कुँवारी ननद को विधवा भौजी का थप्पड़ मारना—हे परमेश्वर, मेरे इस हाथ को स्याल लग जाएँ !...."—जैता का कंठ भर आया।

"रोती हो, नानि भौजी ? अरे, तुम थप्पड़ से क्या लातों से भी मारो, तो मैं बुरा नहीं मानने वाली हूँ ! भला, अब जरा हँस दो नो, भौजी ! आज सवेरे से ही हम लोगों ने बादल-जैसे बुला रखे हैं—हँसो ना—नहीं हँसोगी, जसौती दाज्यू से बालक......"

"अरे, हट्ट ! चंठ गोबी !—तुमको ले जाएगा, अलमोड़ा का धोबी—हँ-हँ-हुँ-हुँ......"

"अरे, फिर जरा ठहर ना, धोबी की चेली वे ! जालों का डाला लेकर, कहाँ को भाग रही है ? जसौती दाज्यू भी नीचे को ही गए है, भिड़ चिणाने—अरे, ओ जैता, बिठाऊँ तेरी पंचैता—पंचैत के सरपंच पूछें—'क्यों, री गोबी, क्या है ?'—और मैं ताली बजा-बजा कर कहूँ,

---

१. वेश्या।

'जैता भौजी और जसौती दाज्यू का क्या है !"

० ० ०

"अरे रे, दौडी—अरे डरुवा-फरुवा भाग गई—उसकी किस्मत जाग गई !—अरे, ओ नानि भौजी, जितनी जल्दी जाएगी, बालक गोदी पाएगी !—ठैर ना, वे······"—गोबिन्दी किलकी।

"ननदी, तब तक तुम गोडो, वे ! गाड़ आके क्या करोगी ? मैं जाले धोके लाती हूँ, फिर घास काटेंगे दोनों मिलके, और फिर घर जाने का ही टैम हो जाता है। सुन रही हो, वे, गोबी ? मैं तुम्हारे लिए छूँती होने, बालक बनाने की जड़ी-बूटी भी ढूंढ के लाती हूँ, वे !—हुँ-हुँ···अरे, मेरी ननदी कितनी प्यारी है······"

१८

तमाखू का अमल जोर का लग गया था, और थोकदार आज चिलम लेके नहीं आए थे। जसौतसिह सौलखेत गजाधर की दुकान की ओर चला गया, तो थोकदार के हाथ जल्दी ही थक गए, और घर की ओर चल पड़े। जैंता जालों का डाला लेकर, नीचे गाड़ की ओर आ रही थी। थोकदार, जाते-जाते, उसको एक आवाज मार गए—"नानि ब्वारी वे, ऊ!......"

जैंता ने 'ऊ' कहकर, थोकदार की ओर मुख किया, तो थोकदार बोले—"मैं तो घर को जाता हूँ अब। बिना खून के हाथ-पाँवो से कही मिहनत हो सकती है, ब्वारी?—अच्छा जाता हूँ, तमाखू का अमल भी लग गया है। जसौतिया नीचे सौलखेत गजाधर की दुकान में गया है, ठेकेदार अमरनाथ लाला से बातचीत करने। जब लौटे, तो उससे कहना, कि सिर्फ एक फुट दीवार बाकी रह गई है। टैम हो, तो पूरी कर देवे। तू गाड़ ही होगी, तो जरा ढुंग-पाथर थमा देना उसे।

जैता के सीने में एक पवन-जैसी सनसना गई—गोबिन्दी ननदी कितनी बेशरम, कितनी चंठ है !—और सौरज्यू कहते है, कि ब्वारी, जरा जमौंतिया को ढुँग-पाथर थमा देना—और कहीं ऊपर से गोबिन्दी ननदी ने देख लिया, तो ?—अरे, उस चंठ के चलुवा-थोल[1] तो तेज हवा में उड़ते बाँज-फल्याँट के सूखे पत्तों-जैसे फरफराने लगेंगे—"क्या है ?—जैंता भौजी, और जसौंती दाज्यू का······"

'ओ, बबारे !' कहती, जीभ को थोड़ा-सा दाँतों से दबाकर, जैता गाड़ की ओर चल पड़ीं।

o o o

थोकदार घर पहुँचे तो, बाहर से धाध (पुकार) लगाई—"गोबिन्दी चेली, एक चिलम जरा तमाखू की भरके दे जा तो !"—और थोकदार पटाँगण की दीवार पर बैठ गए।

अन्दर चाख में बैठी लछमा, धेवती को भात खिला रही थी। वही से बड़े चिन्तन-प्रधान स्वर में चुलमुलाई—"द, गोबिन्दी ननदी के पाँव आजकल घर में कहाँ टिक रहे हैं ?—अरे, ओ रमुवा, सबलुवा ! अरे, दोनों भैंसों को नहलाने चले गए होंगे। सबलुवा का तो, बस, घर के कामों में ही सुर है। कहता था, 'भैंसों को नहला के, तेल लगाके चम-चमान बनाके बूबू को दिखाता हूँ।'—अरे, ओ गुलबिया रे ! अपने बूबू की चिलम तैयार कर ला, चेला !—अरे, ओ रमुवा के बौज्यू हो ? चहा गरम कर दो जरा, सौरज्यू खेतों से आ गए हैं। अरे, मैं तो कितना कहती हूँ, कि सौरज्यू इस बुढापे में अब काम-धाम तो कुछ होता नहीं है तुमसे, खाली अपने कमजोर हाथ-पाँवों की मैया मारनी ठहरी !—मगर, सौरज्यू को कल कहाँ पडती है !"

"ठीक कहती है, ठुलि ब्वारी, तू लाख की बात कहती है।"—थोक-दार, बैठे-बैठे ही बोले—"काम करने की ताकत रह गई तुम जवानों

---

१. चंचल अधर।

की टाँगों में। मगर, ब्वारी, बहुत-कुछ काम आँखों से भी होता है, यह देखना, कि किधर कौन-सा काम रह गया है, किधर कौन-सा काम करना है—यह नजर सबसे जरूरी है। मगर, गुबरिया तलिसार के खेतों के सात चक्कर काट आया होगा, और, दीवार बड़े खेत की सात-आठ दिन से भतकी (गिरी) पड़ी थी, मगर नजर नहीं आई।—अब जरा देख के आना तो तुम दोनों, कहाँ से टूटी थी, यह भी पता नहीं चलेगा। गुबरिया तो बस, दो कामों में हुशियार है—एक हल जोतने में, एक रिभड़[1] कराने में ! इसीलिए, उसका ध्यान हमेशा चनुवा-बिनुवा बैलों पर ही अधिक रहता है !"

और, गुलबिया के चिलम लेकर पहुँचने तक, थोकदार हँस पड़े। थोकदार जानते थे, कि लछमा को औरों के काम की उपेक्षा-निन्दा और अपने खसम-बेटों के काम की चर्चा-प्रशंसा करने की आदत पड़ गई है।

धेवती को दूध-भात खिला, उसका मुँह धुलाकर, लछमा अन्दर गई और एक कटोरे में मिठाई और चाय का गिलास लेकर, जरा-सा रुक-कर—गोबरसिंह को धीमे से, नीति-निपुण स्वर में, यह कहती हुई, कि 'देख लो, अपने बौज्यू को, हो ! सवेरे से चूल्हे की आँच में भभक रहे हो, धूँ से आँखें खराब कर रहे हो, सारे परिवार का भात-दाल पका रहे हो—मगर, नहीं, रे नहीं !—रमुवा के बाप का काम किसी गिनती में नहीं आता !—ऊपर से बल्दिया बता रहे है !'—बाहर पटाँगण में पहुँच गई।

थोकदार ने, कटोरा हाथ में पकड़ने के बाद, पूछा—"क्यों, ठुलि ब्वारी ! यह मिठाई कौन लाया ?"

"मिठाई ? अरे, और ऐसी मिठाई कौन लाने वाला था, सौरज्यू ?"—लछमा, सिर के चाल को अकारण ही ठीक करती, बोली—"बरोबर तीनों बाखलियों में घर-घर मिष्ठान्न पहुँचा दिया है। जिसके

---

१. बैलों की लड़ाई।

मुँह मे देखो, उसी के मुँह से 'शाबाश, डुँगरसींग' निकल रही है। कला-कन्द भी लाए है, मगर थोड़ी ही है। मैंने सँभाल दी है, कि सौरज्यू के मतलब की चीज है।"

"लेकिन, ठुलि ब्वारी, जरा यह भी तो विचार कर, कि लोग पीठ-पीछे क्या कहते होंगे ? मुँह के सामने तो विना मिठाई खाए भी मीठा ही बोलते हैं लोग, मगर जरा एक तरफ हुए नहीं, कि, बस !—तू ही जरा सोच, ठुलि ब्वारी, कि चनरुवा-देबुवा क्या कहेंगे, उनकी घरवालियाँ क्या कहेंगी ?—कहेंगे, हमारे डुँगरसींग को फुसलाकर, फँसाकर ले गए हैं—और, खूब मिठाई पचका रहे हैं !—मैं कह देता हूँ, ब्वारी, कि डुँगरिया की रत्ती-भर चीज को भी तुम लोग हाथ मत लगाओ। मैं उसको किसी स्वारथ से नही लाया हूँ घर में। अपना फरज है, जहाँ तक उसको पूरा कर देना है। मैं चनरी और देबुवा से बातचीत करने वाला हूँ। भरोसा तो यही है, कि वे मेरी बात मान जाएँगे। तब तक दो-चार दिन डुँगरिया की अच्छी तरह से खिदमत कर दो, बस ! कल को भलाई के बदले बुराई सिर पर पड़े, ऐसा गलत काम नहीं करना चाहिए।"

लछमा ने दीवार के सहारे खड़ी की हुई चिलम पकडी, और मुँह फुलाती हुई अन्दर को चली गई—"सौरज्यू को तो मेरे हर काम में खोट ही नजर आती है ! जैसे कोई मैंने की होगी खुशामद, कि डुँगरसींग को यहाँ ले आओ। खुद तो पहले बहुत बडे हितैषी बनकर उठा लाए, और अब बेरुखी दिखा रहे हैं।"

थोकदार कुछ कहने के लिए मुह खोलने ही वाले थे, कि सामने से चनरसिंह आता दिखाई दिया।

चनरसिंह की 'राम-राम, थोकदार का !' की आवाज कानों तक पहुँची, तो डूँगरसिंह अन्दर के कमरे से चाख की ओर सरक आया, और बाहर की ओर पडने वाली खिड़की के पास ऐसे पाँव-पसारे बैठ गया, जिससे बाहर से उसे कोई न देख सके।

थोकदार ने चनरसिंह को बैठाने के लिए, हाथ से संकेत किया, और जरा जोर से पुकारा—"गुलबिया रे नाती, जरा तेरी इजा से बोल, कि चिलम यहाँ से उठा ही ले गई है, तो उसमें तमाखू भरके दे जाए··· और एक गिलास चहा, और एक टुकड़ा मिठाई का भी लाने को बोल दे, रे! वैठ-वैठ! चनरिया, तू आराम से बैठ।"

अन्दर मे गोबरसिंह भी बाहर को आने लगा था, कि 'जरा, चार बातें मैं भी सुन आऊँ'···मगर, लछमा ने टोककर, वहीं रोक दिया—"तुमको भी बकमध्यायी करने का शौक लग रहा है, हो रमुवा के बौज्यू! हजार बखत यह समझा-समझा के हार चुकी हूँ, कि तुम बालकों वाले आदमी हो। ऐसे ही चार दुश्मनों की नजर लगी रहती है, कि इसकी नौ संतानें है, और नौ में भी नौ कलदार रुपयों-जैसे बेटे-ही-बेटे!···"

"बेटे तो आठ ही हैं?"—गोबरसिंह ने टोका इस बार।

"मौजूद आँखों के सामने आठ ही हैं, मगर मेरे पेट के अन्दर की चीज तुमको मालूम है क्या, कि चेली ही होगी? मैं कहती हूँ, शर्त लगा लो—चेला ही होगा! बेटे के गरभ का भार अलग ही मालूम पड जाता है। अच्छा हो, बस करो। झट से बीच बात मे स्याल की जैसी पाद मारके, मुँह बन्द कर देते हो!"—लछमा, चहा का गिलास लेकर, बाहर को जाती हुई बोली—"तुम अपने मन को शांति में रखो, रमुवा के बौज्यू! जब तुमको किसी बात को सँभालने की तरकीब हासिल नहीं है, तो बेकार में बकमध्यायी और टंटा-फिसादी की जगहों पर मत अपना मुख दिया करो। गुलबिया रे, तेरे बूबू की चिलम जरा चेतन कर ला, चेला!—लियो हो, चनरसींग, चहा लो···और यह मिठाई!"

"कैसी हो, भौजी? गुबरदा कहाँ है? बाल-बच्चे तो कुशलपूर्वक है?"—चनरसिंह ने, चहा का गिलास और मिठाई का कटोरा थामते हुए, पूछा।

लछमा खिसिया-सी गई। उसे तो यही आशा थी, कि चनरसिंह चहा भले ही पी ले, मगर मिठाई के लिए तो इनकार कर ही देगा।

मगर, अनपूछे ही—'कि, मिठाई कैसी है ?'—चनरसिंह ने ले ली और खाने भी लग गया, तो बड़ी मार्मिकता के साथ बोली—"द, चनरसींग हो, बार बरसों की अखण्ड समाधि तोड़कर उठने वाले तपसी संन्यासी की अल्लख जसी, आज तुमको भी खूब याद आई भौजी की कुशल-बात ? रमुवा के बौज्यू आज भात पका रहे हैं, और ·····"

"क्यों, तुम क्यों नहीं पकाती, भौजी ?"

"चनरसींग भी ऐसी बात पूछते हैं, कि बस !—इतना भी नहीं समझते, कि आजकल सौरज्यू मेरा पकाया भात नहीं खा रहे हैं। तुम्हारी दुकानदारी कैसी चल रही है ?"—कहते हुए, लछमा ने ब्रह्मास्त्र-जैसा छोड़ा—"मिठाई कैसी लगी ? बेचारे डूँगरसींग की लाई हुई है !"

"बाड़ेछीना के खीमसिंह हलवाई के यहाँ का जैसा लग रहा है, यह भुटीकुंद का लड्डू तो !"—कहते हुए, चनरसिंह चाय पीने में लग गया।

थोकदार बोले—"चनर, भतीजे, तू समझदार और बाल-बच्चेदार आदमी है। तू मेरी आदतों को शुरू से ही समझता है, और इसी मद्दे-नजर से यह यकीनी अपने दिल को दे सकता है, कि थोकदार का कभी भी हमारा अनिष्ट नहीं करेंगे···मैं तो आज भी यही कहूँगा, कि कल के दिन जो-कुछ कहा-सुनी आपस में हो गई, उसे एक तरह से भुलाकर, सम्पूरण रूप से, अपने दिल से निकाल देना चाहिए—और अपने ही जिस्म का जो अच्छा-बुरा जैसा भी टुकड़ा है, उसको जहाँ भी उसकी रहने की मर्जी हो, राजी-खुशी के साथ में रहने देना चाहिए।"

"मेरा जहाँ तक सवाल है, थोकदार का, आप बुजुर्गों की आज्ञा से इनकार नहीं है। आप जैसा करने को 'ऐसा कर, चनरिया !' कह देंगे, वैसा ही करना अपना फरज समझूँगा। आप गाँव के थोकदार के नाते ही नहीं, बल्कि बौज्यू के स्थान पर रहकर भी, हमको गलत लैन से सही लैन पर लाने के लिए, कान पकड़कर अपनी मरजी के मुताबिक चला सकने के अधिकारी हैं। और डुँगरिया आप-जैसे बुजुर्ग की शरणागती में आ गया है, यह उसकी खुशनसीबी है। और, थोकदार का, मैं आपकी

अंतरात्मा से निकले हर अक्षर-अक्षर को मानने के लिए हर वक्त तैयार हूँ। हो सकता है, कि हम लोगों के व्यवहार में कुछ कमी-वेशी और गलत-अन्दाजी रही हो, जो हम अपने भाई को सँभाल नहीं सके।—इस-लिए अगर अब वह आपके यहाँ रहकर, सुधर जाता है—उसकी जिंदगानी सँभल जाती है, कामयाबी को हासिल कर लेती है···तो इससे बढ़कर खुशनशीबी की बात हम लोगों के लिए और क्या हो सकती है ?"—चनरसिंह एक साँस में कह गया।

"देख, चनर ! मेरी चतुर्थावस्था सामने आ गई है, और इस चतुर्था-वस्था में आदमी एक तीरथ-यात्री की तरह हो जाता है, कि जहाँ तक हो सके औरों की भलाई करते हुए आगे को बढ़ाना, अपने पाँवों की रफ्तार को; क्योंकि, जहाँ जाके इन्होंने रुकना है, वहाँ तुम्हारी-हमारी नही चलती है फिर, भतीज ! बल्कि, एक परमेश्वरी पूछताछ होती है, पाप-पुण्य को अलग-अलग तराजू पर रखा जाता है, और एक पलड़े की तरफ स्वर्ग के राजा धरमराज बैठे रहते है, दूसरी तरफ नरक के राजा यमराज··· जिसकी तरफ का पलड़ा नीचे को झुक गया, उसी ने उठाके अपने लोक को ले जाना है ! चनर, वहाँ तो तेरी-मेरी किसी की चलने वाली नही है। यह धर्मचर्चा मैंने इसलिए चलाई है भतीज, कि जिससे तू मेरी अन्तरात्मा के अन्दर की चीज को पहचान ले, कि थोकदार का किसी के भी घर फूट डालना पसन्द नहीं करेगे···मगर, मौजूदा जो हालत आँखों के सामने है, वह यही है, कि तुम लोगों के दिलों मे एक अन्दरूनी दरार-जैसी पड़ गई है, जो एक तरह से कल के दिन बाहर भी फूट गई है। सो, भतीज, इस फूटपंथी को एक करना तो मुश्किल जैसा है, क्योंकि दिलों में पड़ी दरार को बन्द करने के लिए जिस आपसी-मुहब्बती की जरूरत होती है, वह तो तुम लोगों में रह नहीं गई है—यह तू खुद ही कबूल करेगा इस हकीकत को, कि कल के दिन खतम हो गई है !—" 'खतम हो गई है', कहते हुए, चिलम को जोर से गुडगुड़ाकर, थोकदार ने नली चनरसिंह के मुँह की ओर घुमा दी और धुँआ धीरे-धीरे छोड़ते

हुए बोले—"इसके बाद सिर्फ एक रास्ता रह जाता है, कि दरार पड़े हुए हिस्से को अलग कर दिया जाए। तुम लोग डुँगरिया का हिस्सा, जो उसकी मौरूसी हकदारी है, उसे दे दो, और अपना फरज पूरा करके, एक तरफ हट जाओ। डुँगरिया फिर बने, या बिगड़े—यह उसी की जिम्मेवारी रहेगी। मेरी तो, भतीज, यही सलाह होती है, आगे तुम लोग जैसा ठीक समझो।"

"आप ठीक ही राय दे रहे हैं, थोकदार का! डुँगरिया की नजर कुछ ऐसी हम लोगों की तरफ से फिर गई है, कि हम कितनी भी नेक-नियती का बरताव करें, उसे बेइन्साफी और परायापती[1] ही मालूम होगी। इसलिए, मैं आपकी बुजुर्गियाना सलाह से मंजूरी ही रखता हूँ। लाख डुँगरिया हमसे झगडा करे, पर बौज्यू की जमीन-जैजात[2] में तो उसका मौरूसी हक तीसरा हिस्सा बदस्तूर है—इससे इन्कार करके हम पितरों का श्राप कैसे सिर पर ले सकते हैं? अच्छा, मैं चलूँगा अब, थोकदार का! जैसी बँटवाई आप कर देंगे, हम दोनों भाईयो—डुँगरिया को छोड़कर, मैं और देवसिंह को कोई उज्रदारी नहीं होगी।"

चनरसिंह हाथ जोडकर चला गया। थोकदार, संतोष के साथ आखिरी फूँक खींचते हुए, अपने आप ही बुदबुदाए—"बड़ी शरीफ औलाद निकली मेहनरदा की! कम-से-कम चनरिया और देबुवा तो..."

० ० ०

मडुवा और मादिर के खेतों में, बहुत-कुछ मकड़ी के जाले के आकार के, हरी घास के जाले पड़ जाते हैं। ये जाले विशेष रूप से मडुवा-मादिर के पौधों-बीच ही होते हैं। गोड़ने वाले कुटल से इन्हें, मडुवा-मादिर के पौधों के बीच से, निकाल लिया जाता है। इनकी जड़ें खेत की मिट्टी में समाई रहती हैं। जाल-जड़ों में थोड़ी-बहुत मिट्टी लगी रह जाती है। इसीलिए, इन जालों को पानी में खूब धो लिया जाता है, और फिर

---

१. परायापन। २. जायदाद।

पशुओं को खिलाया जाता है ।

तलिगाड़ के एक थिरताल[1] के पिंडलियों-गहरे जल में, जैता जाले धो रही थी । हलके हाथों से वह जालों को पानी में छपछपाती और उनकी जड़ों में लगी मिट्टी उतर जाती, धुल जाती—और हरे-उजले जाले जैता के हाथों में रह जाते, वह उन्हें ढलाऊ धरती पर नितरने रखती जा रही थी । सामने ही धान के खेत भी पड़ते थे । उसे ऐसा लग रहा था, कि गोविन्दी ननदी ने भले ही कितनी बिशरम बात कह दी है, अनहोनी बात कह दी है—मगर, उस बात की पाप-पुण्य की रेखा को थोड़ी देर के लिए लाँघ लिया जाए, और सिर्फ उस बात की मिठास तक ही मन को सीमित रखा जाए, तो जैसा अभी अनुभव हो रहा है, तन हलका-हलका-जैसा, मन पुलका-पुलका-जैसा, ऐसी दशा तो होगी ही—याने, इस समय तो गोविन्दी के चंठ-मुँह से निकली बिशरम बात के थिरताल के पिंडलियों-गहरे जल में छपछपाते हुए, मन की सारी अवसाद-मिट्टी डूब रही है, धुल रही है—और गोविन्दी ननदी के चंठ-होंठों पर हथेली रखने को मन हो रहा है, ताकि वह और ज्यादा लटपटाती जीभ से इसी बिशरम बात को बार-बार दुहरा सके ।

कितों[2] की पंक्ति-बद्ध बरात-जैसी जैता की गोरी-मांसल पिंडलियों तक आ रही थी; और, हलकी-हलकी ठपुक[3]-जैसी मार रहे थे, छोटे-छोटे कित—और, जैता को, कुतकुती-जैसी लग रही थी । मगर, खुद उसका मन ही इतना कुतकुता रहा था, कि वह कोपिल दृग-कोरों से कितों

---

१. ऐसा तालाब, जिसका पानी थमा हुआ हो । पहाड़ी नदियाँ समतल धरती पर नहीं, बल्कि ढलाऊ धरती पर होती हुई बहती हैं, इसलिए उनमें वेग अधिक रहता है, जिससे पतली-से-पतली नदी में भी गहरे-गहरे ताल बन जाते हैं । २. मछली के छोटे-छोटे बच्चे । ३. स्पर्श-जैसा हल्का आघात ।

को घूरती थी, मगर मुसकराती रह जाती थी—चू-चू-चू-चू—शिबौ[1] कितने छोटे-छोटे कित हैं ?—और गोपुलि ज्यू कहती थीं एक दिन, आपस में बात करते हुए औरतों के बीच में, कि 'जिस समय बालक बच्चेदानी में प्रवेश करता है, उस समय, उसका आकार बिलकुल चितलू-कित[2] जैसा ही होता है !' और, आज गोबिन्दी ननदी पूछती थी—और आज गोबिन्दी ननदी कहती थी—

"नानि भौजी ! बौज्यू चले गए हैं क्या ?"

अपनी ही कुतकुताती कामना-कल्पना के कल-कल नाद में खोई-सी जैंता सहसा चौंक-जैसी उठी—"कोछ[3] ?"

"हाई, तुम तो माछ-जैसे मार रही हो, नानि भौजी ? ऐसे चौंक रही हो, जैसे कोई तुमसे भी बड़ी मछली तुम्हारे हाथों से निकल गई हो ! और, हाथों में तो जाले पकड ही रखे हैं, भौजी, क्या आँखों में भी पड़ गए हैं ?" जसौतसिह ने हँसते हुए पूछा।

अब जैंता किस मुँह से बताए, कि 'हाँ, जसौती, सब-कुछ बिलकुल ऐसा-ही-जैसा हो रहा है !...'

फिर उसका मुँह खुलने को हुआ, कि 'प्राणों की जड़ मन में ही जाले जैसे पड़ गए हैं, जसौंतसीग, तुम आँखों की हालत पूछ रहे हो ?'—मगर, इतने ही शब्द मुँह से निकले—"ठेकदार से बातचीत कर आए जसौंती ?"

"हाँ, भौजी ! परसों शुक्क से मैं लकड़-चिरान के काम में जाने वाला हूँ। अब के साल ठेकदार ने यहीं सौंलखेत के वारफाट[4] का जंगल

---

१. कुमाऊँ में करुणा और संवेदना-संकुल वाक्यों को कहने से पहले 'राम-शिब-हरि' कहने का चलन है— और राम का उच्चारण ऐसे किया जाता है, कि वह 'रामो'-जैसा सुनाई पड़ता है, और शिब 'शिबौ'—जैसा, हरि 'हरी'-जैसा। २. चितलू मछली का बच्चा एकदम छोटा, सफेद और चमकीला होता है। ३. कौन है ? ४. [illegible]

लिया है।

"सवेरे को काम पर जाकर, शाम को घर लौट सकता हूँ।" कहने के बाद, दीवार की ओर देखते हुए, जसौंतसिह ने पूछा—"बौज्यू घर चले गए हैं, नानि भौजी ?"

"हाँ, सौरज्यू तो घर चले गए हैं। कह रहे थे, तमाखू का अमल लग गया है···और कह रहे थे, कि जसौतसींग को···"

"बौज्यू ने तो 'जसौतिया को' कहा होगा ?"

"मगर, मुझे तो जसौतसींग ही कहना चाहिए ? सौरज्यू कह रहे थे, कि—अच्छा लो, तुम्हारी ही मन-जैसी कर देती हूँ—जसौंतिया को दिवाल चिनने को बोल देना···और कह रहे थे, कि···"—वाक्य अधूरा ही छोड़कर, जैता ने ऊपर तलटान के खेतों की ओर आँखें उठाईं—गोविन्दी ननदी क्या कर रही होगी ?

"और क्या कह रहे थे बौज्यू, नानि भौजी ?"—जसौंतसिह ने, कुर्ते की आस्तीनों को लौटाते हुए पूछा।

"और ?··· अरे, हाँ, और कह रहे थे, कि जरा जसौंतसींग को ढुंग-पाथर थमा देना···" कहकर, जैता एकदम लजा गई। उसे असल में इस कल्पना में और अधिक लाज लग रही थी, कि एक दिन इसी जसौंतसिह ने, धौलछीना के धारे में आलू के फितड़े का घट चलाते हुए, एकदम बिशरम बनकर, कह दिया था—"दो नौल तो तुम्हारे ही भरे हुए हैं, भौजी !"

जैता को आश्चर्य हुआ, कि जिस बात को उस दिन प्रत्यक्ष जसौंत-सिह के मुँह से सुनकर भी कुछ विशेष लाज-जैसी नहीं लगी थी, कुछ विशेष कुतकुती-जैसी नहीं लगी थी मन में—आज उसी बात को सिर्फ सोचने से ही सारे शरीर में अन्दर-बाहर, दोनों तरफ—चट चितलू-कित ठपुक-पर-ठपुक-जैसी मार रहे हैं ?

"आज तो तुम बिलकुल नई ब्योली-जैसी शरमा रही हो ?"—जसौंतसिह खेत की ओर बढ़ते हुए बोला।

और जैता को एक मर्मवेधी सुधि हो आई—जब करमसिंह सिर मुकुट बाँधकर, उनके आँगन में घोड़े पर से उतरा था, तब जैता व ब्योली-मन कितना धकधकाने लगा था ? सुख से, दुःख से, लाज से सुख-ससुराल जाकर, पति की संगति में रहने का—दुःख, मायके बिछोह का; और लाज, कि 'ओ, बबो, थोड़ी देर में जब पुरोहित दे दत्त ज्यू, 'ओम् स्वाहा-ओम् स्वाहा' के मन्त्रों का पाठ करते हुए, दोनों हाथ में जल का संकल्प थमाने लगेंगे—सब लोगों के सामने—और— जब भाँवर फिरने के लिए, उसकी साड़ी का गुलाब का फूल-छाप छो करमसिंह की हल्दिया-धोती के छोर से बाँध दिया जाएगा, और—औ कुतुली भौजी की दी हुई राय के मुताबिक, जब उसे करमसिंह के आगे आगे तेजी से चलकर अपना ब्योली-तराण[1] दिखाना होगा—अरे, बबा जैता के पाँव तो जल्दी-जल्दी उठने से रहे—फिर जल्दी चलने में कह करमसिंह का पाँव धोती में फँस गया तो ? आँखें तो बेचारे की वैसे ह मुकुट-झालर (मेहरा) से ढँकी हुई हैं !—और पुरुष का मन बड़ा प्रति शोधी होता है—यहाँ अपने पटाँगण में, मान लिया, जैता ने करमसि को, कुतुली भौजी के शब्दों में, रस्सी से बँधे बकरे-जैसा खींच लिया, त भले ही उसकी थोड़ी-सी हँसी-मजाक हो जाए—मगर, कहीं घर पहुँच कर—किसी भी दिन—उसने उसके ब्योली-तराण को, बदला लेने व भावना से, आजमाना शुरू किया तो··· ? ओ, बबारे, उस समय तो को इधर-उधर से देखने वाला भी नहीं होगा ! ···

"भौजी, आकाश के बादल-जैसे क्या देख रही हो ? जरा ढुंग पाथर नहीं थमा दोगी ?"—जसौतसिंह ने, सामने खेत की दीवार चिन हुए, जोर से पुकारा ।

---

१. दुलहन की शक्ति ।

१९

चनरसिंह से थोकदार की मुलाकात एक बार और हो गई थी। आपसी बात चीत के दौरान में, यह तय हो गया था, कि आज बीपै है, कल शुक्क, परसों छन्चर और नरसों को ऐंतवार उस दिन देवसिंह भी छुट्टी पर घर ही रहेगा, सो उसी दिन बँटवारा करना ठीक रहेगा।

आज वृहस्पति था—और इन्ही गुरू वृहस्पतिजी की घरवाली से बेटा पैदा करने के उपलक्ष मे चन्द्रमा के मुँह में काला दाग पड गया था—इस कहानी को डूँगरसिंह भी जानता ही था। नतीजा तो इस कहानी मे यही निकलता था, कि पाप का कार्य जगत में हमेशा ही दुखदायी और बदनामी कराने वाला होता है—मगर, डूँगरसिंह इसी कहानी को दूसरी तरह से ले रहा था—यानी इस वृहस्पति-चन्द्रमा की कहानी से एक बात यह भी सिद्ध हो ही जाती है, कि दिल पर, और इस दिल में रहने वाली मुहब्बत की तमन्ना—(जो कि चन्द्रमा के दिल में अपनी गुरुरानी के लिए थी, और डूँगरसिंह के दिल में, पलटन में

जाने से पहले, नरूली के लिए थी, और अब, पलटन से लौटने के बाद, जैता के लिए है)—इन दोनो पर तो देवताओं का भी काबू नही रहा। इन्सान बेचारा मिट्टी-पानी का बना हुआ, उसकी हस्ती ही क्या है !

इस मद्दे-नजर से, डूँगरसिंह किसी तरह का गलत काम हाथ मे नहीं ले रहा है। बल्कि, एक तरह से, वह (चन्द्रमा-जैसे देवता से भी) एकदम बेकसूर और सही रास्ते पर है—क्योंकि, एक तो वह खुद भी कुँवारा ही है, दूसरे जैता भी रिश्ते में भौजी ही लगती है, वह भी सिर्फ दूर के रिश्ते से। इसके अलावा, भगवान् की दया से, मौजूदा समय मे विधवा भी है। इस तरह, डूँगरसिंह के दिल में अगर जैता को पाने की तमन्ना, और उसके साथ गृहस्थी बसाने की हसरत है, तो इसमें किसी भी प्रकार की कोई खराबी नही है।

आज वृहस्पति है, कल शुक्र और परसों शनिश्चर—

इनवार को बँटवारा हो जाएगा। अच्छा है, एक बहुत बड़ी झंझट का काम शान्तिपूर्वक और आसानी से पूरा हो रहा है। मगर, असली काम तो डूँगरसिंह को आज से ही शुरू करना है।

डूँगरसिंह अन्दर लेटा हुआ था। वहाँ से उठकर, चाख में बैठे-बैठे तमाखू की फूँक मारते हुए, थोकदार के पास आ पहुँचा।

"अब कैसी तबियत है, डुँगरिया ?"—थोकदार ने, चिलम उसकी ओर बढ़ाते हुए, पूछा।

"पहले से बहुत फरक है, थोकदार चचाजी !"—डूँरगसिंह ने तमाखू पीना शुरू कर दिया। धुँए को मुँह-नाक के अन्दर ही घुमाते हुए, थोकदार से क्या कहना है, यह निश्चित किया—और, फिर दोनों हाथ लगाकर, चिलम थोकदार की ओर बढ़ाते हुए, कृतज्ञतापूर्वक बोला—"थोकदार चचा, बाँकी विस्तार से तो क्या कह सकता हूँ, इतना ही कहूँगा, कि मेरी—मेरे ही सगे भाई-भौजियों की नाइन्साफी से—बरबाद होती हुई इस जिन्दगानी को आपने जिस तरह से सँभाल लिया है, नेस्ती-

और आपकी किसी भी किस्म की खिदमत करने में खुशनशीबी समझूँगा। मगर, थोकदार चचाजी, एक प्रार्थना और बाकी रह जाती है, जिसे मुझे आपके चरण-कमलों की सेवा मे अर्ज करना है।"

इतना कहकर, डूँगरसिंह, दोनों हाथ जोड़े असीम कृतज्ञता और विनम्रता के साथ थोकदार को एकटक निहारते हुए, थोकदार के और अधिक समीप सरक आया।

थोकदार उसके इस विनयशील-व्यवहार से गद्‌गद् हो उठे। खिमुली, भिमुली और चनरसिंह की बातें सुनने पर थोकदार के मन में कभी-कभी शका उठती थी, कि जरूर डुँगरिया के स्वभाव-चरित्र में भी कहीं खोट है, जो ऐसे भाई-भौजियों से भी उसकी इतनी खटपट हो गई है—मगर, डूँगरसिंह से बातें करते हुए, उनका यह अपुष्ट शंका-शूल तमाखू के धुँए के साथ ही कलेजे से बाहर निकल आता था, और उनका मन डूँगरसिंह की श्रद्धा-भावना से निरभ्र आकाश-सा उजला हो जाता था—'डुँगरिया बडा लायक बेटा है। इस कौली-उमर में ही जिस तरह से सामने वाले की पोजीशन और बुजुर्गी को जाँचकर, बहुत ही ल्याकत-शराफत के साथ वह बात करता है—उसकी इस जेन्टिलमैनी को देखते हुए, इस बात का मलाल रह जाता है, कि अगर उसकी किस्मत उसका भरपूर साथ देती, और वह दो-चार बरस कश्मीर फ्रन्ट में रह जाता, तो चीज बनके घर लौटता, चीज!·· और, आज जो भाई-भौजी की जोड़ी उसे घोका-खेत[1] के बानर-जैसा खदेड रही है, वही उसके शानदार रुतबे—जो या तो कप्टनी होती, या तो लप्टनी (हौलदारी तो बाएँ हाथ की चीज थी!)—उस शानदार रुतबे को देखते ही, सलामी देते हुए, बैठने को टिरक में से निकालके बढ़िया दन बिछाते।"

थोकदार, गाँव के थोकदार और वयोवृद्ध होने के नाते, कुछ ऐसी गरिमा-जैसी अनुभव करते हैं, कि अगर गाँव में किसी को भी किसी

---

१. मकई के खेत।

प्रकार का क्लेश व्यापता है, तो यह उनका फर्ज हो जाता है, कि उसको अभय-दान दें, कि 'अरे, यार, नरैणा ! घरवाली के मरने से इतना क्यों घबराता है ! जनम-मरण पर तेरा-मेरा किसी का काबू है ? जो होना था, हो गया। तेरे रोने से गोमती ब्वारी वापस आने वाली नहीं है। हाँ, जो तू इस बात के लिए रो रहा है, कि अब मेरी खेती-गृहस्थी को कौन सँभालेगा ?—तो, सबर कर। साल-भर के अन्दर ही तेरा काम फिर उसी पुरानी रफ्तार से ही चलने लगेगा।'—या 'डुँगरिया बेटे, फिकर मत कर ! भाई-भौजियों को तू अगर बहुत ज्यादा भारी लगता है, तो मैं तेरा कोई-न-कोई बन्दोबस्त कर ही दूँगा।'—

और आदमियों की तो बात ही और है, अपने ही नाती लछमियाँ का छोटा पाठा[1] मर गया मौनी[2] मे, तो जहाँ उसने 'थोकदार बूबू, मेरा पाठा खतम हो गया है, अब मैं ठेप-ठेप किसको सिखाऊँगा ?' कहते हुए थोकदार के पास आकर रोता था, कि थोकदार ने उसी समय जाके किसनसिंह से एक उससे भी बडा पाठा खरीदकर, लछमियाँ की गोद में थमा दिया, कि 'तेरा बूबू मर गया था, रे ! जो लावारिशों की तरह डाड़ मारते हुए आया ?'

कई-एक इन पुरानी बातों का इस समय अनायास ही ध्यान आ गया, और थोकदार गगन-गम्भीर-कंठ से बोले—"अरे, डुँगरिया, जो-कुछ भी फरियादी तुझको करनी हो—मुझे अपने बौज्यू के स्थान पर समझकर, निष्कंटक होके, बेफिकरी से क्यों नहीं कहता है, चेले[3] ?"

"थोकदार चचाजी, जिस डुँगरिया को कश्मीर-फ्रन्ट के घमासान मैदान में ले दनादन रैफलों की गोली-पर-गोली, बारूद-पर-बारूद को छटकाने में किसी किसम की झिझकनी-परेशानी नहीं हुई—उसे चार बात मुँह से निकालने में क्या रुकावट हो सकती है ?"—डूँगरसिंह अदब

---

१. बकरी का बच्चा। २. बकरियों के मुख में होने वाला एक रोग। ३. बेटे।

के साथ बोला—"मगर, जो मेरा फरज और उसूल है, कि बुजुर्गों की हमेशा इज्जत करनी, और उनसे हर प्रार्थना बहुत ही ल्याकती-शराफती के साथ, सिर को अदब से झुकाकर ही, करनी—इस उसूलपरस्ती का कैल[1] रहता हूँ। थोकदार चचाजी, आप भी समझ सकते हैं, कि बेलैकी-बदतमीजी से इन्सान की वकत ही क्या रह जाती है? इसलिए आप-जैसे सन-बुजुर्ग जो पहले हो गए हैं, वो भी यही कह गए, कि 'कागा का को धन हरै, कोयलिया का को देत? अरे, सत कबीरा, मीठी बानी बोलिके जग अपनो करि लेत!'—याने कौवा जो कागा है, वह अपने चाचा का धन[2] हरण कर लेता है। मगर, कोयलिया, जिसको हमारे यहाँ स्योली कहा जाता है, अपने चाचा को देती है और इस तरह से मीठी बातें करके सम्पूर्ण जगत को अपने काबू मे कर लेती है...."

"लाख की बात करता है, भतीज, तू!"—थोकदार प्रफुल्ल होकर, डूँगरसिंह की पीठ थपथपाने लगे—"एक जुग बीतने को आ गया है। ठीक से याददाश्ती तो नहीं है, मगर एक बार अलमोड़ा से मैंने तमाखू की पिण्डी मँगाई थी—हीरालाल-मोतीलाल, लाला बाजार वालों की दूकान से। उन्होंने दो-सेरी पिण्डी के चारों तरफ जो पुस्तक लपेट दी थी, उसमें जगह-जगह तमाखू के दाग तो लग गए थे, मगर, मैंने फिर भी थोड़ा-बहुत बाँच लिया। उसमें एक तुलसीदास जी का जैसा दोहा लिखा हुआ था—'बातन हाथी पावत है, मना, बातन हाथी पाँव।' पहले तो मेरी समझ में इस दोहे का अर्थ नहीं आया, मगर, जब एक-दो जगह उसमें बीरबल और बादशा अकबर के अलावा राजा मानसिंह का नाम भी देखने में आया, तो अर्थ भी साफ हो गया—याने, बातों को करने की ल्याकत-शराफत के हिसाब से बीरबल को तो पूरा हाथी मिल

---

१. कायल का अपभ्रंश। २. कुमाऊँनी बोली में 'का' चाचा को कहते हैं, इसलिए 'का को धन' का अर्थ, डूँगरसिंह ने, 'चाचा को धन', अर्थात् चाचा का धन, लगाया।

गया, मगर—ठाकुर-राजपूत लोग तो वैसे ही अकड़ किसम के होते हैं—सो राजा मानसिंह को सिर्फ हाथी का एक पाँव मिला। तुझमें बात करने की बहुत ही ल्याकती-शराफती और हुशियारी है, डुँगर भतीज!—और, तेरी इसी बड़माई को देखते हुए, मुझे चनरिया और खिमुली ब्वारी पर कोप आता है, कि कैसे हीरा भाई को मूरख ठोकर मार रहे हैं!"

"और, थोकदार चचाजी, ठीक इसी प्रकार से"—डूँगरसिंह, असली कार्य-सिद्धि के लिए, कहने लगा—"जबान ससुरी का क्या जाता है, कहते हैं इधर-उधर हिलाओ तो अपने आप ही आवाज-जैसी निकलती है। मगर, जबान से जो बात निकल गई, उसका पालन कितने लोग करते हैं? किसी को भी 'बेटा-बेटा' कहने की खातिर जबान को सिर्फ दो आखर इस्तेमाल करने पड़ते हैं—बे और टा! मगर, बेटे की इज्जत रखना, उसकी परवरिश करना, हर मुसीबत में मदद करना—इस बात का ध्यान कितने 'बेटा-बेटा' कहकर पुकारने वाले करते हैं? मैं तो, खैर, यह समझ के सतोष धारण कर लेता हूँ, कि जब खास अपने बौज्यू मेरा कोई कल्याण करके नहीं गए, तो दूसरा कोई क्या खाक करेगा?"

थोकदार चिलम की नली थामे ही रह गए थे, कि डूँगरसिंह ने फौरन उनके मुँह की रेखाओं को यथा-स्थान बिठा दिया—"मगर मैं धन्य-धन्य कहता हूँ, थोकदार चचाजी, आपकी परवरिशदिगारी को! मैं आपका क्या लगता था?— मगर, आपने ऐसी घोर बिपदा के समय में अपना बरदानी-हाथ मुझ फुटखोरिया[1] के लावारिश सिर पर रख दिया, कि मेरी बरबाद होती जिन्दगी कामयाब हो गई। मगर, थोकदार चचा जी, डूबते हुए इन्सान को ऊपर निकाल देने से ही, किसी का फरज एकदम सम्पूरण नहीं हो जाता—बल्कि, यहीं से तो और ज्यादा फरजदारी शुरू होती है!— याने, डूबने वाला जो था—चाहे

१. सिर-फूटे।

वह दूसरों के जरिए ही डुबाया जा रहा था—वह आखिर डूब क्यों रहा था ?—या कि, डुबाया क्यों जा रहा था ?···अगर, इस कारण को नही ढूँढा जाता—और ढूँढ करके, डूबने वाले (या डुबाए जाने वाले) आदमी की नई जिंदगानी का सही रास्ता नही किया जाता, तो आखिर फायदा क्या है ? डूबने वाला तो यही सोचेगा, कि इस बचाने वाले ने भी मुझको एक मौत से निकाल के, दूसरी के हवाले कर दिया !··· और, उसको यही ख्याल आएगा, कि इस बचने से तो मर जाना ही अच्छा था···"

थोकदार डूँगरसिंह का मंतव्य समझ गए, और स्नेहपूर्वक बोले—"लेकिन, तेरे लिए तो मैंने सम्पूरण व्यवस्था कर दी है, भतीज ! तेरा हिस्सा पुश्तैनी जमीन-जैजात मे बेरोकटोक दिलवा रहा हूँ, जो तुझे आज बीवै, कल शुक्क, परसों छन्चर और नरसों—ऐंतवार को हासिल हो जाएगा। इसके बाद, तू खुद सँभाल ही लेगा, क्योंकि काफी दिलावर और दिमागदार आदमी है। जो मंजिल की तरफ जाने वाला होता है, उसे ज्यादा-से-ज्यादा सही रास्ते पर खडा करके आशीरवाद दे देना चाहिए—मंजिल तो वह खुद ही तय करेगा ? इसके लिए उसको पीछे से धक्का देने की कोई जरूरती नही हो सकती !"

"आप-जैसे बुजुर्ग का आशीरवाद किसी भी आदमी के लिए एक बहुत बड़ी चीज होती है, थोकदार चचाजी !···मगर, रास्ता चलने वाले के पास ऐसा आधार भी कोई होना चाहिए, जिसके सहारे वह आगे बढ़ सके। खास करके, अगर चलने वाले के पाँवों मे बदकिस्मती से कोई कमजोरी भी हो।"—डूँगरसिंह और भी विनीत-स्वर में कहता गया—"थोकदार चचाजी, आप हकीकत में मेरे लिए बौज्यू के स्थान पर हैं, और अपनी छोटी-सी प्रार्थना को घुमा-फिराके इस ढँग से करना मै ठीक नही समझता, कि आप चक्कर में पड़ जाएँ। मेरे पाँव की जो हालत है, छिपी हुई है नही। मुझ से खेती का काम-काज हो नहीं सकता। हाँ, एक जगह बैठकर, दुकानदारी का काम जरूर बखूबी चला सकता

हूँ। इसलिए, मेरी हाथ जोडके बारम्बार विनती आप से यही है, कि जमीन जितनी भी मेरे हिस्से मे आती है, मेरे लिए एक तरफ से बेकार है, उसे आप सँभाल दे—चाहे मजदूरो से काम करवा के और ऊपर-ऊपर से घरवालों से देख-भाल करवा के। चार मुट्ठी अनाज जो हो, उसे मुझ तक पहुँचाने का बन्दोबस्त कर दें, और नही तो, जमीन को खुद खरीद लें। मैं जमीन की बिक्री से दुकानदारी मे बढोतरी कर लूँगा। —और दुकान जो आपकी खुद की है, धौलछीना पड़ाव मे, उसे मुझे देने की मिहरबानी करें। वाजिब किराया देने से कोई इन्कारी नही हो सकती—बस, इतनी ही मिहरबानी आप मुझ बदनसीब-लावारिश पर, अपने ही बेटों के स्थान पर समझकर, कर दे—बाकी मैं खुद अपनी जिन्दगानी को ठीक कर लूँगा, थोकदार चचाजी ..."

अपना कहना समाप्त करते ही, डूँगरसिंह ने थोकदार के पाँव दोनो हाथों से कसकर पकड़ लिए। थोकदार के हाथ से चिलम नीचे गिरते-गिरते बची।

२०

थोकदार के चरणों पर हाथ रख देने से, डूँगरसिंह का एक कार्य सिद्ध हो गया था।

उन्होंने अपने पड़ाव वाले नए मकान के नीचे के हिस्से के अगले दोनों कमरे, दुकानदारी के लिए, दे देने की हाँ भर ली थी। थोकदार ने जहाँ 'हाँ' कह दिया था, तो उज्रदारी करने वाला कौन था, घर में? गोबरसिंह बेचारा अपने में ही मस्त आदमी था, और जसौतसिंह हमेशा यही कहा करता था, कि 'बौज्यू से आगे हम कैसे चल सकते है?'

उसका कहना भी ठीक ही था, कि 'बेटों से बाप में दो अंगुल ज्यादा बुद्धि तो हर हालत में अधिक रहनी ही चाहिए, सो बौज्यू जो करेंगे, हम लोगों से ज्यादा दूरन्देशी और समझदारी के साथ ही करेंगे।'

थोकदार के साथ जरा जबान को फुर्ती और चालाकी के साथ हिलाने वाली सिर्फ एक लछमा थी, सो उसने खुद ही कह दिया था—
"मौरज्यू दरसली में आज एक भलाई और पुण्य-प्रतापिता का नेक

शुभ कार्य कर रहे हैं।" बेचारे डूँगरसीग, चारों तरफ से मार खाए हुए आदमी, गरीबी और गर्दिशी के घनघोर चक्कर में फँसे हुए हैं। ऐसे में उन बेचारों को जरा कमर सीधी करने के लिए जो भी अधार-लधार दे दे, उसी को पुण्य है, परमारथ है। फिर हमारे तो घर में से किसी को दुकानदारी करनी है नहीं। किसी दूसरे को देने से तो, डूँगर-सीग को देने में लाख दर्जे भलाई है। परमारथ-का-परमारथ हासिल होगा, और वाजिबी-किराया भी बेचारे टैम से दे ही देंगे·· थोड़ी-बहुत बालकों की फीस-कौपियों का ही खर्चा निकल जाएगा।"

० ० ०

डूँगरसिंह का मन पड़ाव का एक चक्कर काटने को हुआ, तो थोकदार के घर से निकल पड़ा। जैता आज भी गोड़ने चली गई थी, दो-तीन बौलियों[1] और गोविन्दी के साथ। जसौतसिंह लकड़-चिरान के लिए मौलखेत की ओर निकल गया था। गोबरसिंह आज भी भात-दाल के कार्य में लगा हुआ था। लछमा, हमेशा की तरह, बालकों की देख-भाल और गोबरसिंह का हाथ सारने में व्यस्त थी। बालकों में से स्कूल जाने वाले स्कूल चले गए थे और रमुवा अपने स्कूल नही जाने वाले छोटे भाई की पाटी में अ-आ-इ-ई लिखकर, खुद मिडिल का रिजल्ट निकलने का अन्देशा मन में लिए गाय-बकरियाँ चराने चला गया था। थोकदार तमाखू की पिण्डी को कम करने के बाद, खेतों की ओर निकल गए थे···याने। एक तरह से, रोज का जैसा आज का दिन भी चल रहा था।

मगर, डूँगरसिंह के लिए आज का दिन कार्य-सिद्धि का दिन साबित हुआ था। और, डूँगरसिंह को एक बार फिर से गोपुली काकी के शरीर में साक्षात् अवतार लेने वाले गंगनाथ-गोल्ल देवताओं पर श्रद्धा हो रही थी—'यों ही अपनी दया-दिरिष्टि रखना आगे तक, हो परमेशर!···'

अपने भविष्य की दुकान देखने की ललक लिए, आगे बढ़ता हुआ, डूँगरसिंह सोच रहा था, कि लछिम भौजी की हर बात उसके हक में अच्छी होती आ रही है, और, भगवान् करे, आगे भी हमेशा लछिम भौजी की कृपा ही रहे, ताकि शेष कार्यों को भी सिद्ध किया जा सके —मगर, आज एक बात—(वैसे यह बात भी डूँगरसिंह के हक में अच्छी ही हुई थी)—कुछ बे-बुनियाद-जैसी निकल गई थी, लछिम भौजी के मुख से, कि 'बेचारे चारों तरफ से मार खाए हुए आदमी है !'

अरे, सिर्फ दो तरफ से मार खाने वाले गेहूँ के दानों का तो आटा बन जाता है—चारो तरफ से मार खाके डूँगरसिंह क्या साबित रहता ? हर बात में ईश्वर को दोष देने से भी, फायदा तो कुछ होता नहीं, उलटे ईश्वर का कोप पड़ने का खतरा रहता है, क्योंकि कहा गया है, कि ईश्वर चारों तरफ से किसी को नहीं मारता !

जिसने भी यह बात कही होगी, लछिम भौजी से तो वह ज्यादा ही अकल रखता होगा, क्योंकि हकीकत यही है, कि डूँगरसिंह ने चारो तरफ से नहीं, सिर्फ एक तरफ से मार खाई है !—साक्षी यही बाँई बारूद की चोट-खाई टाँग है, जो सँभालते-सँभालते भी लचक ही जाती है, और च्यास्स्-जैसी होती है ··

इसके अलावा तो, बाकी सभी तरफ से, इस समय डूँगरसिंह की भलाई ही हो रही थी। खिमुली-भिमुली भौजियों के कँटीले-सम्पर्क से मुक्ति मिल गई है, एक बात तो बहुत बड़ी यही है। इसके अलावा, आगे के लिए, तकदीर का फाटक-जैसा अलग ही खुल रहा है। दुकानदारी अगर चल गई, तो चन्द दिनों के बाद ही, इसी डूँगरसिंह के 'डुँगरिया-डुँगरिया सुनने वाले कानों में 'दुकानदार ज्यू-डूँगरसिंह ज्यू' होने लगेगी। इस तरह से, टूटी टाँग के रहते हुए भी (हालाँकि आगे भी तकदीर ने साथ दे दिया, तो जैता के मखमलिया-हाथों की लगातार तेल-मालिश से टाँग का लूलापन भी थोड़े ही दिनों मे दूर हो जाएगा।) शेष जीवन को व्यवस्थित-ढग से बिताने के लिए, जमीन-जायदाद में भरपूर तीसरा

हिस्सा मिल रहा है। दुकानदारी चलाने के लिए 'चान्स' मिल रहा है।

"क्यों हो, डूँगर, आज दुकानों की तरफ चलाचली हो रही है क्या ?" उमादत्त दुकानदार ने आवाज मारी, तो डूँगरसिंह की विचार-कड़ी टूटी और, हँसने का प्रयास करते हुए बोला—"पैलागन हो, गुरु ! कैसी चल रही है दुकानदारी ?"

"कल्याणमस्तु ! आ हो, डूँगर, बैठ। एक घुटुक चहा की मार ले। घर पहुँच गया है राजी-खुशी, यह जानकारी तो हासिल हो ही गई थी। साथ में यह सुनके भी अफसोस-जैसा रहा, कि पाँव में थोड़ी-सी तकलीफी आ गई है। अब कैसी है तबियत ?···आँ-हाँ, सँभल के बैठना जरा, पाथर-ही-पाथर हैं, चारों तरफ···"

दूकान के आगे बरामदा था, उसी के एक कोने में भट्टी बनी हुई थी, चाय की। बरामदे से एक सीढ़ी नीचे, सड़क से मिलता आँगन था। प्रायः प्रत्येक मकान की बनावट ऐसी ही थी। पिछवाड़े छप्परनुमा-घुड़साल थी, जहाँ भारवाही घोड़े-खच्चर बाँधने की सुविधा थी। अलमोड़ा से उत्तर-पूर्व की ओर के सभी बड़े-बड़े पड़ावों की दुकानों के लिए सामान ढोने वाले घोड़े-खच्चरों के लिए ठहरने को धौलछीना भी एक पड़ाव था। जिस सड़क पर धौलछीना पड़ाव था, वह 'अलमोड़ा-बेरीनाग-लैन' या 'अलमोड़ा-धारचूला-लैन' कहलाती थी। डूँगरसिंह पाँव-पसारे बैठ गया, तो उमादत्त उदास-स्वर में बोला—"डूँगर, दुकानदारी के क्या हाल पूछता है, भाई ? धौलछीना की सारी बिक्री पर रुपए-में-बार-आने तेरे दाज्यू चनरसिंह ने कब्जा कर रखा है !···बाकी सब लोग तो सिर्फ एक बखत-कटाई कर रहे हैं, जजमान !"

"क्यों गुरू, बिकरी-बट्टे में कुछ दम नहीं है क्या ? वैसे धौलछीना एक ऐसा पड़ाव है, कि अलमोड़ा से आने वालों को, बाड़ेछीना से यहाँ तक, सीधे पाँच मील की चढ़ाई पड़ती है। इसके अलावा, यह ऊँची जगह है, चारों तरफ से खुली हुई—ठंडी-मस्त हवा फरफराट-जैसी करती हुई चारों तरफ से ऐसी आती है, कि दाढ़ी-मूँछ के बालों में भी एक

कम्पायमानता-जैसी व्याप जाती है। और पानी तो, खैर, यहाँ का सारे अलमोड़ा जिले में प्रसिद्ध है कि 'धौलछीना को ठण्डपाणी, दाँतों में कल्कल्ली—तेरो घर 'तली, गोपी, मेरो घर भली !'—याने, गुरू, मुवा-मारनी—जैसी किसी जोड़ी को एक-दूसरे का नीचे-ऊपर का घर देख-कर, जैसी माया-ममता होती है—ठीक इसी तरह से, धौलछीना के ठंडे पानी की याद आने पर नीचे-ऊपर के दाँतों मे एक संगीत-नौटंकी-जैसी चलने लगती है·· याने, मेरा अपना यकीन तो यही है, कि आते-जाते मुसाफिरो को यहाँ पर थोडी देर के लिए ठहरना ही चाहिए—और मुसाफिरो की यह आदत होती है कि जहाँ भी थोडा ठहरे, खाने-पीने को मन चल ही जाता है। खुद मैं जिस दिन डिसचारज हो—याने गवर-मिन्ट की तरफ से बाइज्जत-विदाई लेकर, घर लौटा हूँ—यकीन करो, गुरू ! हर स्टेशन-पड़ाव में एक गिलास स्टौन टी, और एक पैकेट कैंची-मार्का कहीं नहीं गया !—" कहने के बाद, डूँगरसिंह उमादत्त की दुकान में नजर फिराने लगा।

उमादत्त डूँगरसिंह के लिए चाय बनाने में लगा था, और विस्मय-विस्तृत नेत्रों से एकटक डूँगरसिंह को देखता जा रहा था। डूँगरसिंह के धारा-प्रवाह वक्तव्य से आकर्षित होकर, दो-चार लोग और एकत्र हो गए थे वहाँ। जगलों में मुरली बजाने, और गीत गाने का अभ्यास था, सो कण्ठ-स्वर भी सुरीला और प्रखर था, डूँगरसिंह का।

आँगन के सामने से आगे को बढ़ते हुए, दो पलटन के सिपाही, डूँगरसिंह के खाकी कपडे देखकर, और परेड-मास्टर की जैसी जोरदार आवाज सुनकर, उमादत्त की दुकान में आ गए। बरामदे में लगी बैंच पर बैठते हुए, उमादत्त से बोले—"दुकानदार सैप, दो गिलास जरा गरम चहा बना दो। स्टौन होनी चाहिए। बीडी-माचिस भी है दुकान मे ?"

"सब तैयार है, हजूर ?—उमादत्त झट से कितली का खौलता

पानी छोटी घंटी में, अंदाज से दो गिलास-भर, उँडेलते हुए बोला। फिर उसने, दुकान के गल्ले में बैठे हुए, अपने बेटे को पुकार लगाई—"मथुरा-दत्ता रे, दोनों हौलदार लोगों को दो-दो बंडल पानसुन्दरी बीड़ी के, और दो-दो डिब्बे सलाई के···"

"क्यों हो, दुकानदार सैप ?—" एक ने बीच में ही बात काट दी—"घोड़ा-मार्का बीड़ी के बंडल नहीं हैं क्या ? और सलाई के दो-दो डिब्बों से क्या करेंगे ? एक-एक ही देना—औनली वन-वन—मैच-बक्सेज !"

डूँगरसिंह ने ध्यानपूर्वक, आपाद-मस्तक, दोनों को देखा—दोनों में से किसी की कमीज में भी न कोई फितड़ी लगी हुई थी, न फुल्ली ही। डूँगरसिंह ने भाँप लिया, कि अभी औडिनरी-सिपौय ही हैं दोनों !

उमादत्त ने डूँगरसिंह के लिए बनाई चाय का गिलास थमाते हुए, खिसियाई-आँखों से डूँगरसिंह की ओर देखा, और फिर सिपाहियों की ओर मुड़कर, बोला—"हजूर, घोड़ा-मार्का बीड़ी तो इस समय नहीं है। बहुत दिनों से लाला भगवतीप्रसाद का ऐजेन्ट ही नहीं आया है, और···"

"और, गुरू, एजेन्ट आए भी, तो घोड़ा-मार्का बीड़ी के बंडल कदापि मत खरीदना ! और अपने उस ऑर्डर को कैन्सल कर देना।"—चाय की एक घूंट भरते हुए, डूँगरसिंह बोला—"बहुत-से लोगों की यह पूछने की इच्छा होगी, कि क्यों ? पहली बात मैं खुद आपसे पूछता हूँ, कि इसके लेबिलों में घोड़े की छाप क्यों रहती है ?"

आस-पास के और लोग तो चौंके ही, दोनों सिपाही भी अटपटा गए। उमादत्त भी उत्सुकतापूर्वक डूँगरसिंह का मुँह देखने लगा। चतुर्भोज का किसनराम[1] मिस्त्री भी वहीं बैठा था। उमादत्त के गल्ले के कुछ कोठों को ठीक करने आया था, और अपनी औजार-थैली एक तरफ रखकर, कटक-की-चहा का रास्ता देख रहा था।

---

१. शूद्रों के नाम के पीछे 'राम' प्रत्यय जोड़ने का चलन है, कुमाऊँ में।

औरों को चुप देखा, तो किसनराम ने ही मुँह खोला—"छाप तो छाप ही होती है, उसका क्या कारण हो सकता है, गुसें ?[1] बस, बंडलों की खूबसूरती के लिए रंगीन छाप मारी हुई रहती है।"

किसनराम की बातों से सिपाहियों के अवसन्न-मन में चेतना लौटने लगी थी, कि डूँगरसिंह हँसते हुए बोला—"अँ, यार किसन मिस्तिरी, तेरा भी जवाब नहीं है !...क्यों रे, बंडलों की खूबसूरती के लिए लकड़ी की बल्लियों-जैसी टाँग-पूँछ वाला जानवर घोडा ही रह गया है क्या दुनिया में ? सिर्फ खूबसूरती का ही सवाल रहता, तो किसी लालपरी-सब्जपरी की छाप नहीं मार सकता था, 'छोटा भाई, जेठा भाई पटेल, गोंदिया, सी० पी०' वाला ? बस, तुम लोगों का तो यह हाल है, कि मुँह से निकलती बात हो गई, और भेल से निकली पाद हो गई ! छाप का कारण पूछना है ? तू ही बता, मिस्तिरी, बिगैर कारण के भी कोई काम दुनिया में होता है ?.. तू खुद अपने कंधे पर अपना औजार-बक्स लटकाए रहता है, तो क्या बिगैर किसी कारण के ही ? या, सिर्फ अपनी खूबसूरती के लिए ?"

अब किसनराम भी, डूँगरसिंह की बातों से अटपटाकर, दोनों सिपाहियों के मुँह की तरफ देखने लगा, तो एक सिपाही बड़ी मुश्किल से बोला—"घोडा तो एक किसम का 'टरेडमार्क' है ! इसीलिए इस बीड़ी के बंडलों को 'घोड़ा-मार्का' कहा जाता है। आई मीन टु सी, ऐ माई क्वैट रैट ?"[2]

अँग्रेजी वाक्य बोल लेने से, थोड़ी रौनक आ गई थी, सिपाही के चेहरे में। मगर, अंदर-ही-अंदर लापता हो गई, जब डूँगरसिंह ने उससे

---

१. गुसाँई का अपभ्रंश । स्वामी के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। २. पहाड़ के जो लोग पलटन में भर्ती होते थे, या जो अफसरों के यहाँ 'बेयरा' होते थे —उन्हें, गलत ही सही, अंग्रेजी बोलने में गर्व अनुभव होता था।

करता है। याने, परेशानियों को, गमों को दूर करके, चैन नशीब कराता है···घोड़े का काम क्या होता है ? दौड़ना—और, समझ लीजिए जरा इस बात को, इस घोड़ा-मार्का बीड़ी का तेज, जहरीला धुँआ ठीक इसी तरह से, जैसे कि घोड़ा दौडता है—इस दिल को दौड़ाता है। दिल के अन्दर के खून को दौड़ाता है। उस समय तो तेज नशे की खुमारी में कुछ पता नहीं चलता, बल्कि एक प्रकार से आनन्द ही आता है, मगर बाद में इस दिल की—जो हमारे कीमती प्राणों की जड़ है—क्या खस्ता हालत होती है, इसे जानने के लिए यहाँ से अलमोड़ा शहर तक जरा किसी घोड़े को ही तेज दौड़ाकर, फिर एक जगह खड़ा करके देख लीजिए, आजमा लीजिए !·· आप लोगों की इनफौरमिशन के लिए, एक कीमती बात और बता दूँ, कि मैदानी शहरों में यह घोड़ा-मार्का बीड़ी उतनी खतरनाक नहीं होती, जितनी कि ऊँची-नीची चढ़ाइयों-उतारों वाली सड़कों वाले इस पहाड़ में !···और उमादत्त गुरू की दुकान में आजकल जो पानसुन्दरी बीड़ी की बिक्री हो रही है, अहा, इस पानसुन्दरी की क्या बात है !···'सुन्दरी'···नाम लेने से ही होठों पर एक मिठास-जैसी आ जाती है। इसके अलावा, यह बीड़ी पहाड़ी लोगों के लिए विशेष-रूप से बनाई गई है, क्योंकि पहाड़ में पान तो होते ही नहीं, और यह बीड़ी पान और तमाखू दोनों का मजा देती है। यही इसके 'टरेड-मार्क' का कारण भी है। इसको पीके देखिए, धुँआ भी आसपास की ओर पान के पत्ते की तरह गोलाई में छूटता है !"

"क्या बात है, हौलदार साहिब, वा, क्या बात है !" दूसरा सिपाही, जो अब तक मौन साधे बैठा था, प्रशंसापूर्ण-स्वर में बोला—"आपकी जानकारी बहुत बढ़ी-चढ़ी है, इसमें शक की गुंजेश बिलकुल नहीं। अच्छा, साहिब, आप कौन-सी बटालिन की शोभा बढाते हैं ?"

इस बार, डूँगरसिंह की बातों से कृतकृत्य उमादत्त ने जबाब दिया—"अरे, हजूर, इनकी तरक्की और बुद्धिमानी की बात क्या पूछते हैं। मैं खुद इस बात की गैरण्टी दे सकता हूँ, कि खुदा-ना-खास्ता

अगर बदकिस्मती से पाँव में कमजोरी नहीं आ जाती, तो सिर्फ दो-तीन सालों में ही ये ठाकुर सैप हौलदार ही बन गए होते !"

"तो क्या आप डिसचारज होके आ गए हैं घर ?" पहले सिपाही ने प्रश्न पूछते हुए, डूँगरसिंह के पसरे-पाँव को बहुत गौर से देखा।

डूँगरसिंह का सारा शरीर आक्रोश से झनझना उठा, पर यह समय उत्तेजित होने का नहीं था, सो गौरवपूर्वक बोला—"डिसचारज तो वो नालायक और बुजदिल सिपाही होते है, भाई साहब, जो अपने देश की आजादी से भी ज्यादा कीमत अपनी चार हड्डियों की समझते है !··· और अपने जिस्म को सही-सलामत रखने के लिए देश के साथ गद्दारी करते हैं। कभी भी बहादुरी और देशभक्ति के साथ नहीं लड़ते है !"

इस प्रकार प्रश्न-कर्ता सिपाही के चेहरे पर एक पर्त काली स्याही की जैसी पोतकर, डूँगरसिंह अपना विवरण देने लगा—"मै तो जब अपनी टरेनिंग की कम्पलीटी कर चुका, तो पूछा गया, कि 'देहरादून में ही रहना पसन्द करोगे, या कश्मीर-फ्रन्ट की जबरजण्ड लड़ाइयों में जान को हथेलियों पर लेकर कूद पडोगे, जबान ?'—यों अपनी जान किसको प्यारी नहीं होती ? मगर, मैंने सोचा, कि देशभक्ति की लड़ाइयों से जान को बचाकर घर कायर और गद्दार सिपाही ही लौटने की कोशिश करते हैं, जिस्म की समस्त हड्डियों को सही-सलामत रखते हुए—सो, कश्मीर-फ्रन्ट की ही घमासान लड़ाई में मेरे पाँव में पठानी-बुलेट घुस गई। बेहोश होने तक तो कबैली पठानों का मुकाबला करने में ही था, मगर होश में आने के बाद देखा, कि अस्पताल में पड़ा हुआ हूँ। हमारे गवर्नर जनरल केप्टन दरबानसिंह जी ने तो मुझको गले से लगा लिया था। तरक्की देने के लिए कंधा थपथपा के भी गए थे, कि 'वेल, डूंगरसिंह, तुमने अपनी बहादुरी का रिकौर्ड कायम कर दिया है।' मगर, मैंने बाद में सोचा, कि पाँव कमजोर हो जाने से अब देश की सेवा करना तो मुश्किल ही है, सो हराम का अन्न खाने से तो अपने घर को चला जाना अच्छा है।"

"फिर आपको तो बहादुरी के लिए पिन्शन मिली होगी ?" बहुत ही विनम्रता के साथ, दूसरे सिपाही ने पूछा ।

"देश के, भारतमाता के लिए कुरबानी करके जहाँ एक बार अमर-शहीदी को हासिल कर लिया, तो चंद रुपल्ली की पिन्शन लेकर, कौन अपनी शान को बट्टा लगाना पसन्द करेगा ? देने को तो सरकार पिन्शन ही क्या, तराई भावर में इनामी-फारम देने को भी तैयार थी—मगर, मैंने कह दिया, कि 'साहब, मैं अपनी कुरबानी की कीमत नही ले सकता' !" डूँगरसिह ने स्वाभिमानपूर्ण स्वर में उत्तर दिया—बारह रुपए महीने की 'डिसएबीलिटी-पेन्शन' मिली है', कहने से अपनी ही इज्जत मिट्टी में मिलती ।

चाय पीकर, चार-चार बंडल पान-सुन्दरी बीडी के, और दो-दो पैकेट सीजर सिगरेट के—साथ में दो-दो सलाई की डिबियाँ भी—लेकर, बहुत ही आदर के साथ, डूँगरसिह को बार-बार 'राम-राम, जै-हिन्द' कहते हुए—दोनों सिपाही चले गए, तो उमादत्त ने डूँगरसिह के लिए एक गिलास चाय और बनाई—"शाबाश डूँगर, ठाकुर ! हकीकत में तुम पलटन से इन्सान बनके आए हो, यार जजमान !"

चाय पीकर, थोकदार के मकान की ओर बढते हुए, डूँगरसिह बोला—"गुरू, दुकानदारी से भी पहले ग्राहकों से बात करना और नहीं बिकने वाले सौदे को बेचने का हुनर सीखना—ये दोनों चीजें बहुत जरूरी हैं । अब देखना, दो-चार दिन में ही, थोकदार चचाजी वाले मकान के आगे की दो दरों में—मैं खुद अपनी दुकानें खोलने वाला हूँ ।"

"खोलो, यार, ठाकुर सैप ! तुम जरूर दुकान खोलो, और तुम्हारी दुकान चलेगी भी, इसकी गैरन्टी मैं खुद दे सकता हूँ । बस, चनरसिह से टक्कर अगर कोई ले सकता है दुकानदारी में, तो तुम ले सकते हो !"—उमादत्त, नारियल के पनौटे वाली चिलम हाथ में लिए-लिए, खड़ा हो गया—"क्योंकि, लोहे को गरम तो लकड़ी के कोयलों से भी किया जा सकता है, मगर उसको काटने या चौड़ा-तीखा करने के लिए

तो लोहे की ही जरूरत होती है ! मेरा क्या है, यार डूँगर ? धेली-रुपए की बँधी ग्राहकी वाला हूँ, हाथ-घिसाई तो कैसे-न-कैसे निकल ही आएगी, इस बात की गैरन्टी समझता हूँ। एक घोड़िया-छप्पर पीछे खड़ा कर रखा है ?, ईश्वरदत्त-जैसे चार सगे-बिरादर घोड़िए तो टिकेंगे ही, और······"

"ठहरो हो, गुरू !"—डूँगरसिह, अपनी ही जगह पर मुड़ते हुए, बोला—"ईश्वरदत्त की याद तुमने अच्छी दिलाई। आज या कल में खच्चरों की खेप लेकर इधर आए, तो उसको मेरी पैलागन कहते हुए कह देना, कि सौबार या मंगलवार को मुझ से मुलाकाती करके जाए। जरूर-से-जरूर। और, तू आजकल कहाँ काम कर रहा है, किसन मिस्तिरी ?"

"आज जरा उमादज्यू के ही कोठे ठीक करने है, उसके बाद दो हफ्ते तक फिरी[1] रहूँगा।"—डूँगरसिंह के शानदार व्यक्तित्व से विस्मयाभिभूत किसनराम बोला। उसे आश्चर्य हो रहा था, कि क्या यह वही डूँगरसिह है, जो सात-आठ महीने पहले तक बन-खेत जाने वाली जवान डुमुणियों तक को मुरली सुनाया करता था, जोड़ मारा करता था, कि 'सरूली, तेरी कमरैं[2] धोती करिले जरा सारि[3]······'

"फिर ऐसा करना, किसन, कि सौबार-मंगल-बुद्ध को तीन दिन—जरा मेरी दुकान में हाथ मार देना।"—कहता हुआ, डूँगरसिंह थोकदार के मकान की ओर मुड़ गया।

---

१. अंग्रेजी 'फ्री' का अपभ्रंश। २. पहाड़ी (कुमाऊँनी) बोली में हिन्दी का दीर्घ ह्रस्व हो जाता है। कमर की को 'कमरकि' कहा जाता है, मगर सुनने में वह 'कमरैं' सुनाई पड़ता है। ३. सरूली, अपनी धोती, कमर के पास, जरा कसकर बाँध ले।

तो लोहे की
रुपए की बँधी
आएगी, इस बात
कर रखा है ?, ईश्
और······"

"ठहरो हो, गुरु
बोला—"ईश्वरदत्त
खच्चरों की खेप लेकर
कह देना, कि सौबा
जरूर-से-जरूर। औ
मिस्तिरी ?"

"आज जरा उमाद
नक फिरी रहूँगा।"—
किसनराम बोला। उसे
है, जो सात-आठ महीने
तक को मुरली सुनाय
कमरे धोती करि

"फिर ऐसा
जरा मेरी दुका
के मकान

गाँव के मकान की गोठ में रहती थी। भैंसों के अलावा, घर की गोठ में ही बाँधा जाता था। नए मकान की कहलाती थी, और गाँव वाले पुराने मकान की

रहा था, कि मकानों की बनावट में भी मनुष्य ा है। जब थोकदार का नया मकान तैयार हो ांव में ही था। मगर, उसके सपनों में भी यह थी, कि इसी मकान की बनावट एक दिन मेरे ान बनेगी ?

काम इसी किसन मिस्त्री के हाथों मे था। और, चार दिन में, डूँगरसिंह की दुकान का लकड़ी का आदमी के हाथों में बड़ा जस होता है। किसन ह के लिए, बहुत शकुनियाँ सिद्ध हो रहे हैं। तलुवा ल्वार के हाथ में था।

हमेशा अहसानमन्द रहेगा, क्योंकि उसने पिछ- रवाजा दुकान की दाँई दर वाली दीवार के ा है और, इस दरवाजे से, डूँगरसिंह गोठ में बड़ी आसानी के साथ जाकर, किसी से भी किसी किस्म की र काम कर सकता है। घर वालों की, या किसी दूसरे बचावट बनी ही रहेगी।

० ० ०

गल की रात को ही डूँगरसिंह से अपना घर—बल्कि खिमुली-मुली भौजियों का घर कहना ही ज्यादा ठीक रहेगा—छूट गया था।

शनिश्चर से, याने घर पहुँचने के दिन की रात से, रोटियाँ खाते-खाते मन अघा-जैसा गया था, और भात खाने की इच्छा बार-बार जागृत होती थी। मगर, घुटने से नीचे सूखी टाँग की हालत देखकर जब अपनी ही आँखों में बादल-जैसे घिर आते हैं, तो दूसरों की दृष्टि बार-बार पड़ने

से मन कैसा पाथर पर गिरे काँच-सा, टुकड़ों में गिनने लायक हो जाएगा ? घर पहुँचने के दिन ही भात खाते हुए, डूँगरसिंह के मन में यह बात आ गई थी, कि कम-से-कम जैता को तो अपनी इस टूटी टाँग के दर्शन, फिलहाल बार-बार नहीं ही कराने चाहिए ! बाद में, मंगल के दिन से, एक यह बात भी जरूर आ गई थी, इसी मन में, कि एक समय वह भी जरूर आएगा, कि इसी पाँव की मालिश खास जैता के हाथों से कराई जाए। मगर, आजकल तो सोते समय भी फुल पैन्ट पहने ही दिन काटने पड़ रहे हैं !

लछमा से भी डूँगरसिंह ने बुधवार को ही कह दिया था, कि 'ठुलि भौजी, एक कष्ट तुमको मेरे लिए करना ही पड़ेगा। फौजी सिविल सर्जनों ने कुछ समय तक भात नहीं खाने का ऑर्डर दिया हुआ है, इसलिए चार रोटियाँ ही सेकनी पड़ेंगी मेरे लिए तो !'—यों, डूँगरसिंह को शनिश्चर के दिन का भात भी याद आता था, मगर जहाँ जैता को एकवसना देखने मे सुख मिलता था, वहीं स्वयं एक धोती पहनने में भी दुख ही था !

भला इसमे कौन-से कष्ट की बात थी, जो लछमा कुछ ऐतराज करती ? यह तो डूँगरसिंह की ही ल्याकती थी कि जो उसने ऐसी मामूली बात को भी ऐसी नरमाई के साथ, लछमा को आदर देते हुए, कहा।

पटाँगण में पहुँचा, डूँगरसिंह, तो आस-पास जम्बू[१] की खुशबू मँडरा रही थी। अहा, गोबरसिंह ने दाल छौंकी होगी ? मसूर की दाल होगी, गाढ़ी और जम्बू की छौंक—डूँगरसिंह के होंठों में एक तरलता-जैसी आ गई।

अपने वाले कमरे में, जिसमें अब रमुवा, सबलुवा, पिरमुवा और लछमियाँ भी सोने लग गए थे, पहुँचकर—डूँगरसिंह ने सन्दूक खोला।

---

१. एक तिब्बती घास, जो दाल-शाक छौंकने के लिए काम में आती है, और बहुत स्वादपूर्ण-महक छोड़ती है।

और, लछमा के रोटियाँ लेकर आने से पहले ही, धोती को पैर के अँगूठों तक लम्बी करके पहन लिया।

लछमा ने डूँगरसिंह को आते देख लिया था, सो थाली में रोटियाँ लेकर, उसके कमरे मे पहुँची—"डूँगरसिंह, खाना खालो।"

"आज तो, ठुलि भौजी, एक गास भात खाने की इच्छा हो रही है।" ससकोच डूँगरसिंह बोला।

"अरे, तो किसने कहा, कि भात-दाल मत खाओ? सिर्फ रोटियाँ खाने से तो पेट में कब्जियत-जैसी हो जाती है। और, तबियत में एक प्रकार की सुस्ती और खुश्की जैसी रहती है।" लछमा थाली को जमीन पर से उठाते हुए बोली—"बस, सौरज्यू आते ही होंगे। तुमने धोती पहन ही ली है, और रमुवा के बौज्यू ने रसोई तैयार कर रखी है। और, आज दाल भी अच्छी बनी हुई है, मास-मसूर और अरहर की मिलावटी है।"

० ० ०

थोड़ी ही देर में थोकदार आ गए, खेतों से वापस। जैंता भी आ गई थी। पिछवाड़े के द्वार की देली के पास, एक कोने में उसे भी बैठने के लिए कह दिया था, लछमा ने।

भात खाते-खाते, कई बार जैंता की ओर—पानी पीने के उपक्रम के सहारे—अपनी आँखों को उठाया डूँगरसिंह ने, मगर आज जैंता कुछ ऐसी सिमटी-सिमटी बैठी थी, कि आँखों को कोई लाभ नही हो रहा था।

"ले, हो डूँगर, दाल और छोड़ थाली में।"—कहते हुए, गोबरसिंह ने दाल का डाड़ू डूँगरसिंह की ओर बढाया, मगर तभी डूँगरसिंह के कानों में पिरमुवा ने सड़ी हुई जम्बू की जैसी छोंक लगाई—"बौज्यू, जरा डुँगरिका की बाँई टाँग तो देखो—एकदम उदिया लूले की जैसी दिखाई दे रही है।"

उदिया पत्थर खाणी के एक ब्राह्मण का बेटा था। उसके दोनों पाँव लूले थे, और वह कुछ महीने धौलछीना के पड़ाव में माँग-माँगकर, पेट पालता था, कुछ महीने बाड़ेछीना के पड़ाव में। हालाँकि, धौलछीना

वाड़ेछीना से सिर्फ पाँच मील की दूरी पर था, मगर उदिया को वहाँ पहुँचने के लिए एक रात सौंलखेत गजाधर की दुकान के बाहर बितानी पड़ती थी, जो धौलछीना से मील-सवा मील दूर था, और दूसरी सुपै के मधनसिंह् की दुकान के छप्पर में, जो सौंलखेत से डेढ़ मील था।

पिरमुवा की उपमा से डूँगरसिंह् के हाथ का अन्न हाथ, मुँह का मुँह में ही रह गया। और, मन-ही-मन, उसको एक दुसह पीड़ा व्याप गई—डुँगरिया यह भात-खवाई नहीं, बल्कि गू-खवाई हो गई है!···और, आक्रोश के कारण, उसका चेहरा एकदम तमतमा गया। खिमुली-भिमुली भौजियों की रसोई होती, तो डूँगरसिंह थाली को उठाकर बाहर पटाँगण में फेंक देता। और, पिरमुवा की जगह, दिवान होता, तो ऐसा मारता जूठे ही हाथ से थप्पड़, कि कान में बहुत दिनों तक आवाज-जैसी गूँजती रहती। मगर, पिरमुवा लछमा का बेटा है, और घर थोकदार का है। लछमा यदि डुँगरसिंह के लिए मैया पार्वती-जैसी दाहिनी हो रही है, तो थोकदार भी उसके लिए शिवजी से कुछ कम सिद्ध नहीं हो रहे हैं।

लछमा डूँगरसिंह के चेहरे की ताम्रवर्ण-तिलमिलाहट को भाँप गई थी। पिरमुवा की पीठ पर हलका-सा थप्पड़ मारते हुए, बहुत अधिक कुपित-सी बोली—"चुप रह, रे छोरा! कही अपने से बड़े डुँगरिका-जैसों से ऐसी ओछी बात कहते हैं?"

लछमा के थप्पड़ से पिरमुवा के कंठ में उतरता ग्रास फिर मुँह में वापस आ गया—उसे मुँह से हथेली पर निकालते हुए, पिरमुवा एक खिमियाई-सी तटस्थता के साथ बोला—"मैंने कोई डुँगरिया की मिसाल थोड़ी दी थी, उदिया लूले से? मैं कोई पागल थोड़े हूँ, इजा! मै क्या इतना भी नही समझता, कि डुँगरिका और उदिया लूले में धरती-आसमान का अंतर है? उदिया लूले के तो दोनों पाँव भी लूले है, और दोनों हाथ भी—जबकि हमारे डुँगरिका की सिर्फ एक ही टाँग टूटी हुई है—मगर, मैं एक बात पूछना चाहता हूँ, इजा?"

लछमा तो पिरमुवा को दुबारा डाँटकर, चुप करा देना चाहती थी,

मगर मुँह से 'क्या ?' निकल पड़ा ।

"उदिया लूला जब भी हमारे पटाँगण में आता था, तू तमले में वहीं भात-दाल—हम सब लोगों का बचा हुआ जूठा भात—दे देती थी । अगर, कहीं पलटन से डुँगरिका भी दोनों पाँवो से लूले होके आते, तो तू क्या उन्हें पटाँगण मे ही···"

"चुप, छोरा ! दुष्ट कहीं का !" कहते हुए, लछमा ने अब के जरा जोर से ही झापड़ दिया । थोकदार भी चूल्हे से ही बोले—"एक झापड़ और मार । मुख लग गया है बहुत, हरामी छोरा !"

लछमा ने एक झापड़ और मारा, तो पिरमुवा रोते हुए, भात की थाली छोड़कर, बाहर को यह कहते हुए चला गया—"इस इजा को मारो, बूबू, एक झापड़ !···इस समय मुझको मारने वाली बनी हुई है, मगर जिस समय डुँगरिका बाहर गए हुए रहते हैं, तो खुद यही हम लोगों से पूछती है, कि चेलो, तुम्हारे लुलका[1] कहाँ गए है ?"

डूँगरसिंह का मन एकदम कलपता ही रह गया, कि, काश, पिरमुवा के साथ वह भी बाहर को जा सकता !

---

१. लूले चाचा ।

२२

युवक की रात थी, जरा सुख से ही कट जाती, तो कितना अच्छा था ? मगर, डूँगरसिंह का भी एक ग्रह नीचा, एक ऊँचा होता रहता है। ऊँचे ग्रह के प्रभाव से जहाँ सोचा हुआ कार्य सिद्ध होता है, वहीं नीचे ग्रह के राहु-केतु एक-न-एक उपद्रव ऐसा कर देते है, कि कलेजे में किर-मड़ के वही पुराने पंच-मुखी काँटे, किसन मिस्त्री की आरी की तरह, नीचे-ऊपर सरकने लगते है—और, ऐसा लगता है, कि बाँई टाँग की पिंडली में घुसे हुए बारूद की बुलेट के छर्रे सारे शरीर के रक्त-प्रवाह को कुंठित-लुंठित कर रहे हैं !···और, अजाने ही, हरिद्वार-बद्री-केदार-ऋषीकेश आदि तीर्थ-स्थानों का स्मरण हो आता है। और मुँह से, अनायास ही, 'नमोनारायण-नमोनारायण'-जैसी निकलने लगती है।

नमोनारायण-नमोनारयण —

नमो भगवते बासुदेवाय:—

अल्लख—

शिव शंकर—

'दुख में सुमिरन सब करें' कह रखा है। मन दुखी है, तन दुखी है, सो—लछमा के कहने के मुताबिक, चारों तरफ से नहीं सही—दोनों तरफ से तो च्यास्स-जैसी हो ही रही है, और डूँगरसिंह को ईश्वर के कई नाम इस समय याद आ रहे हैं। साथ-ही-साथ, दो पाटों की टक्कर से पिसने वाला गेहूँ का दाना भी अपनी सुधि दिला देता है।

पिरमुवा लछमा का तीसरा बेटा था।

और, इस समय डूँगरसिंह के ही कमरे में सोया हुआ था, तो डूँगरसिंह को ऐसा अनुभव हो रहा था, कि छाती में तिरशूल[1]-जैसा घुसा हुआ है।

दीया बुझे समय बीत गया, मगर, डूँगरसिंह की आँखों में एक अंतर्दाही-रोशनी की चिनगारियाँ-जैसी चिलमिला रही थीं। और, उस अँधियारपट्ट में भी उसे पिरमुवा की सूरत औरों से अलग दिखाई दे रही थी। और डूँगरसिंह के पेट में—(पेट में ही, या दिल में, यह डूँगरसिंह ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहा था)—एक भयंकर, किन्तु अमूर्त-अप्रत्यक्ष शूल[2]-जैसा उठ रहा था—और ऐसा अनुभव हो रहा था, जैसे मिलावटी दाल में से मसूर के दाने अलग हो रहे हों, और पेट के अंदर-ही-अंदर, उनमें एकदम सड़ी हुई जम्बू की जैसी छौंक लग रही हो—छ्याँ-आँ-आँ-और आसपास सड़ी जम्बू की सड़ांध-भरी बदबू मँडरा रही हो।

अँधेरे में ही, डूँगरसिंह ने पिरमुवा की ओर पीठ फेरकर सोने का प्रयास किया, तो बाँई टाँग नीचे आ गई, और फिर एक बार च्यास्स्-जैसी हुई—और ऐसा लगा, कि भात का एक-एक चावल किरमड के पंचमुखिया-काँटों की जगह ले रहा है—और डूँगरसिंह का मन हुआ, वह जोर-जोर से चीख उठे—चीत्कार कर उठे—और चावल-दाल का

---

१. त्रिशूल। २. पेट का एक अकस्मात ही होने वाला भीषण रोग। इसमें मनुष्य को पेट में काँटे-जैसे चुभते हुए लगते हैं।

एक-एक दाना, सड़ी जम्बू की छौंक के साथ, पेट के अन्दर से, दिल के अंदर से—सारे शरीर के अंदर से दूर छटक जाए—थप्पड़ खाए पिरमुवा-जैसा, कमरे के बाहर चला जाए !

मगर, उलटे, चावल-दाल के दाने बारूद से बने बुलेट-छर्रों की तरह पेट और दिल के अंदर-ही-अंदर लुल्ल-लुल्ल-लुल्ल-लुल्ल चक्कर काटने लगे। और, डूँगरसिंह का हाथ सिरहाने-धरे चमड़े के खोल वाले चाकू पर चला गया। एक बीभत्स-प्रतिशोधात्मक कल्पना से, उसका कलेजा वायु-बवंडर में फँसे फल्यांठ-पात की तरह काँप उठा। ऐसी मर्म-रौंदी-व्यथा सहने से, जरा दिल मजबूत करके, पिरमुवा साले को 'लुलका-लुलका' कहने वाली, उदिया लूले की उपमा देने वाली लपलपिया को ही क्यों न काट दिया जाए ?—इसके अलावा, गोबरसिंह और लछमा के उन अंगों को काट देने की विचित्र कल्पना भी डूँगरसिंह के मन में आई, जिनके मिलान से पिरमुवा का निर्माण हुआ था !

चाकू हाथ में लिए हुए, डूँगरसिंह साँप-जैसा पिरमुवा की ओर सरका—मन में एक आशंका उपजी, कि अगर कहीं सचमुच पिरमुवा की जीभ काट डाली उसने, तो फिर क्या होगा ?

परिणाम की कल्पना से डूँगरसिंह रेंगता-रेंगता रुक गया, कि अरे, क्या इतने ही कच्चे मन से वह अपनी योजना पूरी कर सकेगा ?—कदापि नहीं !

मगर, इस कलेजे का क्या करे डूँगरसिंह, जिसमें लोगों की आक्षेप-पूर्ण-दृष्टि किरमड़ के पंचमुखिया-काँटे-जैसी नीचे-ऊपर, किसन मिस्त्री की आरी-जैसी, सरकने लगती है, और आँखों से अंतर्दाह का बुरादा-जैसा नीचे गिरने लगता है !······इस काँटेदार-कलेजे के अलावा, इस कीड़े पड़े दाड़िमदाने-जैसे दिल का भी किस हाँडी में चूक[1] डाले डूँगर-सिंह, जिसमें भात-दाल का एक-एक दाना पिरमुवा साले की त्रिशूलमुखी

---

१. अचार।

सूरत बना-बनाकर, छाती की चौखट में, किरमड़ के काँटों की कीलें ठोक-ठोककर, उदिया लूले की अतर्दाही-उपमा से अलंकृत, एक प्राण-घाती-तसवीर-जैसी फिट करता है ?

मगर, जरा शांति के साथ पीछे को सरक आया डूँगरसिंह, तो उसे यह सोचकर, एक तोपद-सान्त्वना-जैसी मिली, कि अरे, डूँगरसिंह के इसी शरीर में काँटेदार-कलेजे और दाडिम-दाने-जैसे दिल से बढकर भी एक चीज है ! और वह है, डूँगरसिंह का आलीशान दिमाग—जो पहले ही बहुत बारीक मशीनरी वाला था, कि डूँगरसिंह का बनाया एक-एक जोड़[1] औरतों की जीभ में आँवले के स्वाद-जैसा बस जाता था, कि 'दैण हाथ रुमाल म्यारा, बौ हाथ में ऐन—यसे त रँगिल सुवा तुकें हैरी चैन !'[2]—

वैसे एक संचारी-विचार यह भी आया, कि जोड़ों के शब्द भले ही दिमाग के द्वारा छंदोबद्ध किए गए हों, मगर भाव-पक्ष तो उनका हमेशा दिल के ही अधीन रहता था।

मगर, एक इसी सचारी-विचार से दिमाग की यह खूबी भी सिद्ध हो गई, कि शब्दों को छदोबद्ध करने के लिए जिस मात्रा-संतुलन की आवश्यकता होती है, वह दिमाग के ही वश की विद्या है, दिल के वश की नहीं। जैसे, कि डूँगरसिंह के दिल की तमन्नाओं को जोड़ों का भाव-पक्ष समझ लिया जाए—आँखों के सपनों से अलंकारों का काम ले लिया जाए—मगर, इन तमन्नाओं, इन सपनों को छंदोबद्ध करना (मात्रा के हिसाब से ताल-संगीतपूर्ण जोड़ों में बदलना) तो दिमाग के ही अधि-कार में रहना चाहिए ?

---

१. 'लोकगीतों का (कुमाउँनी लोकगीतों का) एक छंद-विशेष।
२. मेरे दाहिने हाथ में रुमाल है, और बाएँ हाथ में आईना—बस, ऐसा ही रँगीला प्रियतम तो तू चाहती है !' कुमाऊँ में यह प्रथा है, कि शादी के लिए जाते समय वर के हाथों में रुमाल-आईना रहता है।

—और जहाँ तक लोगों से बातचीत करने और भविष्य के लिए सड़क बनाने का सवाल था, डूँगरसिंह ने दिमाग से काम लिया भी—मगर, जब-जब टूटी टाँग पर किसी की काग-दृष्टि पड़ी, जैसी कि आज पिरमुवा ही द्वारा, तो डूँगरसिंह एक बहुत बड़ी गलती यह कर बैठा, कि भाव-पक्ष और छद-पक्ष दोनो दिल को ही सौंप दिए। और, नतीजा यह हुआ, कि मात्राओं में गडबड़ी हो गई, और दिल की तमन्नाओं, आँखों के सपनों का संतुलन ख़तरे में पड़ गया!···

(एक बात सोचने की यह भी है, कि अगर थोकदार ने गारा-पत्थर और लकड़ी—इन दोनों का काम किसन मिस्त्री के ही हाथों में दे दिया होता, तो वह दुकान की दाँईं दर के एकदम निकट वैसा दरवाजा कहाँ बना पाता ?—जिसको देखते ही, डूँगरसिंह को ऐसा लगा था, कि यह मेरे ही लिए बनाया गया है!···)

दिल की जगह दिमाग का सहारा लेने से, डूँगरसिंह का मन एकदम शांत हो गया और पिरमुवा की त्रिशूलमुखी-सूरत कमरे के घुप्प-अँधियारपट्ट में विलीन हो गई—और, डूँगरसिंह की आँखों में चक्कर काटती अंतर्दाही-चिनगारियाँ भी गायब हो गईं—और छाती की चौखट में से उदिया लूले की उपमा की तसवीर, (किरमड़ के काँटों की कीलों-सहित उखड़कर) पहाड़ की चुटिया पकड़कर झकझोरने वाली प्रचड हवा में फल्याँठ-पात-सी उड़कर, अदृश्य हो गई···

···और, छाती के खाली चौखटे में एक नई तसवीर कल्पना-कीलों से जड़ी गई। एक कमरा है। (शायद, थोकदार के नए मकान का कोई कमरा है।) और उसमें यों ही, आज रात की जैसी, घुप्प अँधियारपट्ट छाई हुई है—उस अँधियारपट्ट में डूँगरसिंह की आँखों में एक अंतर्ज्योतित-[1] रोशनी की चिनगारियाँ—भात-दाल के कमनीय-कणों के आकार की—झिलमिल-झिलमिल चक्कर काट रही है, और भात-दाल के दानों-जैसे

१. अंदर-ही-अंदर फैलती हुई।

ज्योतिर्लिगों से, इस अँधियारपट्ट के बीच से, एक सूरत उभर रही है—पि-र-मु-वा-सा-ले···एक बार तो कुछ ऐसा ही संदेह डूंगरसिंह को हो रहा है, और उसका हाथ चमड़े के खोल वाले चाकू को कसकर पकड़ रहा है—मगर, दूसरे ही क्षण, छाती की चौखट हिलती है, और (पि-र-मु-वा-सा-ले की लम्बी त्रिशूलमुखी सूरत की जगह) एक चमेली की कली-जैसी छोटी-सी-सूरत बनती है···

और, दिल की तमन्नाओं और आँखों के सपनों की मात्राएँ बराबरी पर आ जाती है—भाव-पक्ष दिल में से, और छंद-पक्ष दिमाग में से निकलता है। और एक नया जोड़ तैयार होता है, जिसका मतलब होता है—एक दिन वह भी जरूर-जरूर आएगा, जब कमरे में ऐसी ही घुप्प अँधियारपट्ट होगी—मगर, न पिरमुवा साला होगा, न उसकी अगल-बगल सोए हुए रमुवा-सबलुवा-लछमियाँ होंगे। बल्कि, सिर्फ एक बारीक धोती पहने हुए (बल्कि जहाँ तक संभव हो सके, बिना धोती की ही) जैता होगी—यानी चमेली की कली की छोटी-सी सूरत होगी—और, डूंगरसिंह की छाती की चौखट होगी।

—और, चमड़े की खोल वाला चाकू यथा-स्थान सिरहाने रखकर, डूंगरसिंह चुपचाप सो गया।

२३

शनिश्चर की भोर पूरी धौलछीना में रमुवा के मिडिल-फाइनल के रिजल्ट की धूम रही।

वैसे तो धौलछीना में अखबार पढ़ने के शौकीन कई थे, मगर चार-पाँच विशेष शौकीन थे। एक तो सब से ऊपरी कोने की दुकान वाला चनरसिंह था, दूसरा पड़ाव की सबसे पहली दुकान वाला उमादत्त। तीसरे हेडमास्टर मोतीराम थे, चौथा स्थान पोस्टमास्टर जयदत्त का था। पाँचवे बिजेसिंह की तो यह हालत थी, कि चनरसिंह की बगल का दुकानदार होने के नाते, हर ताजा खबर की जानकारी हासिल करना जरूरी हो गया था। यह बात दूसरी थी, कि जब तक बिजेसिंह किसी बात की जानकारी हासिल कर पाता था, तब तक चनरसिंह तत्सम्बन्धी जानकारी का अपने लिए उपयोग भी कर लेता था!

यों, धौलछीना में एक बिजेसिंह ही ऐसा था, कि जिसने दो-दो अखबार लगा रखे थे, एक 'दैनिक वीर अर्जुन' और दूसरा 'दैनिक

हिन्दुस्तान'—इनके अलावा 'साप्ताहिक जनयुग' भी उसके पास अकसर पहुँच जाया करता था, जब अलमोड़ा का कामरेड सोवियत भूमि पाँडे उस तरफ निकलता था। उसका पूरा नाम तो था, विपिनचन्द्र पाँडे। मगर, लोगो ने उसका नाम सोवियत भूमि पाँडे रख दिया था, क्योकि वह 'सोवियत भूमि' को 'दुनिया का सबसे महान् पत्र' कहकर प्रचारित करता और बेचता था। कामरेड की पदवी उसे 'जनयुग' की एजेण्टी के उपलक्ष मे, अलमोड़ा के कांग्रेस लीडर न्यारेलाल ने दे रखी थी।

ओ हो, बातों को भी हमेशा वसंत-ऋतु के जैसे पात-पर-पात फूटते रहते हैं। कहाँ रमुवा की बात थी, चनरसिह, उमादत्त, पोस्टमास्टर, हेडमास्टरों से होते हुए विजेसिह तक पहुँची थी, और कहाँ बीच में कामरेड सोवियत भूमि पाँडे और कांग्रेस-लीडर न्यारेलाल की टाँग आ गई। खैर, वाहर फटे हुए पत्तों को डाली के अंदर तो घुसेड़ा नही जा सकता?—मगर, बहुत ज्यादा रबर की गुलेल-जैसी नही तान करके, चार अक्षरों में इतना ही कहकर (बिजेसिह की बात को भी बीच में ही लगे-हाथों निपटा के) रमुवा के रिजल्ट के खुलासे पर पहुँच जाना ठीक रहेगा, कि जहाँ कामरेड सोवियत भूमि पाँडे (दुनिया और हिन्दुस्तान के दो महान् पत्रों की एजण्टी के बावजूद) साक्षात् सर्वहारा बने, पेट पालने के लिए भटकते हुए, बिनोबा के टक्कर की पद-यात्रा कर रहा था—वहाँ आड़ी-माँग वाली बुलबुलों के ऊपर, तूफान की लपेट में आकर बीच समुद्र में उलट रही नाव-जैसी, सिर्फ एक गांधी टोपी पहनकर—न्यारेलाल हजारों का वारा-न्यारा कर रहे थे। और, सिर की शोभा तो, खैर, बढ़ी ही हुई थी, इसके अलावा मान-गुमान भी (खासकर, गर्ल-स्कूलों की लड़कियों—मास्टरनियों और नारायण तेवाड़ी देवालय की हुड़क्यानियों को छेड़ने की दिशा में, 'महिलाओं, आगे बढ़ो, देश की मिट्टी तुम्हें पुकार रही है!' के उद्बोधन के साथ अपने आगे बढ़ाने की दिशा में) इतना बढ़ा हुआ था, कि कामरेड सोवियत भूमि पाँडे अपने भाषणों में (जो बिना किसी निश्चित तिथि-स्थान के होते ही रहते थे) कहा करता था, कि

'अलमोड़ा शहर में आजकल दो नादिया (साँड) फिर रहे हैं—एक आदि कम्युनिस्ट भगवान् शंकर का, और दूसरा—हमारे परम पूज्य बापू महात्मा गाधीजो का !'···

बिजेसिंह के बारे में इस समय वैसे कुछ खास कहने की गुजाइश थी ही नहीं, मगर, अखबारों की शौकीनी के सिलसिले में, जब जिक्र आ ही गया है, तो इतना और भी कहने मे कुछ विशेष समय तो लगता नहीं, कि 'दैनिक वीर-अर्जुन', 'दैनिक हिन्दुस्तान' और 'साप्ताहिक जनयुग'—इन तीनों को पढ़ने से बिजेसिंह के मन में कुछ ऐसी प्रतिक्रिया होती थी, कि 'एम० एल० ए०' के चुनाव में जहाँ वह अपनी, अपने दोस्तों की, और परिवार वालों की सभी 'वोटें' दीपक-मार्का बक्से में डालता-डलवाता था, वहाँ 'एम० पी०' के चुनाव के समय दो बैलों की जोड़ी वाले 'बैल-मार्का संदूक' में, और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनावों के समय हँसिया-हथौड़ा वालों के बक्से में ! तीन घोड़ों पर एक साथ सवारी करने का एक बुरा नतीजा यह भी निकला, कि बिजेसिंह राजनीति और दुकानदारी—दोनों में चनरसिंह से पीछे रह गया।

रमुवा के रिजल्ट की चर्चा शुरू करते हुए, इतना बता देने में कोई हर्ज नहीं है, कि वह थर्ड डिवीजन में पास हो गया था। वैसे वह पास हो गया था, इतनी जानकारी तो शुरू के वाक्य से ही दी जा चुकी है, कि 'शनिश्चर की भोर पूरी धौलछीना मे रमुवा के मिडिल-फाइनल के रिजल्ट की धूम रही।'

o o o

हुआ यह, कि जब सबेरे हलकारे उमादत्त की दुकान में पहला अखबार 'दैनिक हिन्दुस्तान' डाल गए, तो रमुवा के अलावा जो और दो मिडिल फाइनल के विद्यार्थी—भबेन्दरसिंह और गोपालसिंह थे—एक बिजेसिंह का बड़ा बेटा और दूसरा मानसिंह का—रोज की तरह, अख़बार देखने गए हुए थे। और, परीक्षा-फल वाले पेजों को खोलकर, 'रिजल्ट आ गया, रिजल्ट आ गया !' चिल्ला रहे थे।

रमुवा के कानों में 'रिजल्ट आ गया !' शब्द पड़ने थे, कि उसने फुर्ती से गाय-बकरियो को गोठ से बाहर निकाला, और—पीछे के रास्ते हाँक-हाँककर—बमरणधार पहुँचकर ही संतोप की साँस ली—क्योंकि, दो साल रिजल्ट के पेजों वाले समाचार-पत्र के पास खड़ा रहकर, लोगों की निन्दापूर्ण-चर्चाओं के खतरे से परिचित हो चुका था।

हालाँकि, लछमा हमेशा ही उसका पक्ष लेती थी, कि 'अरे, हजारों अंक डेढ़ कागज में छाप रखे है, एक-दो छूट भी जाएँ, तो किसको पता चलने वाला है ? रमुवा के बौज्यू कह रहे हैं, कि रौलम्बर बीस हजार, चार सौ-सत्तासि भी है, अट्ठासि भी है, और नव्वे-इकानब्बे भी है—बाद में तिरानब्बे-चौरानब्बे भी है—फिर एक मेरे रमुवा का ही बयानब्बे रौलम्बर कहाँ गया ? मैं कहती हूँ, हे परमेश्वर, जिस तरह से इस अखबार के अंक छापने वालों ने मेरे रमुवा का बयानब्बे रौलम्बर, बेई-मानी और अत्याचारी के साथ, लापता कर दिया है, ऐसे ही—मुझ दुखियारी माता की पुकार सुनता हो, परमेश्वर !—इन अखबार वालों के कुटुम्बों की दो-चार ऊपर को बढती हुई संतानों को नेस्त-नाबूद कर देना !—हो गया हो, सौरज्यू, अब बहुत नटौरे मत मारो छोकरे के सिर पर। वैसे ही रात-भर जागरण ले-लेके पढ़ने से मक्खियाँ मारने से भी लाचार-जैसा हो गया था, ऊपर से प्राणघाती-चोट बैरी अखबार के अंक छापने वालों ने मारी। अरे, मेरी समझ में नहीं आ रहा है, कि जहाँ दुश्मनों ने अखबार के पेजों में मसूर की दाल-जैसी भर दी थी, दुनिया-भर के लोगों की संतानों के रौलम्बरों से—वहाँ एक मेरे ही रमुवा का बयानब्बे रौलम्बर छापने में क्या उनके हाथ टूट जाते ?···और उनके भी ऊपर से, आप उसको खँखारते हुए गले से बाण-जैसे बचन मार रहे हैं !—'मेरे बेटे ने तो अपना फरज पूरा कर दिया, रौलम्बरों को छापने वालों का पालने वाला मर गया, तो कोई क्या करे ? फिर, सौरज्यू आपको शान्ति के साथ यह भी तो सोचना चाहिए, कि एक साल के लिए और नई किताबों को खरीदने से बचत हो गई !'

गोवरसिंह कभी मुँह खोलने की कोशिश करता, तो लछमा उसके मुँह में रुमाल-जैसा भर देती थी—"अरे, पहले अपनी शकल देखो, फिर मेरे रमुवा चेले को ऐन[1] दिखलाना ! दर्जा दो से आगे कभी देखा-सुना भी है, कि स्कूल क्या चीज होती है ?—यह खुशकिस्मती तो समझते नहीं, कि बेटा मिडिल-फैनल तक की ऊँची पढ़ाई-लिखाई तक पहुँच गया है—उल्टे लगे बदहजमी की जैसी पाद मारने, कि 'फेल हो करके नाम डुबा दिया !'—यह ध्यान नहीं आया, कि अपनी नाक तो दर्जा दो ही में कटा ली थी ! मगर, बेटा दर्जा छै तक की ऊँची इमतिहानबाजियों को पार करके, मिडिल-फैनल तक की हाई-कलास इस्टूडण्टी तक पहुँच गया है !—अरे, बढ़ती हुई उमर है, इस साल नहीं तो अगले साल आगे बढ जाएगा ।"

० ० ०

बमणधार पहुँच के रमुवा, गाय-बकरियों को चट्टान से नीचे ढलान की ओर लगाकर, ऊँचे टीले पर खड़ा हो गया, और वहाँ से उसे दो बातें दिखाई दीं—पहली बात यह देखी उसने, कि धौलछीना के धारे के पास पोस्टमैन पदमसिंह ने उसकी गोबिन्दी दीदी का हाथ—(दाएँ-बाएँ की ठीक-ठीक पहचान रमुवा नहीं कर पाया)—दो-तीन बार दबाया और फिर, कंधे पर खाकी झोले को ठीक से जमाते हुए पोस्ट-ऑफिस की ओर चला गया। मगर, उसकी गोबिन्दी दीदी, पानी का फौंलानेल के नीचे लगाए हुए, बड़ी देर तक, ऐसी परहोश-जैसी वहाँ खड़ी ही रही, जैसे पदमसिंह ने तिलिस्मी बहराम के चौबीसवें अध्याय 'बहराम ने तिलिस्म तोड़ा' की जादुई-पुतली का कोई गलत और नाजुक खटका दबा दिया हो—उसकी गोबिन्दी दीदी का दाँया या बाँया हाथ नहीं !

दूसरी बात को—(याने, एक बड़ी थाली में कई वस्तुओं को, जो इतनी दूर से साफ-साफ नहीं दिखाई दे रही थीं, लेकर, गंगनाथ ज्यू के

१. आइना का अपभ्रंश ।

मंदिर की ओर जाती अपनी माँ लछमा को) देखकर, रमुवा ने बमणधार की दौड़ सीधे धौलछीना के चौबटिया तक काटी, कि 'दैनिक हिन्दुस्तान' आज जरूर दाहिना हो गया है !

धारे तक पहुँचते-पहुँचते, रमुवा की साँस चढ़ गई। सामने ही उमादत्त की दुकान थी, जहाँ चहल-पहल थी। रमुवा रुक गया, कि थोड़ी साँस लूँ, फिर चलूँ। पानी पीने की इच्छा हुई, तो उसने धारे की ओर देखा। गोबिन्दी दीदी[1] को देखते ही, उसे पहली बात याद आ गई। वह बड़ी असमंजस में पड़ गया, कि गोबिन्दी दीदी से कुछ पूछे या नहीं, कि पोस्टमैन पदमसिंह ने तुम्हारा हाथ क्यों दबाया, दिदी ?

दूसरे, वह उमादत्त की दुकान के पटाँगण में भी जरा फुर्ती से पहुँचना चाहता था। मगर, कौतूहलवश गोबिन्दी के पास चला गया। गोबिन्दी, फौला एक ओर रखकर, हाथ-मुँह धो रही थी।

दरअसल, रमुवा को गोबिन्दी दीदी अच्छी लगती थी, इसीलिए पोस्टमैन पदमसिंह की हरकत से उसे थोडा रोष भी हो आया था। वैसे वह नादान तो था नही, कि जो इतना भी नहीं समझ सकता, कि हुआ तो ऐसा गोबिन्दी दीदी की राजी-खुशी से ही !···

बोला—"गोबिन्दी दिदी, जरा पानी पीने दे तो।"

गोबिन्दी ने पानी-भरी आँखों से ही रमुवा को देखा, और अंजलि भर-भर पानी बटोरकर, मुँह छपछपाने लग गई। गोबिन्दी की उपेक्षा से रमुवा को बुरा लग गया। व्यंग-वक्र होंठों को आपस मे टकराते हुए, बोला—"पानी पीने की जल्दी थी—मेरा फाइनल-रिजल्ट पासिंग-मार्क लेके आया हुआ है। बेचारा पोस्टमैन पदमसिह भी यही, इसी धारे पर फुर्ती से पानी पीकर, अपनी ड्यूटी पर पहुँच गया है, और···"

---

१. पिता की बहन को भी दिदी कहने का चलन है, राजपूतों में। ब्राह्मणों में 'बुबू' कहते हैं, जबकि राजपूतों और शिल्पकारों में 'बुबू' दादा-नाना को कहते हैं।

गोबिन्दी के हाथ-मुँह का पानी क्षरण-भर में ही नीचे नितर गया। और, उसे अपने झुके हुए सिर को उठाना मुश्किल हो गया, लाज के कारण, भय और आशका के कारण ! रमुवा समझ गया, कि चोट ठीक जगह पर बैठी है। और उसने सोचा, कि अपना बदला तो निकल ही गया है, अब गोबिन्दी दिदी को ज्यादा चोट पहुँचाने की जरूरत नहीं। और किंचित हँसकर, बोला—"दिदी, साँप-जैसा क्या सरक गया तेरे पाँवों के पास से ? अरे, जरा मुझको पानी पीने दे। कब से कह रहा हूँ, कि मेरा पासिग-रिजल्ट आ गया है, मिडिल-फैनल का ! तूने फौल कैसा लबालब, ठंडे पानी से भरकर रखा है ? फौल पर नजर पड़ते ही, मेरे शरीर में चेतना-जैसी आ गई थी, कि हाँ, आज तो गोबिन्दी दिदी ने शकुनिया-फौल जल-भरा रास्ते में ही दिखा दिया—'दैनिक हिन्दुस्तान' में मेरा रौल नम्बर चौबीस हजार, सात सौ-तिरानब्बे—जो कि पिछले साल सिर्फ बीस हजार, चार सौ बयानब्बे था—आ गया है।

गोबिन्दी खिसियाकर, धारे के पास से, एक ओर हट गई—"भुली[1], फिर तो तू मुझे मिठाई खिलाएगा ना ?"

'भुटीकुँद के लड्डू से ऐसे तेरा मुख दबा दूँगा, कि तेरे लिए मुँह से आवाज निकालकर, 'थैंक्यू, भुली, कंगरूचुलेशन !' कहना भी मुश्किल हो जाएगा।" कहते हुए मुँह में पानी भरकर, रमुवा उमादत्त की दुकान की ओर बढने लगा, तो उसे फिर किंचित हँसी-जैसी आ गई—पोस्टमैन पदमसिंह ने भी तो गोबिन्दी दिदी के हाथ में कुछ भुटीकुँद का लड्डू-जैसा ही दबा दिया था !

° ° °

रमुवा को देखा ही था, कि उमादत्त ने पुकारा—"अरे, रामी, कहाँ ञलायमान हो गया था तू ? आ, दौड़ काटते हुए आ ! मेरे डेली

---

१. भाई।

पेपर 'दैनिक हिन्दुस्तान' में तेरा फैनल नम्बर—ग्रॅं-ग्रॅं-ग्रॅं कितना है, रमुवा का फैनल नम्बर, मथुर बेटा ?"

गल्ले के तख्ते पर बैठकर, 'दैनिक हिन्दुस्तान' में दिल्ली में लगे सिनेमाओं के विज्ञापनों को पढ़ते हुए, मथुरादत्त ने चिल्लाकर बताया— "चौबीस हज़ार-सात सौ-तिरासी है, बौज्यू !"—तो उमादत्त ने अपने अधूरे वाक्य को पूरा किया—"सात हज़ार-चौबीस सौ-तिरासी आ गया है।"

दौड़ने की जगह रमुवा साधारण से भी धीमी गति से चलता हुआ, उमादत्त के समीप पहुँचा—"मेरे फैनल-नम्बर ने तो, खैर, सिर्फ आपके ही नहीं, हरेक के 'दैनिक हिन्दुस्तान' में आना ही था—ऊपर के फेमस शोपकीपर मेहनरसिंह-की-बाखली के चनरीका (जिनके छोटे भाई हौल-दार डुँगरिका आजकल हमारे ही यहाँ ठहरे हुए हैं।) के अलावा, बिजेसिंह और पोस्टमास्टर जयदत्त ज्यू के 'दैनिक हिन्दुस्तानों' में भी आया ही होगा !—मगर, आप क्यों इतना हड़बड़ा गए हैं, कि मुँह से मेरा सही रौल नम्बर भी निकालना मुश्किल हो गया है ? और चौबीस हज़ार-सात सौ-तिरानब्बे फैनल नम्बर को सात हज़ार-चौबीस सौ-तिरासी बता रहे हो ? याने, आपके हिसाब से देखा जाए, तो मेरा रौल नम्बर कुल सात हज़ार का सात हज़ार, चौबीस सौ मे से दो हज़ार, बराबर नौ हज़ार; बाकी रहा चार सौ, और आगे बाकी दहाई इकाई के तिरासी—कुल नौ हज़ार-चार सौ-तिरासी होता है—और, पूरे चौबीस हज़ार में से नौ हज़ार गया, बाकी रहा पंदरा हज़ार; सात सौ में से चार सौ गया, बाकी रहा तीन सौ; और तिरानब्बे में से तिरासी गया, बाकी रहा दश—याने पूरे पंदरा हज़ार-चार सौ-दश का फर्क पड़ता है !"

उमादत्त रमुवा का मुँह देखता रह गया, मगर गल्ले के तख्ते पर बैठे-बैठे, सिनेमा के विज्ञापनों पर से ध्यान हटाकर, रमुवा की बातों को ध्यानपूर्वक सुनने के बाद, मथुरादत्त बाहर पटाँगण में आ गया।

रमुवा को चुनौती-जैसी देते हुए, बोला—"बौज्यू को तो, यार, तू अपने सतफेरिया जोड़-घटानों से ऊपर-ही-ऊपर हवा में लटका रहा है! मगर, तुझे खुद हिसाब बराबर नहीं आता!—क्योंकि, उदाहरण-स्वरूप, चौबीस हजार-सात सौ-तिरानब्बे—ऋण—सात हजार-चौबीस सौ-तिरासी—बराबर, तीन में से तीन गया शून्य; नौ में से आठ गया, बाकी रहा एक; सात में से चार गया, बाकी रहा तीन; चार में से दो गया, बाकी रहा दो और दो में से सात गया, बाकी रहा—नहीं-नहीं, दो में से सात को घटाने के लिए एक दहाई उधार लिया—मगर, दो के आगे तो कोई अंक ही नही है? · अच्छा, ठैर, जरा बिपरीत रीति से घटाता हूँ। सात हजार-चौबीस सौ तिरासी—ऋण—चौबीस हजार-सात सौ-तिरानब्बे=बराबर, तीन में से तीन गया—शून्य; आठ में से नौ नही जाता है, दहाई उधार लिया, तो अठार में से नौ गया, बाकी रहा नौ; हासिल लगा एक, जो ऋण होती हुई संख्या में जुड़ गया=बराबर सात-धन-एक-आठ—और यहाँ चार में से आठ भी नही घट सकता है, इसलिए पहले की तरह दहाई से उधार लिया, और चौद में से आठ गया, बाकी रहा छै; हासिल एक फिर से ऋण वाली संख्या में जुड गया—चार-धन-एक पाँच, ऊपर के दो में से नीचे का पाँच नहीं जाता है। तीसरी बार दहाई उधार लिया, बराबर बार हुआ। अब बार में से पाँच गया, बाकी रहा सात; इस बार भी ऋण होती हुई सख्या के आखिरी दो में एक जुड़ गया, बराबर तीन हो गया; मगर, सात में से तीन आसानी से घट सकता है, बाकी रहा चार—इस प्रकार, रमुवा मेरे बौज्यू का बनाया हुआ सात हजार-चौबीस सौ-तिरासी रौल नम्बर, तेरे असली फैनल-नम्बर चौबीस हजार-सात सौ-तिरानब्बे से, सैतालीस हजार-छै सौ-नब्बे ज्यादा निकलता है।"

बेटे के लम्बे-चौड़े हिसाब से, उमादत्त की छाती के बाल कबूतर के पंखों-जैसे फरफराने लगे—"रमुवा, यह बात दूसरी है, कि हमारा मथुरा-दत्त दर्जा चार मे ही पढ़ रहा है, मगर मैं खुद इस बात की गैरन्टी दे

सकता हूँ, कि वह आखिर ब्राह्मण-बेटा ही है—और 'ब्राह्मणाधीनं विद्या, क्षत्रियाधीनं च पौरुषौ' कह रखा है। सो, यार समुवा, कुश्ती, डू-डू—कबड्डी में तू भले ही मथुरादत्त को हारमान बना दे, मगर विद्या के मामले में तू उसका मुकाबला नहीं कर सकता, हालाँकि, तू इस साल मिडिल-फैनल में (चाहे एकदम आखिरी के थर्ड-डिवीजन में ही सही) पास हो गया है!"

मथुरादत्त, अपने जाने रमुवा पर पूर्ण विजय प्राप्त करके, फिर गल्ले के तख्ते की ओर शान के साथ बढ़ने ही लगा था, कि रमुवा ने उसका कुर्ता पीछे से पकड़, फिर वहीं बैठा दिया—"ठैर, ब्राह्मण-बेटा! पहले तू यह तो बता, कि चौबीस हजार ज्यादा हुए, या सात हजार?—अँ हो, उमादत्त गुरू, तुम्हारे ब्राह्मण-बेटे ने भी विद्या को अच्छा वश में कर रखा है, जो सात हजार में से चौबीस हजार घटा के, शेष सैंतालीस हजार निकालता है!···ले रे, यह कोयला पकड़! जरा, इस पटाँगण के पत्थर पर ही अपना हिसाब लिख तो···"

मथुरादत्त ने एक बार अपने गैरन्टी देने वाले पिता की ओर देखा, और फिर रमुवा के हाथ से कोयला झटककर, पटाँगण के पाथर पर, अत्यन्त आत्म-विश्वास के साथ लिखा—पहली रीति से चौबीस हजार सात सौ-तिरानब्बे याने २४७९३—सात हजार का ७, चौबीस सौ का २४, और तिरासी का ८३ याने ७२४८३। चूँकि नहीं घटती थी संख्या, याने बौज्यू के मुँह से निकला हुआ फैनल-नम्बर, इसलिए विपरीत रीति से किया—७ हजार-२४ सौ-८३ याने ७२४८३—२४ हजार-७ सौ-९३। बराबर ४७ हजार-६ सौ-९०···

हिसाब को दोनों रीतियों से लिखने के बाद, मथुरादत्त ने अपना सिर ऊपर उठाया—"ले रे, देख!"

मथुरादत्त और उसके लिखे हिसाब को एक बार तिरस्कारपूर्ण आँखों से देखने के बाद, रमुवा ने उमादत्त की ओर चार-पाँच बार अल्हड़ अट्टहास करते हुए देखा—उमादत्त उसके इस उन्मुक्त-अट्टहास से

झटपटा-सा गया—"क्यों रे, लगाम टूटे टट्टू-जैसा क्यों हिनहिना रहा है ?"

"टट्टू की आदतों की भी कुछ जानकारी रखते हैं, गुरू ?—दानसिंह का बिछुवा टट्टू देखा ही होगा ?—और मंगलू कुम्हार के अलबेला गधे को भी ? जिसको देखकर, बिछुवा जोर-जोर से हिनहिनाता है, सीटियाँ देता है—और मंगलू कुम्हार का अलबेला गधा अजगर का जैसा मुँह फाड़कर हेंक्की-हेंक्की-हेंक्की करता है !—खैर, खुलासा करना ठीक नहीं होगा, क्योंकि 'समझदारों के लिए इशारा काफी, और गाने वालों के लिए इकतारा काफी' कह रखा है !···" रमुवा हँसते हुए बोला—"गुरू, विद्या की ठेकेदारी किसी एक जात के हाथ में नहीं होती। पिछले बरस की फाइनल परीक्षा में मैं राजपूत बेटा टापता रह गया, और जितुवा ल्वार का डूम बेटा हरुवा फस्ट डिबीजन मार के, अलमोड़ा के जी० आई० सी०[1] कौलेज में चला गया—और आखिरी डिबीजन थर्ड-डिवीजन में पास होने की बात भी तुमने बेकार मारी मुझको। इतनी तो अकल रखो, गुरू, कि मिडिल-फाइलन की परीक्षा का स्टूडेन्ट चाहे फस्ट डिबीजन में पास हो, चाहे थर्ड डिबीजन में—भर्ती उसको दर्जा आठ में ही किया जाएगा। अच्छा, गुरू, पैलागन ! मुझे घर को दौड़ काटनी है।"

रमुवा दौड़ने को ही था, कि उमादत्त ने रोषपूर्वक पूछा—"क्यों रे, खसियाबेटे ! मेरे मथुरादत्त का हिसाव गलत है क्या ?"

"गलत है या सही, अपने गैरन्टीड-ब्राह्मण-बेटे मथुरादत्त के ही हेड-मास्टर मोतीराम पंडित जी को दिखा लो, गुरू !"—कहता हुआ, रमुवा घर की ओर दौड़ गया।

---

१. गवर्नमैन्ट इंटरमीडिएट कालिज।

२४

रमुवा के बाद दूसरा नम्बर डूँगरसिंह का रहा और तीसरा गोबिन्दी का।

सिर्फ आज का ही दिन बीच में था, कल इतवार को जैजात-बँटवाई हो जाने वाली थी, और डूँगरसिंह को उसका हिस्सा मिल जाने वाला था। डूँगरसिंह को आज पहली बार ऐसा अनुभव हो रहा था, कि बाप मरने के भी कई फायदे हैं। विशेषकर, ऐसे बाप के मरने के, जो अपने बेटों के लिए सम्पत्ति छोड़ जाए।

और संतान-सम्पत्ति दोनों ही अपने पीछे छोड़ जाने वाला भी साक्षात् स्वर्गलोक में स्थान पाना होगा, क्योंकि बहुधा ऐसा भी होता है, कि संतानों से घर भरा हुआ छोड़ा, तो सम्पत्ति नहीं—और, सम्पत्ति को 'कहाँ धरूँ, किसके नाम करूँ'-जैसी अवस्था में हंस उड़ गया, तो कोई 'बौज्यू हो', कहकर चौबटिया में संस्कार[1] देने वाला नहीं।

---

१. **पुत्रवान पुरुष की अर्थी जब घर से श्मशान के लिए उठाई जाती**

आज, कल बँटवारे के बाद मिलने वाली अपने हिस्से की सम्पत्ति का अंदाजा बिठाते हुए, डूँगरसिंह को अपने स्वर्ग-स्थानी पिता मेहनरसिंह के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-सी हो रही थी। डूँगरसिंह ने मन-ही-मन निर्णय किया, कि आते असोज के पितर-पक्ष में पड़ने वाले सोल-शरादों (सोलह श्राद्धों) में वह अपने हिंस्से का पितर-शराद जरूर उठा लेगा। माँ का विशेष ध्यान तो नहीं था, मगर दो मुट्ठी चावलों के पिण्ड और भी बना देने होंगे। अष्टमी को पिता का शराद हो जाएगा, तो नवमी को माँ का भी लगे हाथों निबटा देना होगा, क्योंकि मेहनरसिंह की जरा दूसरे किस्म की आदत रही थी। (और अब भी वैसी ही होगी, कि पत्नी की जरा किसी बेटे-बहू ने उपेक्षा की नही, कि चिलम एक तरफ रख के, नली हाथ में पकड़ते देर नहीं लगती थी)······

मन-ही-मन माता-पिता से उऋण होने की व्यवस्था करने के बाद, डूँगरसिंह डँगरियों-की-बाखली की ओर निकल गया, कि एक नजर जरा नरूली की मूरत देख आए। अभी सुबह थी, नरूली घर में अकेली भी मिल सकती थी, क्योंकि दसवाँ लग जाने से वन उसे भेजा नहीं जाता था। खेतों में भी कलावती और किसनसिंह ही ज्यादा जा रहे थे। नरूली को गोड़ने-निराने में असज होती थी। वैसे हाथ से निकला हुआ खरगोश फिर कहाँ हाथ में आता है ? मगर, दूर पहुँचा हुआ भी, एक बार ठिठक-कर, कान खड़े करके, मुक्ति-विह्वल आँखों से अपनी ओर देख ले, तो आनन्द आ जाता है।

नरूली खरगोश-जैसी हाथों से निकल गई थी, बरसों बीते इस बात को। इस समय तो हाल यह है, कि लँगड़ी टाँग वाले शिकारी को अपनी

है, तो उसके पुत्र 'बौज्यू हो' (पिता हो) कहते हुए, कंधा देते हैं अर्थी को। इसके अलावा चौराहों पर भी 'बौज्यू हो' की पुकार देते हैं। इसे ही संस्कार देना कहते हैं।

पकड़-पहुँच के अन्दर वाली पर चकोर[1] नजर रखने में समय बीत रहा है।

मगर, मन है। मलाल ने मसलकर रखा है। तड़फता है, बेचैन हो उठता है। लाख समझाता है डूंगरसिंह, कि अरे, जो चीज तकदीर में नहीं होती, नहीं ही मिलती है—मगर, चमार चित्त कहाँ मानता है?

चार दिन से जैता की सूरत तिमिल-फूल[2]-जैसी हो गई है, तो थोड़ी-सी एक इच्छा यह हो आई है, कि नरूली न-जाने क्या कर रही होगी, डीठ-भेंट होने पर, चतुरसिंह की कुशल-बात तो जरूर पूछेगी!—और अनेक प्रकार के सुखों को पाने के तो सभी रास्ते बद हो गए है, मगर, सूरत देखने का सुख पाने को आँखों का रास्ता खुला ही हुआ है।

अभी आँगन धूप से चकाचक भरा नहीं था।

डूंगरसिंह किसनसिंह के पटाँगण में पहुँचा, तो नरूली धान कूट रही थी। दाहिने पाँव से धानो को ऊखल में डालती जाती थी और मूसल चलाती जाती थी—ऊखल से 'दुंङ' की ध्वनि निकलती थी और संवादी स्वर-जैसा अपने 'हुंङ' नरूली बन्द होंठों में से निकाल रही थी। एक ताल-बद्ध और एकसार (अनवरत एक-सी) ध्वनि पटाँगण के, ऊखल के पार्श्ववर्ती-पथरौटों पर से रबर की गेंद-जैसी उछलती हुई आकाश की ओर घुघुत-जैसी उड़ रही थी—दुंङ-हुँङ-दुंङ-हुँङ-दुंङ······

सामने हरकसिंह लौकी-तोरयाँ के लगिलों (बेलों) के लिए ठाँगर (आधार-खम्भ) खड़े करने में जुटा हुआ था, और अपने घर के चौंतरे (चबूतरे) पर बैठी गोपुली काकी, अपने सौतिया बेटे उधमसिंह के

---

१. चकोरी (चक्रवाकी) को प्रेयसी का प्रतीक माना जाता है। उच्चारण-भेद के कारण 'मेरी चकोरी' की जगह, 'मेरि चकोरा' कहा जाता है। २. तिमिल के फूल यों, शायद, लगते नहीं। पर, जनश्रुति ऐसी है, कि तिमिल के फूल लगते हैं, रात को। मगर, लोगों के अदेखे ही, फलों में बदल जाते है।

तिमासिया बेटे को होल्लुरी-होल्लुरी कराते हुए, हरकसिंह के ठाँगर-जैसे शरीर के सहारे अपनी नजर के लगिलों (लतिकाओं) को आधार दे रही थी······

नरूली का ध्यान ऊखल-मुसल में ही केन्द्रित था, सो डूँगरसिंह को परेशानी-जैसी हो रही थी, कि कैसे उसे अपनी उपस्थिति के प्रति सचेत किया जाए, और फिर कैसे बातों का सिलसिला बाँधा जाए ?

सहसा, डूँगरसिंह को बिस्कुटों का ध्यान आया और मन में एक मलाल-जैसा होने लगा, कि एक डिब्बा अगर हाथ मे (हाथ में तो, शायद, और कोई देख लेता, सो पैन्ट की लम्बी जेब में) ले आया होता, तो सम्बन्ध जोड़ने में मदद मिल सकती थी ! डूँगरसिंह का एक मन हुआ, कि अभी जाकर ले आए, मगर दूसरे मन ने टोक दिया, कि तब तक कहीं नरूली, धानों के चावल बनाकर, किसी दूसरे काम से न लग जाए !···

ऊखल-मूसल का काम ही ऐसा होता है, कि औरों की सूरत देखने जाओ, तो अपने पाँवों की खटाई बनती है। मूसल और पाँव को चलाने के क्रम में जरा-सा भी अंतर पड़ा नहीं, कि बस !···सो नरूली, वर्त्तुलाकार चक्कर काटती भी, डूँगरसिंह को नहीं देख पाई थी।

भगवान् भला करे गोपुली काकी का, अपने चौंतरे पर से ही पुकार दिया—"डूँगरिया, अब कैसी तबियत है, रे ?"

"आपकी दया से राजी-खुशी के साथ हूँ, गोपुलि काकी ! जरा इधर चला आया था, क्योंकि किसनू का चतुरदा के सिलसिले में पूछ-ताछ कर रहे थे, कि कश्मीर-फ्रन्ट में जो आजकल घमासान युद्ध चल रहा है, उसके बारे में कुछ जानकारी हासिल करना चाहते थे"······कहते हुए, डूँगरसिंह ने आँखों को उठाया तो गोपुली काकी की ओर, मगर दृष्टिकोण नरूली की ओर रखा।

अच्छा हुआ, कि नरूली के हाथों ने मूसल उस समय ऊपर को उठा रखा था—अगर, कहीं नीचे को आ रहा होता मूसल, तो पाँव पर ही पड़ता, ऊखल में नहीं···कुछ क्षण तो मूसल नरूली के हाथों में थमा ही

रह गया, मगर फिर, डूँगरसिंह की ओर विह्वल नेत्रों से दो-तीन बार ताकने के बाद, वह पुनः धान कूटने में लग गई।

मगर, सिर्फ आँखों से ही नहीं, कानों से भी डूँगरसिंह अन्दाज लगा रहा था, कि अब नरूली के हाथों में पहले वाली बात नहीं रह गई है··· चतुरसिंह के प्रति नरूली का ममत्व देखकर, डूँगरसिंह को ईर्ष्या-सी हुई, कि एक मैं हूँ, इसके मुँह के सामने बैठा हुआ, बरसों से इसके नाम की रुद्राक्ष-कंठी-जैसी फिराते रहने वाला—और एक वह है, जो इससे हजारों मील की दूरी पर पहुँचा हुआ है !···सामने वाले से शत्रुता, और दूर वाले से दोस्ती इसी को कहते है, कि जिसने दिल दिया, तो उसको दरिया में जैसा डुबा दिया, और जो सिर्फ चार दिन की संगत-सोहबत में जवान हड्डी-बोटियों का जायका लेकर, अपना कलेजा अपने ही साथ लेके, कश्मीर चला गया, उसके नाम पर ऊपर की साँस ऊपर, नीचे की नीचे !······

'सिर बड़ा सरदार का और दिल बड़ा यार का' कह रखा है। मगर, औरतों की जात ऐसी है, कि 'पहले खसम, बाद में खुदा !' के सिद्धान्त में रहती है। यार तो 'पीछे लगे, सो कुत्ता—आगे दौड़े, सो हिरन' वाली कहावत में आता है······

द्वेष-द्रवित नेत्र-कोणों से डूँगरसिंह ने पुनः नीचे से ऊपर तक देखना शुरू किया, तो दृष्टि नरूली की कमर तक जाके, वहीं किरमड़-काँटे की कील-जैसी गड़ गई—चतुरसिंह भले ही कश्मीर चला गया है, मगर, जाते-जाते, अपने कलेजे का रस निचोड़ के नरूली की कमर मोटी कर गया है। याने, एक दूसरी कहावत ऐसे में याद यह आती है, कि 'गंगा-सिंह गया तो सही, मगर हरसिंह के हिस्से का हलुवा छोड़के !'···इसी सिलसिले में सुई-धागे का सूत्र-सम्बन्ध भी याद आता है······

अरे, मान लिया जाए, यही नरूली अगर डूँगरसिंह के घरबार आ गई होती, और इसकी पतली कमर डूँगरसिंह के कारण मोटी हुई होती, तो इस सोच-विचार से ही नरूली का मुँह 'टमाटर समझ के तोड़ने-

नायक' हो जाता, कि 'इन्हीं की मिहरबानी और इन्हीं के पौरुप-प्रताप से पुत्रवंती होने जा रही हूँ !'···

सामने से गोपुली काकी ने आवाज मारी—"डुँगरिया, कल को किसनू ज्याठ ज्यू के यहाँ देपत्योल[1] होने वाली है। पलटन की पराण-घाती लड़ाई से जीते-जी लौट आया है। जौंल हाथ करके, एक टीका भभूत का तू भी लगा ले जाना अपने कपाल में ! ··· ·"

"द, गोपुलि काकी !"—डुँगरसिंह किसनसिंह के घर के चौंतरे पर बैठते हुए, बहुत आस्थावान-कंठ से बोला—"यह भी कोई कहने की बात है ? तुम तो अपने बालक की पाशणी[2] का जैसा न्यौता दे रही हो !·· अरे, जिसे अपने प्राणों की सही-सलामती से वास्ता होगा, वह जिन्दगी में दो काम सबसे पहले करेगा—पहला काम यह, कि कश्मीर फ्रन्ट के कबाइली पठानों की लौंगरैन्ज रैफलों और औलरौण्ड मशीनगनों से, जिस तरह से भी हो सके, जान बचाके निकल जाना ! और, दूसरा यह, कि मनुष्य-जीवनी जो है, वह प्रतिपल परमेश्वरी-हुकूमत के अधीन रहती है—सो उसकी पवित्र मन से पूजा करना। बाहर की आँखें बन्द करके, अन्दर की आँखों से यह भी जानकारी हासिल करना, कि जिसने अपने को कलेजा निकाल के हाथों पर रखके दिया, उसी को किरमड़ के काँटे की तरह—कलेजा तो बहुत दूर की चीज है, गोपुलि काकी !—अपने पाँवों से भी दूरी पर रखना, यह साक्षात् कितनी बड़ी गुनहगारिता है ?···नतीजा कभी यह भी हो सकता है, इस गुनहगारिता का और ऊपर से घमण्डपंथी का, कि कमर से लाजढकंत्री पैजामा खिसक जाए, नाड़ा साँप-सा लपेट लेवे। यही मिसाल खतरे में पहुँचे हुए किसी इंसान की जिन्दगी के लिए भी दी जा सकती है ! ··"

डूँगरसिंह कह तो इस ढंग से रहा था, कि जैसे गोपुली काकी से ही बातें कर रहा हो, मगर बोल इतनी सावधानी के साथ रहा था, कि जो

---

१. देवताओं का अवतरण। २. अन्न-प्रासनी।

बातें नरूली को सुनाने के लिए है, उन्हें सिर्फ वही सुन सके।

नरूली के चावल कटने लग गए थे। एकसार मूसल नहीं पड़ रहा था। मन-ही-मन उसने उन सभी देवताओं को हाथ जोड़े, जिन्हे वह जानती थी। नरूली ने देखा था, कि आजकल किसनसिंह का मुँह उतरा हुआ रहता है। मुँह से कुछ कहते नहीं हैं, पर डाकखाने के चार-चार चक्कर काटने से, चिन्ता का कारण स्पष्ट हो जाता है' और नरूली की तो दशा ही और है, कि जितनी बार उदर का गर्भ, लोटे-भर पानी में पड़ी छोटी जात की मछली जैसा सुर्रुक-सुर्रुक इधर-उधर सरकता है, चुलुक-चुलुक चक्कर काटता है—उतनी ही बार चतुरसिंह की सूरत, नरूली के कलेजे में से निकल-निकलकर, उसकी आँखों में टुपुक्क-टुपुक्क तैरने लगती है।··

० ० ०

—ऐसी दिल के अन्दर दर्द के डुबुक[1] जैसे पकानेवाली स्थिति में, डूँगरसिंह की ओर—उस डूँगरसिंह की ओर, जो चतुरसिंह का कश्मीर-फ्रन्ट का साथी रह चुका है, और यह भी जानकारी रखता है, कि वहाँ चतुरसिंह किस हालत में है—देखने की ललक तो उठती ही है।···बल्कि, इच्छा तो यहाँ तक होती हैं, कि आँखों में अपने दिल के (चतुरसिंह की कुशल-बात-सम्बन्धी) सवालों को लेकर, तब तक डूँगरसिंह की ओर देखा जाए, देखता रहा जाए—जब तक आँखों के अन्दर गीली लकड़ियों का धुँआ-जैसा फैलाते रहने वाले, आँखों के अन्दर के पानी में डूबे हुए सवालों का जवाब हासिल नहीं हो जाए।···

मगर, तब इन्हीं पानीदार-सवालों वाली आँखों में एक सूरत दो बरस पहले के उस डूँगरसिंह की भी उतर आती है, जो लाल रुमाल की गाँठ को घुमाते हुए और दाँई-बाँई आँखों को बारी-बारी से ऐसे दबाते

१. भात के साथ खाई जाने वाली एक दाल विशेष, जिसे भिगोई हुई दालको पीस कर बनाते हैं।

हुए, कि जैसे आँखों को इस किस्म की कोई बिमारी ही हो गई हो—नाक पर तिरी अँगुली की जसौंतिया-कट आरी चलाते हुए, नरूली को सुनाया करता था—"प्याँरी, तू तो खरगोश के जैसे पाँवों से खिसकती है, मगर मैं जो तुझे अपने दिल की हालत सुनाता हूँ, तो इस यकीनी के साथ, कि परमेश्वर ने जो दिल—मेरे पिरमी[1] दिल के मुकाबले में एकदम डाँसी पाथर-जैसा—तुझे दिया, उस पर तो तेरा भी बहुत-कुछ काबू है, और कब्जा उस पर किसी दूसरे शख्श का भी है, मगर जो कान तुझे दे रखे हैं, उन पर किसी की कोई बन्दिश नहीं है। यानी, अगर तू मेरे दिल की दास्तानों को सुनने से इन्कारी करते हुए चिफली-कुतकुतान बाछी[2] जैसी, मेरी हौसिया-सोहबत से चाहे बाहरी, या अन्दरी नाराजी-जैसी जाहिर करते हुए, आगे को सर्र-सर्र बमणाटाने की बयाल-जैसी सरक भी जाती है, तो हालत यह होती है, कि अपने पाथर-दिल को जबर्दस्ती काबू में रखा तूने, मगर मेरे जो परेम के आँखर थे, वो तेरे गुलेल-मार्का कानों के घोल[3] में घिनौड़ों[4] की तरह घुस ही गए !··· प्याँरी वे, हाई तेरे गुलेल-मार्का चाँदी की गोल-गोल बालियों वाले कान, और हाई मेरे घिनौड़ों के बच्चों-जैसे आँखर !···"

इन गौरैया के बच्चों-जैसे अक्षरों को कहने वाले डूँगरसिंह पर नरूली को क्रोध भी आता था, हँसी भी फूटती थी। क्रोध ऐसे आता था, कि गोठ-जंगल की घास से ज्यादा खेत-खड़ी पकी फसल पर मुँह मारने वाले बैल-जैसा उजियाड़ी डूँगरसिंह हमेशा उसे छेड़ता ही रहता था। चतुरसिंह का पिठाँ (टीका) उसे लग चुका था, तब से जो सिलसिला बँधा था, डूँगरसिंह के लाम में भर्त्ती होने के पहले दिन तक रहा। अब भला नरूली कैसे उस मरद को मुख लगाती, जो गाँव-घरों में अपनी छिछोर-प्रकृति के लिए बदनाम था।···

---

१. प्रेमल। २. चिकनी और गदराई बछिया। ३. नीड़। ४. गौरैयों।

—ओ, बबा रे !···

इधर नरूली जरा अपने झाँवरों का बजना थामती, और उधर कुचर्चा की कनसाँगली[1] गाँव वालों के बगैर तेल-पड़े कानों में घुसती—"आज तो चतुरसिंह की घरवाली के पाँव ठीक डुँगरिया के ही करीब रुके हुए थे !"

और, डूँगरसिंह के पास नरूली के पाँवों का रुकना—उसी नरूली के पाँवों का रुकना, कि जिस पर डूँगरसिंह मैत-सौरास दोनों जगहों का आशिक रहा—ऐसा रँग लाता, कि धौलछीना के चर्चाप्रिय लोगों की चटखोर जीभ को तेज मिर्च-मसाले वाली दाड़िम की खटाई का जैसा स्वाद मिलता—"अरे, औरत और पानी को किसी तरफ ढालने में टैम ही कितना लगता है ? बल्कि, हो तो ऐसा भी सकता है, कि खुदानखाँस्ता शैद[2] नरूली की सटबट शुरू से ही डुँगरिया के साथ रही हो ?—मगर, दुनिया की नजरों में निखालिस दूद रहने के लिए, दोनों ने आपस में यह कुमेटी कर रखी हो, कि औरों की आँखों के सामने कुछ ऐसी तरकीबी से रहना है, कि लज्जत जो है, वह भी हासिल हो जाए, और इज्जत जो है, वह भी रह जाए !···"

—और, बहुधा, होता ऐसा ही था, कि डूँगरसिंह के समीप से अकेले आते-जाते में नरूली को मन-ही-मन एक कँपकँपी जैसी व्याप जाती थी—जैसे खेत-खड़ी फसल के बोटों में मुख मारने के लिए कोई उजियाड़ी बैल दौड़ता हुआ आ रहा हो, और उसकी दौड़ से उपजी हुई हवा खेत के बोटों को हिलोर गई हो।···

—और नरूली, फसल के बोटों की जगह पर होते हुए भी, हवा-जैसी आगे को सरकती रही, कि उजियाडी बैल पर ग्वालों की नजर भी तेज ही रहती है।

डूँगरसिंह के चंट-स्वभाव के कारण, ऐसी आशंका भी बनी ही रही,

१. कनखजूरा। २. शायद का अपभ्रंश।

कि कहीं मुख के वचनों के साथ-साथ, हाथ की अंगुलियों से काम न लेने लगे !···नहीं तो, जहाँ तक डूँगरसिंह के मुख के वचनों का सवाल है, कौन वह जवान औरत है, सारे इलाके में, जो अपनी छाती पर हाथ मार के यह कह दे, कि सुनना ही नहीं चाहती है····बल्कि, सिर्फ जवान औरतों का ही सवाल क्यों उठाया जाए ? औरत-मर्द दोनों जातों के बच्चों से लेकर बूढ़ों तक डूँगरसिंह के मुख के वचनों की कुछ ऐसी पहुँच रही, कि डूँगरसिंह जहाँ पहुँच गया, थोकदार जमनसिंह के नाती रमुवा के शब्दों में, 'मैल की डबल रोटी के ढक्कन वाले कानों में सरसों की जैसी पिरपिरी और चमेली की जैसी खुशबू वाला तेल पड़ गया।"

दोनों जात के बच्चों और मर्दों के लिए तो डूँगरसिंह से बातें करने की पूरी-पूरी सुविधा थी, गोपुली काकी की बराबरी तक पहुँची हुई औरतों के लिए भी कोई बन्दिश नहीं थी, मगर नरूली-जैसी तरुणियों के लिए यह रास्ता काँटेदार ही था, हालाँकि डूँगरसिंह के वचनों की चमेली-जैसी खुशबू, सरसों-जैसी पिरपिरी की उपलब्धि भी यहीं संभव थी।

डूँगरसिंह की बातों का रस ही ऐसा था, कि जिसके कानों में उतर गया, मन की गहराई तक पहाड़ी नदी के नीर की तरह उतरता-भींजता चला गया—और मन की धरती में मिठास और गुदगुदी की एक भरपूर फसल-जैसी खड़ी हो गई।

इसीलिए डूँगरसिंह के समीप अपनी चलती-चाल को रोकने वाली तरुणी पर औरों की आँखों का कतुवे[1] की तरह घूमते हुए ठहर जाना एकदम स्वाभाविक था।···

सो, अकेली नरूली का यह हाल रहा, कि आते-जाते में डूँगरसिंह के समीप और भी लम्बों पावों से खिसक गई—यों, डूँगरसिंह की बात भी

---

१. तकली।

रास्ता भुला देने वाले बचनों से अपने धर्म-करम के स्वामी की ओर से चंचल चित्त चलायमान नही हो जाए !···

और फिर सदा-सर्वदा यही होता रहा, कि डूँगरसिह, उजियाड़ी बैल, अपनी ही ठौर खड़ा रह गया; नरूली पकी फसल, आगे सरक गई।

० ० ०

नरूली ने कूटे हुए धानों को फटकने के लिए सुप में डाला, उखल में से निकाल कर—उखल-मुख के आस-पास से पिरुल-कूचे[1] से बटोर कर। फिर सुप को ऊपर उठाते हुए, दाहिने हाथ की अँगुलियो का पहला फटका मारा। थोडी-सी कौरण[2] सुप से ऊपर को छटका और हवा में एक झीनी चादर-जैसी तन गई भूसे की···और, चावल फटकने का एकसार-क्रम बाँधने से पहले, नरूली ने कौरण-धुस की झीनी चादर के ताने-बाने के बीच से अपनी नजर का तिकड़ा-सूत्र डूँगरसिह की ओर डाला !

—डूँगरसिह ज्यों-का-त्यो चौतरे पर बैठा, सिगरेट के धुँए को अपनी पूरी ताकत के साथ नरूली की ओर फेंकता हुआ, आँखों के कोनों पर ही सारी ज्योति को केन्द्रित करके और बाँई आँख के नाक की दाँई बगल वाले, दाँई आँख के कान की बाँई बगल वाले कोने को नरूली की ओर रखते हुए—बाकी बची हुई आँखों से गोपुली काकी की ओर देखता हुआ, 'आवाज देना जंगल की तरफ, नींद तोड़ना घर में सोए लोगों की' वाली मिसाल को कायम रख रहा था—"द-गोपुली काकी ! जैसे कि तुमने अभी-अभी कहा था मुझ से, कि 'डुँगरिया बेटे, पलटन की पराणघाती घमासान लड़ाई से, लगातार बहादुरी से लड़ते और मदरकंटरी की खिदमत करते हुए, जीते जी घर लौट आया है—जौल

१. चीड़ के तिनके का झाड़ू। २. धान के कुटे हुए छिलकों का बारीक चूरा।

हाथों से गोल्ल-गंगनाथ देवताओं को नमस्कार करते हुए—एक टीका भभूत का तू भी लगा ले जाना अपने कपाल में !'··· याने, ये बातें कहते हुए, तुमने यह साबित करने की कोशिश की थी, गोपुली काकी, कि अगर देवता गोल्ल-गंगनाथ की छाया सिर पर हो, तो कश्मीर फ्रन्ट की डिथ-भैली याने श्मशान-घाटी से भी आदमी सही-सलामत लौट सकता है वर !···और, इसी प्रकार का भरोसा वो लोग भी कर सकते हैं, जिनकी तरफ से चितई के गोल्ल देवता के दरबार-मन्दिर में वोकिया-घण्टे आदि कई पूजा के सामान चढ़ाए जा चुके है।··· मगर, तुमको इस हकीकती से भी बे-खबर नही रहना चाहिए, गोपुली काकी, कि कुमायूँ कमिश्नरी—जिस में हमारे अलमोड़ा जिले के साथ-साथ नैनीताल के, गढवाल के दोनो जिले भी शामिल हैं—से कश्मीर की लड़ाई पर जाने वाले हरेक नौजवान की तरफ से गोल्ल-गंगनाथ-भोलानाथ और हरु-सैम आदि देवताओं के दरबार में पूजा पहुँचती है, कि 'हे, परमेश्वर ! कश्मीर के दैत्याकारी कबाली पठानों की रैफलो-मशीनगनो से हमारे प्राणो की रक्षा करना !'·· मगर, आखिरी में लौटते कितने लोग हैं सही-सलामत ? अरे, गोपुली काकी, वहाँ पठानों की बुलेटों की भट्टाम फैर से जवानो की छाती का शिकार बनता है, और इधर मन्दिरों में चढ़ाए हुए, उनके नामखुदे- घण्टे मे जरा-सी टन्न की आवाज भी नही निकलती है !···"

o o o

—नरूली के हाथों का सुप हाथों में ही रह गया। कौए के कन-कन, चावल के दाने-दाने में डूँगरसिंह के तन-मन को कँपकंपा देने वाले वचन उतर आए—और नरूली के मन मे एक जो आसरा गोल्ल-गंगनाथ देवताओं का बँधा हुआ था, वह भी बिना आवाज की घण्टी-जैसा दिल के अन्दर ही हिलता चला गया—'और, इधर मन्दिरों में चढ़ाए हुए, उनके नाम-खुदे घण्टे में से जरा-सी टन्न की आवाज भी नहीं निकलती है !'···

—ओ, बबा रे !···कैसे अलच्छिन-अक्षर निकलते है, डूँगरसिंह के

मुख से ? घिगारूँ के तीखे-कर्कश काँटे की तरह और गहरे, और गहरे चुभने ही चले जाते हैं। पीर से कलेजा ऐसे पके किरमड़-दाने-सा हो जाता है, जिस में एक-अँखिया कौवे ने अपनी इकौरी-चोंच[1] मार दी हो !

नरूली को याद आया, पिछले ही साल तो—जब दो महीने की छुट्टियों में चतुरसिंह घर आया हुआ था, और पहले महीने नरूली अलग[2] हुई थी, तथा दूसरे महीने उसकी छुँतिया-पाल[3] टल गई थी—चतुरसिंह ने गोल्ल देवता के मन्दिर में पूजा दी थी। बोकिया काटा था, नाम-खुदी काँसे की घण्टी चढ़ाई थी। नरूली से उसने कहा था—"हैं वे,[4] जानती है, कि चितई के गोल्ल देवता के मन्दिर में यह डबल-पूजा क्यों दे रहा हूँ ?"

"कैसी डबल-पूजा ?"—नरूली ने चतुरसिंह की बाँह में लगे हौलदारी के धनुष-मार्का फीतों को हलकी-हलकी अँगुलियों से साफ करते हुए पूछा था।

"बोकिया-नारियल के साथ-साथ काँसे की बड़ी घंटी भी, जिस पर कि मेरा नाम 'हौलदार चतुरसिंह नेगी' भी खुदा हुआ है !"—चतुरसिंह ने गौरवपूर्वक कहा था।

"हँहो, बताऊँ ?"—नरूली ने, हौलदारी के फीतों को गौर से देखते हुए, कहा था—"एक तो इसी हौलदार बनने की खुशी में, बोकिया चढ़ा रहे हो। दूसरी पूजा घंटी चढ़ाने की अपनी लम्बी जिन्दगी की सही-सलामती के लिए······"

"नहीं, वे !"—चतुरसिंह हँस दिया था—"पहली पूजा तो तूने ठीक ही बताई है, बोकिया-नारियल वाली। मगर, दूसरी पूजा जो घंटी चढ़ाने की दे रहा हूँ, तो इस उम्मीद के साथ, कि गोल्ल देवता की मिहरबानी

---

१. तिरछी चोंच। २. रजस्वला। . रजस्वला पाली। ४. सम्बोधन।

से अगर अगली छुट्टियाँ तेरे बेटे के नामकन-के-चौके[1] पर बैठने के लिए लेनी पड़ीं, जिसको कि कैजुवल-लीभ भी कहते हैं, तो एक बोकिया क्या चीज होती है ? डबल बोकिए-नारियल चढ़ाऊँगा, गोल्ल देवता के दर-बार में !…"

—और, नरूली शरम और कुतकुती के मारे अपनी चूड़ीदार-मुट्ठियों से चतुरसिंह की पीठ गदकाने लगी थी—"छि हो, बड़े बिशरम हो तुम तो !"…और, चूड़ियों की खणमण-खणमण के साथ-साथ, उसकी आत्मा का आनन्द भी सारे कमरे में दशांग-गोकुल धूप की खुशबू-जैसा फैल गया था—गोल्ल देवता हो, ऐसे ही दाहिने हो जाना।… …

—और, नरूली ने मन-ही-मन यह भी कह दिया था, कि ओ, बबा रे ! मर्दों की जात भी फूल सूँघ के फल का अन्दाजा लगाने वाली होती हैं !……

ये क्षण, नरूली के जीवन के, ऐसे क्षण थे, जिनकी बदौलत नरूली के लिए 'मौन भले ही दूर उड़ गया, मगर मुख के स्वाद के किए मौ, कानो के सुख के लिए मणमणाट-जैसी छोड़ गया !'[2]…वाली कहावत सिद्ध हुई थी।

ये क्षण ऐसे थे, कि जैसे असोज-निकाल के खेतों में मडुवा-मदिरा के दाने चुगते 'हिट मेरी सुवा धुर्र, धुर्र'[3] करने वाले, दाने अपने-अपने पेटों में डालकर, चोंचें दूसरों से लड़ाने वाले घुघुत (घुग्घू)—और, डूंगरसिंह के अक्षर ऐसे हैं, कि जैसे बाड़ेछीना के मिडिल-स्कूल से फसली-छुट्टियों में घर लौटे हुए, थोकदार जमनसिंह के नाती रमुवा की गुलेल के गोसे !……

---

१. बच्चे के नामकरण के दिन पिता पगड़ी बाँधकर, हल्दी-पुते चौके पर बैठता है, नामकरण की विधि पूरी होने तक। पिता की अनुपस्थिति में, चाचा बैठ सकता है चौके पर । २. मधुमक्खी (पुरुष मक्खी) भले ही दूर उड़ गई, पर मुख के स्वाद के लिए शहद और कानों के सुख के लिए मधुर गुनगुनाहट छोड़ गई। ३. चल, मेरी प्रेयसी, वन को।

नरूली ने, मन-ही-मन, गोल्ल देवता को बार-बार हाथ जोड़े—हे परमेश्वर, जब कभी जरा-सी भी विपदा उन पर पड़े, तो तुम्हारे मन्दिर में टँगी हुई उनके नाम की घण्टी जोर से घनघना उठे !···और, परमेश्वर हो, जो मानता उन्होंने अपने बेटे का मुख देखने के लिए मानी थी, इसकी लाज रख लेना—क्योंकि, इसी मानता के साथ उनकी जिन्दगी की सलामती का सवाल भी बँधा हुआ है !······

चतुरसिंह की लम्बी उम्र के लिए प्रार्थना करते हुए, नरूली को ऐसा लगा, जैसे उसके उदर में हलकी-सी टुनटुनाट-रुनझुनाट की आवाज सुप में पड़े चावल-दानों की तरह चुलमुला रही है। कमर मे एक हलकी च्याम्म-जैसी अनुभव की उसने, और उदर की अगूँजिल घण्टी जैसे लगातार हिलती चली गई—नरूली शंका से थरथरा उठी, कि कहीं पीड़[1] तो नहीं उठ रही है ?······

० ० ०

डूँगरसिंह का उद्देश्य तो यह था, कि चतुरसिंह की जिन्दगी को खतरे में पड़ी हुई दिखाकर, नरूली को अपनी ओर आकर्षित करे, और फिर यदि यह गुँजाइश हो, कि 'खरगोश भागा तो सही, मगर बाद में फिर हाथ आ गया' वाली मिसाल सिद्ध की जा सके—याने, नरूली को अपनी ओर आसक्त किया जा सके—तो जलेबी-जैसी गोल घुमावदार बातों को और भी इमर्ती की जैसी घुँघराली-बनावट देकर, अपने सड़ जाने पर भी मिठास नही छोड़ने वाले अनार-जैसे प्यार की चाशनी मे डुबा-डुबा के नरूली का मन मोह ले·· और यदि, 'कुत्ते की पूँछ जितनी बार भी थेलुवे[2] से बाहर निकाली, वही टेढी तुरई-जैसी निकली' वाली वास्तविकता सामने आए, तो मीठी खीर के लिए खौलाए जा रहे दूध में कलेजे-मुट्ठो के भुटुवे में पड़ने वाले वो तेज मसाले और खटाइयाँ छोड़े, कि 'खरगोश अपने हाथ नहीं आया, नही सही, गीदड़ों ने तो उसे खूब

---

१. प्रसव-पीड़ा। २. सीधी नली।

नोच-नोचकर खाया' वाली हकीकत सिद्ध हो जाए। और, डूँगरसिंह का अपमान और प्रतिशोध की दाहकता से हुक्के में पड़े कोयले-सा जलता हुआ, यह दिल तो ठंडक-सी महसूस करे, जिसे असफलता की हर फूंक और ज्यादा लाल-लाल कर जाती है······

डूँगरसिंह जानता है, कि ज्यादा जलने वाले लाल-लाल कोयले की खरगोशिया-रंग की राख भी बहुत जल्दी बनती है। यही हालत रही दिल की कचोटों और मन के मसालों की, तो वह दिन भी अब बहुत दूर नहीं रह गया होगा, कि अपनी नाकामयाबी की लाज ढँकने को सिर्फ दो ही रास्ते रह जावें !···वही पहले वाले दो रास्ते, जिसमें से एक, सचमुच ही, 'डिथ-भैली' की तरफ को जाता है, दूसरा हरिद्वार-ऋषिकेश की फौड़े-चिमटे वाली धूनियों तक।

डूँगरसिंह देख रहा था, कि नरूली की आत्मा—सिर्फ कुछ गजों की ही दूरी पर, नरूली के ही घर के चौंतरे पर, उसी की आँखों के सामने बैठे हुए डूँगरसिंह की ओर आकर्षित होने की जगह—हजारों मील की दूरी के कश्मीर-फ्रन्ट में मोर्चे पर तैनात चतुरसिंह की ओर दौड़ रही है।

डूँगरसिंह के मन में एक मरोड़-जैसी उठी—हाई रे, तू शादीशुदा औरत नरूली !·· तू बसंत पंचमी के मौके का वह रुमाल है, जो दर्जी के यहाँ से तो सफेद ही आया, मगर बाद में रँग दिया गया उसे बसंती-रँग में। रुमाल भी ऐसा बारीक पौपलीन का लसदार, कि, बस, उस पक्की रँगत के बसंती-रँग को ऐसा खीच के रख लिया, कि दूसरे किसी रँग को डालने से कोई छींटा भी दिखाई देना मुश्किल हो गया !······

सामने से गोपुली काकी की पुकार आई—"क्यों, रे डुँगरिया, तुझे क्या मेरे आँग में अवतार लेनेवाले गोल्ल-गंगनाथ देवों पर कोई भरोसा नहीं है ? अभी-अभी तूने कहा था, कि गोल्ल-गंगनाथ के मन्दिर में बोकिया-नारियल और घन्टे चढ़ाने से कोई भलाई नहीं होती ?"

गोपुली काकी के प्रश्न-चिन्ह से अटपटाकर, डूँगरसिंह ने गोपुली काकी की ओर पूरी आँखों को उठाया, तो देखा, कि गोपुली काकी

डूंगरसिंह की अश्रद्धा के आगे अपने शरीर के देवताओं की शक्ति का प्रश्न-चिन्ह लगाने के बाद, उस ओर को फरककर, हरकसिंह के ठाँगर गाड़ने की क्रिया को देखने में लग गई थी।

अबकी बार डूंगरसिंह ने अपने पाँवों को भी गोपुली काकी के घर के चौंतरे की ओर ही घुमा दिया—"द, गोपुलि काकी ! तुम भी कैसी बिना पानी के कंटर[1]-जैसी हलकी बात करती हो ? एक तो बालचीर के निसाफ करने वाले गोल्ल-गंगनाथ देवता और दूसर दोनों तुम्हारे शरीर में आसन-अवतार लेने वाले—अरे, बबा रे ! जिसके अदिन आ गए हों, वही इन तुम्हारे अंग के देवों की इन्सल्ट करेगा !···दाहिने हो जाना हो, गोल्ल-गंगनाथ देवो, भूल-चूक की माफी देना !···और, गोपुली काकी, मैं तो उसी समय तुम्हारे अंग के गोल्ल-गंगनाथ देवों की ताकत और खासियत का कायल हो गया था, जब तुमने चटाक्क् से हरकू चचाजी का पद्मासन खोल दिया था !···लेकिन, एक ध्यान ऐसे में मुझे यह भी आता है, गोपुली काकी हो, कि उस समय—याने, हरकू चचाजी के पद्मासन को खोलने के समय—तुम्हारे शरीर में गोल्ल-गंगनाथ देवों की जगह रमकीली-छमकीली भानादेवी ने अवतार लिया होगा ?···क्यों, हो हरकू चचाजी ?"

इधर गोपुली काकी की गोद से तिमसिया सौतिया नाती चौंतरे पर गिरते-गिरते बचा, और हरकसिंह ठाँगर गाड़ने के बाद उसमें लौकी की लता चढ़ाने ही जा रहे थे, कि फिसलकर, नीचे जा गिरी।······

डूंगरसिंह के होठों पर से हँसी की लौकी-लता-जैसी नीचे को झूलकर, किसनसिंह के चौंतरे से लेकर, गोपुली काकी और हरकसिंह के घर के चौंतरों तक फैल गई—"क्यों, हरकू चचाजी ? कोई गलत बड़माई तो नहीं कर रहा हूँ, मैं गोपुलि काकी की ?"

—हरकसिंह क्या उत्तर देते ? उन्हें तो कुढ़न-जैसी हो रही थी, कि

---

१. कनिस्तर।

इस डुँगरिया की आवाज भी क्या साली रामढोल-बैंडबाजों की जात की है, जो तीसरे घर के नीचे पड़ने वाले खेत में भी कानों तक एक-एक अक्षर शिकारी बाज-जैसी चाल से पहुँचता है !···

हरकसिंह समझ गए थे, कि गोपुली के प्रसंग का जो पत्थर डूँगरसिंह ने उन्हें मारा है, वह डूँगरसिंह के बंदूक की गोली की तरह निशाने पर बैठने वाले अक्षरों से बना है, और कानों के रास्ते सीधे दिल में उतर गया है, सो चोट अन्दरूनी पहुँची है । और, अन्दरूनी-घाव भी ऐसा हुआ है दिल में, कि उसको दिखाना तो दूर, उसके हो जाने की चर्चा करना भी अपने ही कलेजे को कचोटना होगा···वैसे हरकसिंह ने यह भी अनुभव किया, कि घाव जो भी हो—बाहरी, चाहे अन्दरूनी—एक-न-एक दिन पुर ही जाता है और पुरने के दिनों में एक मीठी खुजली-जैसी भी दे जाता है ।····याने, डूँगरसिंह सामने बाघ के जैसे बचन, गिद्ध की जैसी आँखें लिए किसनसिंह के चौंतरे पर व्यंग के लौकी-लगिल फैला रहा है, तो घाव दिल मे बना हुआ है । मगर, जैसे ही वह आँखों से ओझल होगा, दिल का अन्दरूनी-घाव भी पुरते-पुरते एक मिठास जैसी छोड़ जाएगा—'डुँगरिया भतीजा वैसे है बडा रसिया !···गोपुली के साथ मेरे उस सम्बन्ध की जानकारी हासिल कर चुका है, जिसको मद्देनजर रखते हुए, मैं—सैम का डँगरिया होते हुए भी—अपने अखोल-पद्मासन को खोलने के लिए मजबूर हो जाता हूँ !'

डूँगरसिंह के मर्मवेधी-व्यंग में छिपे अपने प्यार के—एक शादीशुदा और तीन-तीन देवताओं का अपने अगों में अवतार-आसन लेने वाली डँगरिया औरत गोपुली के साथ प्यार के—इस पहलू का ध्यान आने पर, हरकसिंह का रोब डूँगरसिंह के प्रति कम हो गया । और, अपनी डाँवा-डोल-मनस्थिति को सँभालने का प्रयास करते हुए, लौकी की लता को दुबारा ठाँगर पर चढाते हुए, उन्होंने भी हँसकर ही डूँगरसिंह की ओर अपने अक्षर फेंके—"डुँगरिया भतीज !···मानता हूँ, बेटे, तेरी जिन्दा-दिली और तेरे अक्षरों की चित्त को चलायमान कर देने वाली चमत्का-

रिता को ! इसके अलावा, हँसी-ठट्ठा करने की जो बारीकी तुझे हासिल है, वह औरों में जरा कम ही मिलती है । क्योंकि, तू जो हँसी-ठट्ठा करता है, तो कुछ इस तरीके से, कि बन्दूक की नली किसी दूसरी तरफ को तानता है, और.फैर किसी दूसरी तरफ छटकाता है !···बेचारी नरूली ब्वारी को भी धान फटकने का सुप ऐसा लग रहा है, जैसे चावल ऊपर को जा रहे हों, कौरण नीचे बैठ रहा हो ।···मानता हूँ, डुंगरिया भतीज, दूसरों कि जिबाली[1] की तरफ इशारा करते हुए, अपना जाल फैलाने में तेरी टक्कर कोई नहीं ले सकता !"

हरकसिह के व्यंग से डूंगरसिह की आँखें नरूली की ओर घूम गई। नरूली अपने पेट को हाथ से दाबे, पटाँगरण की दीवार से सट गई थी । सुप, उसके घुटनों पर से गिरता, पटाँगरण के ऊखल-पार्श्वी-पथरौटे पर टिका हुआ था ।······

"अरे, नरूली भौजी की तबियत कुछ कमजोर-जैसी लग रही है !' कहते हुए, इधर डूँगरसिंह नीचे को उतरा, उधर अपने चौंतरे पर से, नाती को काँख में दाबे, गोपुली काकी भी जल्दी-जल्दी आगे आई— "अरे, असजीली[2] है छोरी । कहीं पीड तो नहीं उठी है ? दसवाँ लग गया है, मगर धान कूटने में जोर हो रहा है । मुसल के साथ-साथ पेट भी कही ऊँचा-नीचा सरक गया होगा ।"

नरूली की कमर में एक जोर की च्यास्स-जैसी हुई थी और दुसह-व्यथा से संज्ञा-शून्य-सी पटाँगरण की दीवार से सट गई थी । पीर से उसका कंठ आर्तनाद कर उठने के लिए कसमसा रहा था, रुँध रहा था । उसे लग रहा था, जैसे उदरस्थ अँतड़ियाँ, दो मुँही नागिनों की तरह, जँघाओं के आस-पास नीचे-ऊपर को सरक रही हैं । चसक का दौर निबट गया, तो नरूली ने अपनी अधखुली-आँखों से देखा—सामने से डूँगरसिंह उसकी ओर बढ़ रहा है, और गोपुली काकी भी नाती को बगल में दाबे

---

१. चूहेदानी । २. गर्भवती ।

जल्दी-जल्दी आ रही है। लाज के मारे, नरूली के लिए अपनी स्थिति को सँभालना कठिन हो गया—ओ, बबा ! गोपुली काकी की तो कोई बात नहीं थी, मगर डूँगरसिंह क्या सोचेंगे ? सामने से हरकसिंह सौरज्यू भी तो इधर को ही लपक रहे हैं !······

—और कोई राह तो सूझी नहीं नरूली को, मुँह को सिर के चाल[1] से ढाँपकर, अपने घर की ओर लपकी। एक-एक सीढ़ी को पर्वत-जैसा पार करके, चौंतरे पर पहुँची और फिर एक साँस में घर-की-चाख में पहुँचकर, एक कोने में बिछे हुए फिण पर लेट गई—"ओ, इजा वे !··· ओ···ओ··· "

डूँगरसिंह तो आँगन में ही खड़ा रह गया था, मगर गोपुली काकी नरूली के पीछे-पीछे, 'अहाँ हाँ, ब्वारी ! ऐसी पगल्योल[2] क्या कर रही है ? कहीं ठौर-कुठौर हो जाएगा पेट।' कहती, दौड़ती-दौड़ती चली गई थी।

डूँगरसिंह को पछतावा हुआ, कि 'बेकार में ही चौतरे से नीचे उतरने की तकलीफ उठाई। चौतरे पर रहने से, अन्दर को जाती नरूली टकरा सकती थी और डूँगरसिंह—चौतरे पर टाँग-पसारे बैठा-बैठा ही—उसे अपनी बाँहों में सँभाल सकता था ! एक ऐसे दुर्लभ मौके पर नरूली को अपनी बाँहों की छाया में सहेजना—कुछ नहीं, रे, डुँगरिया तकदीर का तू हीन ही है।···'

"क्यों, हो डुँगर भतीज ?"—हरकसिंह ने, लौकी के पात को दोनों हथेलियों की टक्कर में लेते हुए, उतावली के साथ पूछा—"नरूली ब्वारी को एकाएकी क्या हो गया ?"

डूँगरसिंह का सारा शरीर इस प्रश्न से चरमरा-सा उठा—अहा रे, इस समय नरूली को जो-कुछ भी हुआ, काश, कि वह डूँगरसिंह की वजह से हुआ होता !

---

१. चुँदरी-नुमा कपड़ा। २. पागलपन।

टणाक्क से ठसककर टूटने की जगह, चरमराकर चिरती चली जानी वाली पैया की लकड़ी-सा डूँगरसिंह का मन, कुढ़न और ईर्ष्या से, लाल-लाल कोयलों की संगति में फँसे भुट्टे की तरह चटचटाने लगा—"आप नरूली भौजी को क्या होने की बात पूछ रहे हैं, हरकू चचाजी ? माफ करें, आप बुजुर्ग शख्श हैं मेरे लिए। मगर, इसके अलावा और कौन-सा नतीजा ऐसी जवान औरतों का निकल सकता है, जो पलटन से घर लौटे हुए खसम को एक दिन भी आराम से सोने नहीं देती हैं ?···और खुद को भी आराम देना हराम समझती है। भरपूर महीना सामने आ गया, मगर ऊखल-मुसल के जानमारू काम में जोर है। यह तो वही मिसाल हुई, कि सवार सफर के लिए तैयार खड़ा है, मगर घोड़ी को घास चरने से ही फुरसत नहीं !"

डूँगरसिंह की बातें सुनते-सुनते ही, हरकसिंह की आँख ऊखल की ओर गई—"अरे···रे···रे···राम-राम-शिव-शिव···अब समझ में आ गई है हकीकती।···च···च···च···धान-चावल भी एकदम खराब हो गए हैं !"

डूँगरसिंह ने भी ऊखल-आस-पास के पाथरों पर अपनी आँखों की ज्योति को थोड़ी देर के लिए फैलाया। फिर एक स्वादिष्ट-मुस्कान-जैसी, एक क्षण को मन-ही-मन सहेजकर, बाद में हरकसिंह तक पहुँचाई—"सब भगवान की देन है, हरकू चचाजी ! सृष्टि को चलाना कोई मामूली चीज नहीं है। इन्हीं धानों को ले लीजिए, एक मिसाल की तौर पर। जब ये खेत की मिट्टी में बोए जाते हैं, बाद में, खाद-पानी को खींचते हैं—और एक दिन धान के बोट जो पैदा होते हैं, तो अपने छिलका को नेस्त-नाबूद करते हुए और खेत की सख्त मिट्टी को फोड़कर। खैर, हमारी नरूली भौजी तो जवान ही ठहरी और उसका मौसम ही ठहरा। सृष्टि की रचना तो बर्मा-बिष्णु जी ने इतनी विचित्र बनाई है, कि जब मैं कश्मीर-फ्रन्ट से लौट रहा था, तो देहरादून के मिलीटरी-अस्पताल में

एक लैसनैक की तिरसट्ठी[1] बरसों की औरत ने बच्चा दे रखा था···क्यों हो, हरकू चचाजी, गोपुलि काकी नरुलि भौजी को सँभालने चली गई है न ?"

डूँगरसिंह की बात हरकसिंह को ऐसी लगी, जैसे पूस के महीने की, धौलछीना के बाँज-वृक्षों को निमोर-निमोर[2] कर आने वाली, बर्फीली हवा उनकी पसलियों में घुस गई हो।······

तभी अन्दर से गोपुली काकी की आवाज आई—"हरकसिंह हो, तुम जरा दुरगुली पंडित्याण को बुला के ले आओ और डुँगरिया से कह दो, कि जरा इस टिकुवा को पकड़ देवे···और, देखो, जरा चलते-चलते गों-घरों की औरतों को भी खबर कर देना, हो !"

---

१. तिरसठ। २. मरोड़-मरोड़।

२५

बुद्ध के दिन अलग हुई थी, आज शनिश्चर था—जैंता को गाड़ नहाना था। सवेरे, दिशा खुलते ही, उसे लछमा ने उठा दिया था—"अरे, आज चौथा दिन नहाने की भी कुछ सुध-बुध है, या नही ? जब तक मेरे बालक होने शुरू नहीं हुए थे, ज्यू ने रात नही ब्याने दी ठीक से मेरे लिए। पूस-माघ में भी अलग होती थी, तो गाड़ से नहाकर, इधर मैं घर पहुँचती थी, उधर बामणटाने की धार में जरा-जरा घाम फूटना था।"

लछमा के शब्द घर में गूँजें, और जैंता की नींद नहीं टूटे—ऐसा कभी नही हुआ था। अटपटाकर, चाख के कोने में बिछे अपने बिस्तर पर से उठते हुए, जैंता ने सिरहाने से दातुल निकालकर हाथ में लिया। ऊपर बिछा हुआ कम्बल एक तरफ करके, नीचे बिछी पराल (पुआल) दातुल की नोक से समेटने लगी—"दिदी, उठ गई हूँ। सीधे जाकर, एकदम एक छपक नहाके आती हूँ।"

"जैता वे, मानने को तो तू मेरी बातों का बुरा मानेगी, मगर मति तेरी एक दम भिरष्ट हो गई है ।"—लछमा भीतर जाते-जाते, फिर जैता की ओर मुड़ गई—"अशुद्ध खून-पानी के अँग ठहरे तेरे, और नहाने वाली ठहरी तू एक छपक ! अरे, एक छपक में तो आदमी के अँगों का पसीना भी ठीक से साफ नहीं होता है, तू तो छूँतिया औरत ठहरी ? जैता वे, मेरी आँखों के सामने तू ऐसी अली त्योल[1] जैसी मत किया कर। और, आज तो जरा और शुद्धि से नहाकर ही घर आना। गौंत[2] भी मैं ताजा गौंत्या के रक्खूँगी बिनी का, तेरे पंजगब[3] के लिए !···हे ईश्वर हो, गोल्ल-गंगनाथ देबो !··· मेरे रमुवा का रिजल्ट अभी तक नहीं आया है।··· जैता वे, आज अगर मेरे रमुवा का रौलम्बर नहीं आया, अखबारों में, तो कल ऐंतवार को किसनू सौरज्यू के यहाँ देप त्योल होने वाली है। गोपुलि ज्यू के गोल्ल-गंगनाथों के सिवा, बाल बरमचारी हरकू सौरज्यू के अँग के सैम भी अवतार लेंगे। मैं अपने रमुवा के रौलम्बर को अखबारों में हासिल करने के लिए, विचार करने को दाणी[4] भी रखूँगी, साथ ही मानता भी मानूँगी।···सो तू आज किसी

---

१. गंदगी। २. गोमूत्र। ३. पंचगव्य। जब कोई औरत पहली बार रजस्वला हो, या संतानवती हो, तो उसकी 'शुद्धि' के लिए, गो-मूत्र-गोबर-तिल-जौ-कुश से, 'पंचगव्य' तैयार किया जाता है। यों साधारणतया रजस्वला होने वाली औरतों की शुद्धि के लिए सिर्फ गोमूत्र ही उपयोग में लाया जाता है। पर अधिकाँशतः, कहते हैं इसे भी 'पंचगब' या 'पंचकप' हैं, जो 'पंचगव्य' का अपभ्रंश-रूप है। ४. जब लोक-देवताओं का अवतार होता है, तो अपने अवतार-काल के मध्य में वो स्नान करते हैं और स्वयम् विभूति (भभूत) रमाते हैं, औरों को बाँटते हैं। इसी समय लोक-देवता 'प्रश्नों' पर भी विचार करते हैं, जो श्रद्धालु भक्तों द्वारा किए जाते हैं। प्रश्न करने का ढँग यह होता है, कि अपना प्रश्न मन में ही सोचकर, मुट्ठी-भर चावल रख लिए जाते

प्रकार की लसर-पसर मत करना, वे !"

जैंता ने स्वीकृति में सिर हिलाया—"दिदी, एक छपक तो कहने को होती है। नहाती तो मैं देर तक हूँ, खूब ऑग छपका-छपका के। मैल रह जाता है, तो अपने ही अँग चुलमुलाते हैं।"

"और, हाँ वे !"—लछमा एकाएक याद करती बोली—"गाड़जाने से पहले, जरा एक हाथ गोठों के पर्स[1] मे मार जाना। इसके अलावा, गाड़ तो तू जा ही रही है। आज बोलिए भी आ रहे है—जितुवा की घरवाली भागुली और सदुवा की घरवाली नदुली। चार हाथ उनके साथ भी गोड़ने लग जाना। बिना अपनी नजरों के आगे रहे, कहाँ ये लोग काम में चित्त लगाती हैं !···बल्कि, तू तो ऐसा करना, कि और घर के किसी काम में तो तेरे हाथों ने लगना नहीं है—खूब घाम आने तक गोड़ना, फिर गाड़ नहाने को जाना। पानी भी तब तक मजेदार गुल्ला-गुल्ला गरम हो जाएगा। उसके बाद, बिस्तर-कपड़े घाम में फैला देना और भागुली-नदुली के हाथ जरा तेजी से चलवाना। असाढ, बस, आखिरी में पहुँच गया है, अभी तक तलटाने का अघौल[2] मडुवाही नहीं गोड़ा जा सका। जब तक मेरे बालक होने शुरू नहीं हुए थे, असाढ़ पंदर पैट के बाद मैंने तलटाने के खेतों में कुटले लगते ही नहीं देखे।···अच्छा, अब तू जरा तुरोड़ि[3] कर, ब्वारी वे !···अगर, हो सका तो मैं तेरे लिए, खाने के अलावा, मजेदार गरम-गरम चहा भी गोबिंदी के हाथ खेतों में ही भेज दूँगी।···"

जैंता ने अब तक पराल को डाले में भर लिया था, ऊपर से अपने कपड़ों की गठेड़ी रख दी थी। 'अच्छा, दिदी !' कहकर, नीचे आँगन को उतरी, तो लछमा ने फिर एक आवाज दी—"छुँतियाँ-पराल का डाला

हैं। और, बाद में ये चावल देवता की दीपक-थाली में छोड़ दिए जाते हैं। १. पशुओं की गोठों का मैल। २. पहली बुवाई की खेती को 'अघौल की खेती' कहा जाता है। ३. जल्दी।

जरा एक तरफ सँभाल देना, वे व्वारी ! गोरू- भैंस मूख मार देते हैं। दूद बिगड़ने की धैसियत[1] रहती है ! और अपने कोने को जरा गोवर-मिट्टी से सफाई के साथ लीप देना, गौंत अखरते ही, में छिड़क दूँगी।"

० ० ०

नौल से लौटते हुए, गोबिन्दी का मन बार-बार झसक रहा था—कहीं रमुवा भुली ने उस वाली·· वह लड्डू वाली बात···अपनी इजा लछमा से—या किसी और से ही—कह दी, तो ?

इस प्रश्न के उपजते ही, गोबिन्दी के मन में भ्यास्स् जैसी हुई और सिर-धरा फौंला जरा तिरछा हो गया। पानी कपाल पर से होते हुए, आँखों-अधरों पर छलकता हुआ, आँकडे के अन्दर उतर गया—'ओ, बबारे !' गोबिन्दी ने एक हाथ सिर के फौंले पर से हटाकर, जल्दी से अपनी झगुली के भीतर की जेब में डाला—'कहीं भुटी कुन्द का लड्डू तो नहीं भीगेगा !···'

लड्डू हाथ से लगा, तो संस्मरणात्मक-मिठास से गोबिन्दी का मन गदगदा गया—उसके कानों में पदमसिंह पोस्टमैन के प्यार-भरे शब्द, पहली बार पिंजरे में बन्द किए गए तीतर के परों की तरह, फुड़फुड़ाने लगे—"गोबी वे, कल 'बाईचान्स' एक चक्कर बाड़े छीना का लगाना पड़ गया था। लौटते समय, बाल-बच्चों के हाथों के लिए थोड़ी-सी मिठाई लेके आया। घर में, छोटे से लेकर बड़े तक, सबको बाँटी · मगर, बाँटते-बाँटते भी एक लड्डू भुटी-कुन्द का बाँकी रह गया।···और, गैतिरबी,[2] मैंने सोचा—यह मेरी गोबुली के हिस्से का बाँकी रहता है !"

हाइरे, ऐसी बातें उसने कह ही दी थीं, तो फिर लड्डू देने की जरूरत ही क्या रह गई थी ?···छिहाड़ी, पदमिया भी बड़ा बिशरम है, जबर्दस्ती लड्डू को अशर्फी-जैसी पकड़ा गया !···अब कहीं रमुवा भुली ने बात औरों में फैला दी, तो फिर मिलेंगे ये बड़े-बड़े भुटीकुन्द के लड्डू,

---

१. आशंका। २. गायत्री-शपथ।

कि 'थोकदार ज्यू की गोबिन्दी भी अपना अच्छा नाम चलाएगी !'

गोबिन्दी ने लौटते समय देखा था, रमुवा उमादत्त की दुकान में बातचीत कर रहा था। गोबिन्दी का मन हुआ, कि रमुवा दुकान से उठ कर उसके साथ-साथ घर की ओर चले, तो वह उससे कहे—"रमुवा भुली, हाथ जोड़ती हूँ, रे तुझे—पोस्टमैन वाली बात किसी से मत कहना। हाँ ?"

मगर, बाद में सुधि-जैसी चेती, कि रमुवा भी तो चंटों का सरदार है, ऐसा कहने से तो वह और भी ज्यादा शक पकड़ेगा !···फिर गोबिन्दी की अक्कल में भी न जाने क्या पात्थर पड गए हैं, जो रमुवा को ऐसी शरम की बात कहने को तैयार हुई ? अरे, रमुवा अब कोई नादान तो नहीं, उसी का उमर-समानी होगा।···

और गोबिन्दी, एक बार पीछे देखकर, सरासर घर की ओर चल पड़ी—कहीं रमुवा पीछे से पुकार न दे, कि 'ठैर, गोबिन्दी दिदी, साथ ही जाते हैं घर को !'

घर पहुँची गोबिन्दी, चौतरे के एक कोने पर सिर का फौला उतारा और दुबारा लड्डू को बाहर से ही हाथ से छुआ—'ओ, बबारे !—फिर एक झ्यास्स्-जैसी गोबिन्दी के तन-मन को व्याप गई—'कहीं किसी की नजर पड़ गई इस लड्डू पर, तो ?'

मगर, इस आशंका से झुरझुराने के बावजूद, गोबिन्दी उस लड्डू को अपनी झगुली की जेब में ही सहेजे रही, कि पहले एकांत में उस लड्डू को अच्छी तरह से आँख-भर के देख लेगी, फिर खा लेगी।···

o o o

जैता गोठों का पर्स निकाल चुकी, तो लछमा ने एक आँचुली-भर रीठ लाके दिए उसे—"जैता वे, ऐसा करना, ब्वारी, कि इन रीठों के छिलके उतार कर तो अपना सिर धो लेना और कपड़े-लत्ते भी। भीतर के दाने बालकों के खेल करने को ले आना। अंठी, खेलेंगे, जरा मन बिलम जाएगा।···और, जरा, ठैर चार कुर्ते-सुरियाल रमुवा-पिरमुवा

के भी मैल से एक दम घिणौन[१] हो रहे हैं, एक छपक इनको भी मुँगरिया देना[२]।"

जैंता ने पूछा—"दिदी, मैं जाऊँ खेतों की ओर या भागुली-नदुली को ठैर जाऊँ?"

"द, भागुली-नदुली को जो ठैरती है, तो जोड़ लिया फिर मडुवा तुम लोगों ने!"—लछमा बोली—"अब के साल अपनी खेती के लक्षण तो कुछ ऐसे ही दिखाई दे रहे हैं मुझे, कि लोगों के सुन्दर ढँग से गोड़े गए मडुए-मादिरे को बालड़े[३] छटक जाएँगे, मगर हमारे खेतों के मडुवा-मादिरे के बोटों से ऊपर झाड़-पात पहुँचे हुए मिलेंगे।···ज्वारी वे, क्या करूँ, मेरी लाचार दर्जी हो गई है। एक तो कई किसम के छोटे-बड़े कीड़े पहले से ही पड़े हुए थे, इनके अलावा—परमेश्वर की दया से—पेट से भी असजीली हूँ। नहीं तो, तुम लोगों के निहोरे—पतोरे करने तक, खुद खेतों में चलकर दिखा देती, कि खेती कैसे हाथों से सँभलती है!···अब तू ही सोच, कि जब तक तू भागुली-नदुली की इन्तजारी में घर पर बैठी रहेगी, तब तक आधा खेत खिरोला जा सकता है। फिर बौलियों की तो आदत कुछ ऐसी होती है, कि घर वालों के हाथ-पावों को देख-देखकर, अपने हाथ-पाँव चलाते हैं। उस दिन भागुली को साथ लेकर, मैं गई थी गोड़ने। असजीली ठहरी, टोर हो-होके गोड़ने में कमर में च्यास्स्-च्यास्स् होती है। मजबूरी से, थोड़ा विश्राम-जैसा करती रही, तो भागुली का यह हाल रहा, कि तब तक खुद भी अपना सिर खुजाने[४] में या आँगड़ी-घाघरी के जूँ मारने में लग गई।···छिहाड़ी, भागुली तो अलीत[५] भी बहुत है। घाघरी-आँगड़ी में ही प्याच्च्-प्याच्च् जूँ पचाकर, अपने भूत-जैसे नखों से, खुस्योल कर रखी है।···हाइ, मेरा तो आँग बर्र-बर्र बरकता है।···"

---

१. घिनौने। २. मुँगरी से पीट-पीट के धोने की क्रिया को 'मुँगरियाना' कहते हैं। ३. बालें। ४. खुजलाने। ५. गंदी।

जैंता के होठों से विवशता और सहनशीलता की एक हलकी-सी हँसी फूटी—द, दिदी के लेक्चरों से मैं कहाँ पार पाऊँगी ?···बोली—"अच्छा, दिदी, मैं जाती हूँ। तुम भागुली-नदुली और गोबिन्दी ननदी को लमा देना।···"

गोबिन्दी ने भैंसें बाहर बाँधकर, सूखा पिरूल जलाकर, ऊपर से गीली, गोबर-सनी घास डाल कर, धुँआ फैला दिया था। डाँस-मच्छर भिनभिनाट करते हुए, भैंसों को छोड़कर, दूर उड़ गए।

जैंता को बोलते सुना, तो गोबिन्दी लछमा से बोली—"ठुली भौजी, भैंसे बाहर बाँध चुकी हूँ। धूँ भी लगा दिया है। पानी का फौला भरके चौंतरे पर रख दिया है। अब मैं भी जाऊँ, नानि भौजी के साथ मडुवा गोड़ने ?"—इतना कहकर गोबिन्दी झट से कुटल ढूँढने लगी अपना, जो चौतरे के नीचे बने आले में रखा रहता था। वह जल्दी-से-जल्दी घर से दूर हो जाना चाहती थी। मगर, कुटल हाथ में पकड़ के, पटाँगण से आगे को बढ़ी ही थी, कि लछमा ने रोक दिया—"ओहो, रे ननदी ! अपनी नानि भौजी के साथ जाने की तुमको भी फुड़-फुड़ जैसी रहती है।·· घर में यहाँ हजार काम पड़े हुए हैं मेरा अकेला पराण किस-किसको सँभालेगा ? फिर एक फौला पानी तुमने भर दिया, बस्स ? अरे, यह तो चहा-पानी में ही खाली हो जाएगा। खाने-पीने की जुगुत के लिए कहाँ से आएगा, कौन लाएगा ? लाने को तो पानी मेरे बालक भी ले आते, मगर पिरमुवा तो अभी उठा ही नही, और रमुवा पीछे के रास्ते ही गोरू-बाकरी खोल के जंगल को सरक गया है आज। न जाने क्यों इतनी जल्दी मचाई छोकरे ने, एक घुट्टुक दूद चहा की भी नही मार के गया।"···

इतने में बिजेसिंह का बेटा भबेन्दर आ पहुँचा—"मिठाई खिला, लछिम काकी ! तेरा रमुवा आज थर्ड डिवीजन में पास हो गया है !"

"अँ···अँ···"—लछमा इस सुसमाचार से हड़बड़ा-जैसी गई—"ठगता तो नहीं है, रे चेला ?"

"नहीं हो, लछिम काकी ! बाइफादर, परमेश्वर कसम ! मैं अपनी आँखों से थर्ड डिवीजन की लिस्ट में उसका रोल नम्बर चौबीस हजार, सात सौ, तिरानब्बे देख के आया हूँ।"—भबेन्दर ने विश्वास दिलाया।

"हे, परमेश्वर गोल्ल-गंगनाथ देबो ! धन्य-धन्य हो।"—लछमा हर्ष से गदगद होकर, अन्दर को दौड़ी। गोबरसिंह को हिला-हिला कर जगाया—"उठो हो, खड़े तो हो जाओ। जरा देखो तो सही, आज क्या हुआ है ?"

दूसरे कमरे में थोकदार की आँख भी खुल गई। यों वो रोज बहुओं से भी तड़के उठ जाते थे, मगर कल रात देर तक शरीर चड़कता रहा था बात से, सो बहुत अबेर आँख लगी थी। लछमा के मुख के शब्द—"जरा देखो तो सही, आज क्या हुआ है,'—सुने तो उन्हें झट से अपनी ब्याने वाली भैंस भागी की सुधि आई। पड़े-पड़े ही पूछा—"क्यों, ठुलि ब्वारी, थोरी हुई है, या काँटा ?"

लछमा कुढ़ गई, गोबरसिंह को सुनाते हुए ऐसे बोली, जैसे थोकदार तक उसके अक्षर न पहुँचें—"हमारे सौरज्यू को तो जितनी माया-ममता गोरू-भैंसों के थोरे-काँटों[1] से है, उतनी अपने नातियों से नहीं !"—फिर जोर से बोली—"थोरी-काँट कुछ नहीं हुआ है, सौरज्यू !···बल्कि मेरा रामी आज डिवीजन में पास हो गया है।"—

उधर से थोकदार बोले—"परमेश्वर दाहिने हो गए। एक नैया यह भी पार लग गई।"···

लछमा ने थोकदार के शब्दों पर ध्यान न देकर, गोबरसिंह से कहा—"हूँ हो, उठो ! बहुत परलोक पहुँचे हुए बुड्डों की तरह बिस्तरे में लमलेट रहना भी ठीक नहीं होता। तुम्हारे लमटाँग होकर सोने के नहीं, फुर्ती से गृहस्थी को सँभालने के दिन हैं। औरों की क्या है ! सभी को अपनी-अपनी जान प्याँरी है। 'बिगैर बाछे का' गोरू है, अपने ही चरने

१. कटड़े को 'काँट' कहते हैं

में सुर[1] है !' वाली बात है। मगर, तुम तो चेतो ! चेला तुम्हारा मिडिल फैनल के इम्तिहान में डिवीजन मार के पास हो गया है। उस को हाई स्कूल में भर्ती करवाने की कोशिशी करनी है।...उठो, जरा जल्दी से खाने-पीने की खुरदरी भी करो।...गोबिन्दी हो, तुम जरा फुर्ती से चहा का पानी चढ़ा दो चूल्हे में।...और, सौरज्यू हो ?... गोबिन्दी ने भैंसों को बाहर बाँध दिया है, जरा नागी को हथिया दो। में जरा गंगानाथज्यू के मन्दिर में जल्दी से धूप-बास उठा आती हूँ।"...

१. ध्यान।

२६

थोकदारजी का धौलछीना पड़ाव में दोदर-मकान जो था, उसी से थोड़ी दूरी पर दुरगुली पंडित्याण का छोटा-सा—रमुवा के शब्दों में सिगरेट-सलाईनुमा—घर था। नीचे लम्बा गोठ था, ऊपर रहने का छोटा कमरा—जिसके एक कोने में रसोईघर था, दूसरे में भगवान् श्रीराम का मन्दिर, तीसरे में दुरगुली पण्डित्याण का बिस्तरा पड़ा हुआ था और चौथे में राशन-पानी। बाकी सामानों के लिए, कमरे की ऊँचाई को तख्तों से दो हिस्सो में बाँटते हुए, ऊपर भरपाटी बनी हुई थी। नीचे के गोठ की लम्बाई और ऊपर के कमरे की कम घेरे की बनावट को दूर से देखने पर, पण्डित्याण का घर, वस्तुतः ऐसा ही दिखाई देता था, जैसे—रमुवा के ही शब्दों मे—कैंचीमार सिगरेट के डिब्बे के ऊपर जहाजमार[1] सलाई रखी हुई हो!

दुरगुली पण्डित्याण का महत्त्व—धौलछीनावासियों के लिए—

---

१. जहाज-मार्का।

उसकी इस दर्पोक्ति से ही बहुत-कुछ आँका जा सकता है, कि 'आधी धौलछीना मेरे ही हाथों से बाहर निकली हुई है !'

सन् चौद की एक गोली रुदरमरिण पण्डित की छीती में भी घुस गई थी, और दुरगुली नौ वर्ष की कन्यावस्था में ही बाल-विधवा हो गई थी। बाल-विधवा दुरगुली के विधवा होने के बाद के ग्यारह वर्षों का उसका इतिहास दुरगुली पण्डित्याग्गा के शब्दो में कुछ और था, इलाके के उन कुछ लोगों के शब्दों में कुछ और ही, जो चरित्रगत-विशेषताओं का मौखिक-इतिहास रखने में माहिर थे।

मोटे तौर पर, दुरगुली जोग्यूड़ नाम के बमरणगों[1] से धौलछीना नाम के खसगों[2] में, अपनी लम्बी उम्र के बीसवें वर्ष में उतरी थी। वहाँ के 'सदानन्दी माई धरमशाला, धौलछीना' में जब वह, कुछ कैलाश-यात्रियों के साथ, काली किनारी की सफेद साड़ी में उतरी थी, तो उस समय के थोकदार-पुत्र जमनसिंह ने डूँगरसिंह के पिता मेहनरसिंह से कहा था—"मेहनरदारे, आज धौलछीना में पहली बार ऐसी साक्षात परी उतरी है। सिर्फ मुख में ही जिनके खूबसूरती होती है, वो आँखों में गाजल लगाती हैं। इस टापमारू के तो सारे तन-बदन में जोबन छाया हुआ है, सो सारी साड़ी में गाजल की जैसी गोट लगाकर आई है। हाइ रे, तेरे खड़मिट्टी-जैसे तन-बदन में जोर मारता—पैया की पतली सौंटी-जैसी लपलपान काली नागिन को भी मात करने वाला—तेरा किनारी दार-जोबन !"

कैलाश-यात्री, तो सात-आठ दिन विश्राम करके, अपनी कैलाश-यात्रा में चले गए, मगर गोटेदार-तरुणाई वाली दुर्गा बहन आश्रम में ही रह गई।

कैलाश-यात्रियों के लौटने तक, 'सदानन्दी माई धरमशाला' के आस-पास, जमनसिंह और मेहनरसिंह के चक्कर लगते रहे। और जब कैलाश-

---

१. ब्राह्मण-गाँव। २. क्षत्रिय-गाँव।

यात्री सिर्फ दो घण्टे धौलछीना ठहरकर, बिना दुर्गा बहन को साथ लिए ही, अलमोड़ा की ओर जरा लम्बे-लम्बे पाँव धरते हुए चले गए, तो जो लोग पहली बार उन यात्रियों के लिए यह कह रहे थे, कि 'सदानन्दी माई के धरमशाले में सात-आठ दिन तक टिकने वाले यह पहले कैलाश-यात्री हैं। और, यारो, असल में ये कैलाशवासी क्या टिकते, उनको टिकाने वाली चीज ही दूसरी है !···दूसरे हमारी धौलछीना की ठण्डी हवादार—रातों की भी ऐसे मौकों पर अपनी अलग ही खासियत होती है !'—वे ही लोग अब यह कहने लगे, कि 'देश की कई माई-बहनों का पहाड़ी स्थानों पर अच्छा मन लगता है।'

मगर, बाद में, जब यह रहस्य खुला, कि दुर्गा बहन 'देशी माई-बहन' नहीं, नजदीक के ही जोग्यूड़ गाँव की ही है, तो एक बात ऐसा भी फुसफुसा उठी—"कैलाशवासियों के लौटने से पहले ही थोकदार रतनसींग के सुपुत्तुर जमनुवा और उसके दोस्त मिहनरुवा ने पण्डित्याणा को वश में कर लिया था, और कैलाशवासियों को यह धमकी देकर भगा दिया, कि 'कहाँ भगा के ले जा रहे हो पहाड़ी लड़की को ? आस-पास के गाँववाले सब खूँख्वारी करने के लिए फौजदारी-तौर पर इकट्ठे हो रहे हैं, कि कौन हैं वो देशी ठग, जो पहाड़ की एक बाल-विधवा और बर्मचारिणी लड़की को देश की तरफ रफूचक्कर करने की तैयारी करके गए हैं ?··· लौटने दो उनको जरा उनकी कैलाश-यात्रा से !'···"

चाहे, किन्हीं के आग्रह से, किन्हीं भी कारणों से हो, असली बात तो फिर भी यही रही, कि दुर्गा बहन धौलछीना के 'सदानन्दी धरम-शाला' में टिक गई। बाद में, यह तो उसी के मुख से पता चला, कि वह बाल-विधवा है—जोग्यूड़ के रुदरमणि पण्डा (पंडित) की। इस तथ्य से अवगत होते ही, उसका नाम दुरगुली पण्डित्याणा पड़ गया।

धौलछीना की पाँव-उखाड़ू मिट्टी-पत्थर वाले पड़ाव के चौरस्ते में दुरगुली पण्डित्याणा के पाँव ऐसे टिके, कि वह दिन था, आज का दिन है—धौलछीना में ही रहे। बाद में, दुरगुली पण्डित्याणा के बारे में यह

तथ्य, कि वह दो साल नर्स की ट्रेनिंग भी कर चुकी है, लखनऊ के एक सिविल-अस्पताल में—तब सामने आया लोगों के, जब दुरगुली पण्डित्याण ने उत्तराखण्ड की तीर्थ-यात्रा पर जाती संन्यासिनी चन्द्रिका माता की—जो 'सदानन्दी माई धरमशाला' में टिकी थी, और पेट-पीड़ के कारण, तीर्थ-यात्रा के कारण, तीर्थ-यात्रा की सड़क की जगह, धौल-छीना के घने जंगल का रास्ता, और वह भी रात के अँधेरे में ही, पकड़ रही थी—प्रसूति इन शब्दों के साथ कराई—"अरे, सिर्फ जोग्याणी और बर्मचारिणी[1] बनने से क्या होता है ? तन-मन को वश में रखना कोई मामूली बात नहीं है । यह माता[2] जंगल की तरफ जा रही थी, नौराट-कौराट[3] और अँ-अँ-अँ करती हुई, तो मेरी नजर संजोग से ही पड़ गई। मैंने पहले तो यही सोचा कि माता के पेट में कुछ पीड़ उठ गई है और जंगल की तरफ टट्टी-पिसाब फिरने को जा रही है। खाने-पीने में कोई वस्तु हजम नहीं हुई होगी। यह कहाँ मालूम था मुझे, कि यह पेट-पीड़ इस माता को सच्ची-मुच्ची की माता बनाने के लिए उठी हुई है !··· वह तो, बाद में, मुझे दया-जैसी आ गई, कि अन्यारी रात में बिचारी कहीं गिर जो पड़ेगी।···अब क्या बताऊँ, बबारे, पीछे से टौर्च लेके जो पहुँची, तो क्या देखती हूँ, कि एक खड्डे में उल्टी पड़ी हुई अपने ही हाथों से अनाड़ीपन्ना करने में लगी हुई है और 'अरे मैया रे, बाबा रे' कर रही है··· मैंने इसको पकड़कर उठाया और—मन-ही-मन कहा, कि बाबाजी ने तुझ जोग्याणी को दरसली में मैया ही बना के छोड़ दिया !—धरमशाले में लेकर आई।"

और चन्द्रिका माता से निकले हुए मृत शिशु की ओर इशारा करते हुए, दुरगुली पण्डित्याण ने रोष और संताप-रुँधे कण्ठ से कहा था—"इसके लिए तो यह सदानन्दी माई धरमशाला ही डिलीवरी-रूम हो

---

१. जोगन और ब्रह्मचारिणी । २. संन्यासिनी को 'जोग्याणी' भी कहते हैं और 'माता' भी । ३. कराहना ।

गया !··· दुष्ट पापिणी कहीं की, बीज ने तो बोट[1] बनना ही था। अपने ही हाथों से निकालने में लगी हुई थी, कोमल प्राणी ठहरा, कचक लग गई। वो तो इस पापिणी के प्राण बचने होंगे, जो मैं पहुँच गई। नहीं तो बच्चा पेट के अन्दर ही मरता और यह भी थोडी देर में वहीं लामतूम्बा टाँगें चौड़ी कर देती !···छोटे थोकदार हो, इस जोग्याणी का काला मूख करने के बाद, मैं खुद भी इस धरमशाले को सदा के लिए नमस्कार करने वाली हूँ। राम भजो, ऐसी पापिणी जगह में कौन रहेगा। हत्त तेरे की, धरमशाला क्या हुआ, जोगी-जोग्याणियों का नरसिंग-होम[2] हो गया !··· तुम, छोटे थोकदार हो, इस मिट्टी की पुन्तुरी[3] को कहीं खड्ड में दबवा दो !···"

—और, दूसरे ही दिन, दुरगुली पण्डित्याण ने 'सदानन्दी माई का धरमशाला' छोड़ दिया। उसके कुछ दिनों बाद ही, थोकदार रतनसिंह गुजर गए। जमनसिह—अपने पिताजी की गति-क्रिया करके, पीपल छूने के बाद—स्वयम् थोकदार बन गए। दुरगुली पण्डित्याण ने, कुछ दिन मेहनरसिह की किरायादारिन रहने के बाद, अपने लिए वही ऊपरवाला सिगरेट-सलाईनुमा घर बनवा लिया।

इसके बाद, थोकदार जमनसिंह का मँझला बेटा—करमसिंह दुरगुली पण्डित्याण के हाथों में आया। बस, उसके बाद ही, धौलछीना में होने वाली प्रसूतियों का काम दुरगुली पण्डित्याण के हाथों में आ गया। गाँव की ही एक स्वै (दाई) जो बिर्जेसिह की माँ थी, उसकी पूछ उसके इस प्रश्न के बावजूद एकदम घट गई, कि 'अरे, जिसके खुद कभी पाथर टूट के दो नहीं हुए हों, जिसने बालक के नाम पर कभी भी खून-पिण्ड धरती पर नहीं छोड़ा हो, भला वह क्या स्वैगिरी कर सकती है ?'

दुरगुली पण्डित्याण के हाथों में जस भी ऐसा रहा, कि कम-से-कम बिना धौलछीना के खेतों की फसल चखे, कोई भी बालक नहीं गुजरा।

---

१. वृक्ष। २. नर्सिंग-होम। ३. गठड़ी।

दूसरे दुरगुली पण्डित्याण की मीठी सरस्वती ने भी उसे लोगों का आत्मीय बना दिया। हँसी-ठट्ठा करने में वह नम्बर एक मानी जाती थी। और उसके इस रसदार-स्वभाव का लाभ धौलछीना के अधिकांश लोग उठाते रहते थे, कि 'गुड़ की भेली के बाहर चिपकाए हुए कागज को चाटने से भी थोड़ी-बहुत मिठास मुख में आ ही जाती है !'

दुरगुली पण्डित्याण ने एक दिन कहा था, कि 'तन-मन को वश में रखना कोई मामूली बात नहीं है !'—मगर, खुद उसने न-जाने कैसे अपने तन को ऐसा वश में रखा—और, न-जाने, किस ढँग से रखा—कि लोग थोकदार जमनसिंह और मेहनरसिंह के साथ उसकी सटवट[1] की चर्चाएँ और 'झुटुका'[2] लगने के बाद बहती-गंगा आँखों से दिखाई देने की आशा करते रह गए, मगर दुरगुली पण्डित्याण एक-से-दो नहीं हुई।

यों, कुछ समय तक, दुरगुली पण्डित्याण के अतीत और वर्तमान की अक्षर-आरती तो सदैव उतारी ही जाती रही थी और उसके भविष्य की आनुमानिक-चर्चा के घुघुत (फाख्ते) भी धौलछीना और उसके पार्श्व-वर्त्ती क्षेत्रों में उड़ते रहे थे—"अरे, जिस तरह चिडिया घोंसले में बैठी, उसी तरह उड़ भी जाएगी। देशी कैलाशवासियों की यात्रा के रास्ते में धौलछीना भी एक ऐसा पड़ाव है, जहाँ आते-जाते यात्री विश्राम करने को ठहरते रहते हैं। सदानन्दी माई की धरमशाले में उनके लिए बन्दो-बस्ती भी अच्छी रहती है। धौलछीना-जैसी गँवाड़ी-पहाड़ी जगह में उस दुरगुली पण्डित्याण का मन कितने दिन रमेगा; जो लखनऊ में नरसींग होम के साथ ऐश कर चुकी है !"

—लोगों ने दुरगुली पण्डित्याण के मुख से ही सुना था, कि वह कुछ दिन लखनऊ के एक 'नर्सिंग-होम' के क्वार्टर में रही थी। 'क्वार्टर' को, क्वाटर के रूप में ही सही, सभी लोग जानते ही थे, सो चर्चा यह चली, कि 'अरे, यह पण्डित्याण अपनी विधवावस्था में लखनऊ के नरसींग

---

१. अनैतिक यौन-सम्बन्ध। २. अवैध-गर्भ।

होम के घरबार जाकर, बहुत दिन उसके क्वाटर में भी रही। बामुणी होके जिमदार के घरबार गई !···छिः···'

मगर, जिन थोकदार जमनसिंह से दुरगुली पण्डित्याणा की सटवट बताई जाती थी, उनके नाती रमुवा-पिरमुवा आदि भी दुरगुली पण्डित्याण के हाथों से उतरे, मगर औरों की लगी आशा के विपरीत दुरगुली पण्डित्याण खुद जनम-वैली[1] ही रह गई, तो चर्चाओं के अधिकांश घुघुत—उड़ते-उड़ते थककर—न-जाने कहाँ लोप हो गए··· दुरगुली पण्डित्याण का मसखरापन बना ही रहा।

धौलछीना में कुछ महीने रहने के बाद ही, दुरगुली पण्डित्याण ने अपने नए घर के लम्बे गोठ में एक भैंस बाँध ली थी और उसका दूध मेहनरसिंह और कल्याणसिंह की दुकानों में लगा दिया था, ताकि लोग यह न कहें, कि 'फालतू पड़ी-पड़ी जवानी का मजा लूट रही है !'

यों हँसी-ठट्ठा करने में न दुरगुली ने कभी और लोगों का लिहाज रखा, न हँसी-ठट्ठा करने वालों ने ही उसके इस स्वभाव का स्वाद लेने में कुछ ढील दिखाई। प्रसूति कराती थी दुरगुली पण्डित्याण, सो विभिन्न यौन-चर्चाओं का आनन्द भी उसके साथ ले लिया जाता था। लेकिन, निस्संकोच यौन-चर्चाएँ और ठिठोलियाँ करते रहने पर भी, दुरगुली पण्डित्याण की चरित्र-चलनी के छेद किसी को प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दिए, तो यों सन्तोष-जैसा कर लिया गया, कि 'भैंस्याणी पण्डित्याण की तो अब यह हालत हो गई है, कि 'जतिए (भैंसे) लाख सूँघते और अँ-अँ करते रहें, भैंस को तो बारवाली (मौसम पर) आना नहीं है !'···'

आज भी दुरगुली पण्डित्याण का दूध मेहनरसिंह और कल्याणसिंह के बेटों—चनरसिंह और बिजेसिंह—की दुकानों मे लगा हुआ है। उसी एक भैंस की जड़ आज तक चली आ रही है।

० ० ०

1. जन्म-बाँझ।

हरकसिह ठाँगर-गेंठते मिट्टी सने हाथों को आपस में रगड़ते हुए, दुरगुली पण्डित्याण के घर पहुँचे, तो आँगन-बँधी भैंस को हथियाते-हथियाते[1], दुरगुली पंडित्याण ने पूछा—"केहो[2], हरकसींगा ? मैल कौ[3], आज कहाँ को ?"

"पैलागन बौराणिज्यू[4] !···द, 'प्यासे की दौड़ पानी के धारे तक' कह रखा है···और कहाँ को दौड़ होगी ?" कहकर, हँसते हुए, हरकसिह ने थोड़ी देर तक पंडित्याणी के सुगोर मुख-मण्डल पर अपनी चिम-चिमाती आँखों को जमाए रखा।

दुरगुली पंडित्याण नौनी-लगे एक हाथ से भैंस के थनों को हथियाती रही, दूसरे हाथ की हथेली को आइने की तरह दिखाती हुई, मुस्कुरा-मुस्कुराकर बोली—"मैल कौ, हो गया, हो गया, हो हरकसींगा ! ऐसी बरसात से भीगे पिनालू के पत्तों-जैसी तर बातें तुम्हारे सूखी भिंडी-जैसे होंठों पर शोभा नही देती हैं। प्यास से फड़फड़ाते हुए पानी तक पहुँचने वाले के पाँवों की चाल ही अलग होती है···कुछ नहीं हो, हरकसींगा, आखिरी बखत में तुम भी रँग में आ रहे हो अब। 'जब फल-फूल खतम हो गए, उस समय बानर बोट में चढ़ा' वाली मिसाल तुम्हारी भी हो रही है। मैल कौ, सुबह-सुबह जलेबी की खाली पुड़िया-जैसी बातें रहने दो अब। खास किस मतलब से आए हो, हरकसींगा ?"

० ० ०

---

१. भैंस के थनों में उँगलियों से मसारना, ताकि थनों में दूध उतर आए। इस क्रिया को 'पुँगराना' भी कहते हैं। 'पुँग' कुमाउँनी में अँकुर को कहते हैं। जब भैंस स्वेच्छा से दूध छोड़ देती है, तभी थन पुँगराते (अँकुराते) हैं। २. क्यों हो ? ३. मैंने कहा (एक 'तकिया-कलाम')। ४. ठाकुर ब्राह्मणियों को और डूम (शूद्र) ठकुरानियों को 'बौराणिज्यू' कहती हैं, जो 'बहूरानी जी' का अपभ्रंश है। 'मालकिन' के अर्थ बोध से सम्पृक्त सम्बोधन 'गुसैणी' है, जो गुँसाई (स्वामी)—पत्नी 'गुँसाइनी' का अपभ्रंश है।

हरकसिंह समझ गए, कि पंडित्याणी ने जगह पर चोट पहुँचाई है।

तरुणाई जाग रही थी, कि चौमसिया-जरों[1] से टूट-टूटकर, उन्हीं दिनों घरवाली रुपुली सो गई—धौलछीना की तलहटी की काफलीगैर[2] घाटी की सबसे निचली नुक्कड़-जैसी गहरी नींद, जहाँ ऊपर से लगाई हुई पुकार पहुँचती ही नहीं है।

रुपुली के बिछोह का दुःख हरकसिंह को ऐसा व्यापा, कि वह उन्नीस-बीस के दरमियान की उमर थी, और यह—इसी संवतसर के बैशाख इकाईस पैट (इक्कीस गते) से लगा हुआ—सेतालीसवाँ चल रहा है। चित्त कुछ ऐसा चटका, कि मन में चस्सा चूक[3]-जैसा पड़ गया, कि उस प्रकार का सुख जो भाग्य में यदि होता, तो रुपुली ही क्यों छोड़ जाती? · और उस लौंडिया-उमर मे ही हरकसिंह के मन में एक बैराग (विराग)-जैसा जागा था, कि उस प्रकार के सुखों को जो अपना धर्म समझकर दे सकती थी, वह धर्मपत्नी रुपुली 'ठीक मिलाप के समय आँखों की ज्योति जाती रही'-जैसी करके, हरकसिंह का घर छोड़ गई, तो अब आगे अगर उस प्रकार के सुखों को—जिनकी चर्चा हरकसिंह ने भुक्तभोगी गृहस्थों से सुन ही रखी थी—पाने की चेष्टा करना अधरम ही होगा।

और, उसी वर्ष, जब धौलछीना की सैम-धूनी में बैसी[4] लगी थी,

---

१. चौमासे में व्यापने वाले ज्वर-विशेष। २. जिस गहरी घाटी में काफल-वृक्ष हों। ३. बहुत खट्टी खटाई। ४. एक धूनी बनी होती हैं, जहाँ गाँव वालों के संयुक्त-प्रयास से हर साल (या दूसरे-तीसरे साल) लोक-देवताओं का 'अवतार' कराया जाता है—लगातार बाईस-ग्यारह या—कम-से-कम—सात दिनों तक। 'बैसी' रात को ही लगती है। 'बैसी' के देवता भी विशेष होते हैं। 'जागर' के कुछ लोक-देवता 'बैसी' में अवतार नहीं ले सकते। 'बैसी' के कुछ लोक-देवता 'जागर' में अवतार नहीं लेते। (विस्तृत परिचय के लिए 'कुमायूँ के लोक-देवता' पढ़ें।)

हरकसिंह के विरागी-अंगों में नौताड़[1] देवता फूटा था—घि-रि-रि-रि हिं गोर्त्त-छोर्त्त···

बाद में स्नान-युद्ध[2] पिण्ड-पवित्र होने के बाद, हरकसिंह ने जो दाणियों का विचार करना शुरू किया, तो चारों ओर से 'ओहो, हरकसिंह के शरीर में तो साक्षात् पद्मासनी सैम ने औतार लिया है !' होने लगी। लगातार दश वर्षों तक हरकसिंह के शरीर के सैम देवता ने ऐसी धूम मचाई, कि दूर-दूर से भी श्रद्धालु जनों की दाणियाँ (मुट्ठी-भर-अक्षत्) हरकसिंह की सेवा में आने लगे—दाने-दाने का विचार कर देना हो, सैमराजा !

लोगों के आग्रहों को नकार कर, हरकसिंह ऐसे सैम-भक्त बने, कि, हाट-जोगी, घाट-जोगी बहुत-से और भी होते थे, वह घर-जोगी बन गए। बिना गृहणी की गृहस्थी भी चल रही थी, खेती-बाड़ी भी सँभल रही थी। पर, हरकसिंह के माथे का श्रीखण्ड-त्रिपुण्ड अपने स्थान पर अचलायमान ही था—बस, अब जिंदगानी के बाँकी चार दिन सैम-देवता की भक्ति में ही गुजार देने हैं !···

धीरे-धीरे हरकसिंह बाल-वरमचारी[3] कहलाने लग गए। उनको बाल-बरमचारी की उपमा दिलाने में उस समय की रुपुली की जोड़ीदार गोपुली का हाथ रहा—"दरे, रुपुली विचारी की मेरी बड़ी जोरदार संगत रही। न कभी उसने 'गोपुली दिदी से फलानी नहीं कहनी चाहिए,' सोचा और न कभी मैंने 'रुपुली बैणी से ऐसी बात छुपा कर रखनी चाहिए !'—शँद, चौदवाँ उसे लगा ही हुआ था ? जैसा कि अपनी जोड़ी

---

१. जिस व्यक्ति के शरीर में नया-नया देव-अवतार हो, उसे 'नौताड़ का डँगरिया' कहते हैं। २. नौताड़ के डँगरिया का पूर्णावतार अलग से कराया जाता है, और उसे अन्य पुराने स्नान-शुद्ध डँगरिया लोग अक्षत-भभूत-गंगाजल-अस्नान कराते हैं और गुरु-मंत्र देते है।···
३. बाल-ब्रह्मचारी।

और संगत-सोहबत की औरतों में होता ही रहता है, मैं भी—चिंगोटी काट-काट के, मुख मस्यार-मस्यार के और कमर में कुतकुती लगा-लगाके—उसके मन का अन्त लेती रहती थी, कि 'के वे, रुपुली, हरकसिंह से सटवट हो गई है, या नहीं ?'···एक दिन उसकी पूछ-पूछ के हुलिया ढीली कर डाली, तो विचारी—द, बड़ी मोहिल मन की थी रुपू !—मुंह से शरम के मारे जिलेबी की बक्खर-जैसी राल[1] गिराने लगी, 'जो झूठ कहता हो, वह अपनी उमर नहीं भुगते, गोपुली दिदी, तुम्हारी कसम—मेरे पराण काँपते हैं, और ऊँ, शैद मेरे मन के दुःख को जान जाते हैं, खाली थोड़ी खेल-जैसा करके, अलग चले जाते है !'···मैं कहती हूँ, परमेश्वर हो !··· जैसा अभागी कपाल तूने रुपुली छोरी को दिया, मेरे किसी सात जन्म के अपनी इजा के मुस्यार[2] दुश्मन को भी मत देना—दिगौ बिचारी सुहागिन होते हुए भी क्वाँरी ही चली गई।"···और फिर कुछ वर्षों बाद गोपुली काकी ने ही यह बात भी कह दी, कि 'बिचारे हरकसिंह भी बाल-बरमचारी ही रह गए है !'

—इसी सिलसिले में हरकसिंह को याद आई सैम-अवतार के ग्यारहवें वर्ष की बात, जब गोपुली की दाणी, विचार के लिए, उनकी भभूत थाली में आई, केशरसिंह की ओर से, कि 'परमेश्वर हो, तेरा न सही, तेरे ही दो गुरु भाई गोल्ल-गंगनाथों का गुरु-सेवक मैं भी बरसों से हूँ। पर, इन दोनों देवों के दरवाजे मेरे लिए एक प्रकार से बन्द ही जैसे रहे हैं—घरवाली को कोई फूल-फल तो फूटता नहीं है, उलटे हजार किसम के छम-विछम होते रहते है !···आज काफलीगैर का मसाण[3] लग गया है, रे, आज फलानी धार का तुड़तुड़िया-भूत लग गया है, आज फलाने जंगल की विध्वंसी जोगन की पकड़ हो गई है !···महापराक्रमी पद्मासनी सैमराजा हो, दाणी का विचार कर देना—दुःख हर लेना, सुख भर देना, सुखियारी राह दे जाना, हो परमेश्वर मेरे ठाकुर बाबा !'

---

१. लार। २. माँ का खसम। ३. श्मशान-वासी पिशाच।

—नर्त्तित-आन्दोलित अंगों से देव-यात्रा पूरी करते हुए, हरकसिंह का दागी-विचार को थमा-थमा-सा शरीर, एकाएक, पाँव के अँगूठों से लेकर सिर की गोखुरी-चुटिया तक कम्पायमान हो उठा था—धि-रि-रि-रि-हिंगोर्त्त···"सुन रे, साहूकार बाबू, दागी के विचार से क्या होता है ?···गुरु की आदेश, गुरु की अलख !···गवाहों की हाजिरी से मुकदमों के फैसले कैसे हो सकते हैं ? मुद्दई हाँजिर होना चाहिए, रे !···आह्दे-ए-ए-श्श !"···

और हरकसिंह-केशरसिंह के बीच में भभूत का एक गोला फूट गया था ··हिंगोर्त्त-छोर्त्त—और, मुद्दई गोपुली के देव-दरबार में उपस्थित होने तक, हरकसिंह ने चावल के मुट्ठी-दानो को कई बार आकाश की ओर उछाला था—कि, गोपुली भौजी की कोई संतान नही यह भी सच है और गोपुली भौजी को जोगन-मसान भी अक्सर व्यापते रहते है, यह भी मानी हुई बात है !···खैर, मेरे आँग के सैम-देब के आगे, देखता हूँ, कौन मसान ठहरता है !···अल्ल-अ-अ-ख !·· आह्दे-श्-श्श ! ·

और, जब जलती-धूनी के तेज प्रकाश में उन्होंने भभूत व अक्षतों की हुँकार गोपुली के अखंडित बासमती के दाने-जैसे लम्बे-गोरे मुख पर मारी थी—हिंगोर्त्त !—बाबिल घास-जैसी लम्बी छड़दार, चुतरौले की पूँछ-जैसी मुलायम गोपुली की लटी को पकड़ कर, उसे धूनी-प्रदक्षिणा करवा दी थी—छोर्त्त !···और उसके कलमी आम-जैसी बनावट के कपोलों पर भभूत-हस्त फेर दिया था ··धि-रि-रि-रि···हिंगोर्त्त··· ओहो, वह धूनी की प्रचण्ड-ज्वाला थी, वह गोपुली भौजी का धूनी के अंगारों की रँगत को भी मात कर देने वाला आबदार मुख-मण्डल था··· धि-रि-रि-रि····बाबिल-जैसी लटी···हिंगोर्त्त···चुतरौले की पूछ-जैसी मुलायम लटी···छोर्त्त···अखंडित-बासमती-जैसी बनावट का चेहरा··· आह्दे-श्-श !···कलमी-आम-जैसे कपोल कि भभूत-हस्त क्या फेरा, रस से राख भी गीली पड़ गई···धि-रि-रि-रि···उस तरफ से गोपुली के

आँचल में डालने को संतान-फल[1] हाथ में लिए केशरसिंह हाथ जोड़े खड़े रहे थे—"परमेश्वर हो, दाहिने हो जाना। सूखी डाल हरी कर देना, रीति डाल फल लगा देना"…हिगोर्त्त—

और इधर ढोल की पाग गले में डाले पैंया के दाएं पतले, बाँए मोटे सोंटो को सपसपाता उदेराम दास[2] था—किनान्-किनान्-किन्-क्यानाकुटी धिनान्-धिनान्-धिन्-ध्यानाकुटी …हेर सैमराजा, महाराजन के राजा !… चमत्कारी-कल्याणकारी-राखधारी देवता ! गुरु का ज्ञान, धूनी का ध्यान समेटा, चलायमान चिमटा, तिमुखिया त्रिसूल, अष्टमुखी-ढाल गेंडाचाम की[3]…ओहो रे, मेरे महापराक्रमी गुरु के मुण्डे, दैत्यवंश निर्वंश कर दिया, तो काफली गैर का मसान किस चूड़ी-चमार की गिनती मे आता है ?…साध दे, चरणो का चलुवा, शीश का झकरुवा चाकर बनादे काफलगैरिया मसान, तुड़तुड़ियाभूत[4] को—विध्वांसी जोगन की सतफेरिया अबाल-बबाल लटियों को उसके चुड़ेल-मुण्ड से प्याज के छिलकों जैसा अलग उतार दे, महाबली पद्मासनी सैमराजा !…"

—और सैमराजा के डँगरिया (अवतार-साधन) हरकसिंह ने काफलिया-मसाण, तुड़तुड़िया भूत और विध्वंसी-जोगन की सताई हुई गोपुली भौजी को अपने गुरु-आलिंगन में ले लिया था—आह्-श-श-श्श ! गुरु की आह् श-श-श्श !…

और गोपुली के कंठ से भी कांसे की थाली-जैसी धूनी के पार्श्ववर्त्ती पथरौटों पर गिर पड़ी थी—"अलल-अ-क्ख ! गुरु की अल-ल-लल-क्ख !" ‥

---

१. लोक-देवता जब प्रचंड-अवतार की स्थिति ग्रहण कर लेते हैं, तब नीबू या दाड़िम उनके हाथों में दे दिया जाता है, जिसे लोक-देवता संतान-प्रार्थिनी निस्संतान-औरत के आँचल में डाल देते हैं—इसे 'फल देना' कहते हैं। २. देवता का सेवक, उसकी अवतार-गाथा का गायक। ३. गेंडे के चमड़े की। ४. जिस स्रोत का पानी तुड़-तुड़-तुड़-तुड़ टपकता हो उसके आस-पास रहने वाला भूत ।

गुरु-आलिंगन छूटने पर, हरकसिंह ने देव-वचन दिए—"सुन, रे साहूकार बाबू ! नही तो काफलिया-मसाण, रामा !···नहीं तो तुड़तुड़िया भूत की पकड़, रे !···हिंगोर्त्त, हाई रामा, हाई शिवो—सुन, रे साहूकार बाबू ! नहीं तो विध्वांसी-जोगन, रे धनी !"

"परमेश्वर हो, न काफलिया-मसाण, न तुड़तुड़िया-भूत और न विध्वांसी जोगन—"—केशरसिंह ने हाथों में थमा संतान-फल हरकसिंह की ओर बढाया था—"फिर ये किसके छम-बिछम[1] चल रहे है, कि बोए खेत में फसल नही पकी; आँख उजियाली, गोद हरियाली नहीं हुई, मेरे परमेश्वर—कि, केले की फली केले के गाब में ही सूख गई, सिर्फ पात-ही-पात फरफराते रह गए !"

घि-रि-रि—हिंगोर्त्त···घिनान्-घिनान्-घिनान्·· हरकसिंह के शरीर में आमूल-चूल नागफली के जैसे भुत्ते (काँटे) खड़े हो गए—"आहे-इ-इ-श्श !···सुन, रे साहूकार बाबू !···भूतांगी लोई व्यापा होता, तो मार चिमटे-ही-चिमटे साबर करके भगा देता। स्यूनारी[2] के अँगों में तो···हिंगोर्त्त···हाई राम, हाई शिवो···गुरुभाई गोल्ल की बैठक लगी हुई है !···पूर्णावतार कराके, अस्नान-शुद्ध करा लेना, सब छम-बिछम अपने आप दूर हो जाएँगे, रे साहूकार धनी !···

और, उस रात वरदानी भभूत-टीका लगाकर, हरकसिंह ने गोपुली को विदा कर दिया था—आहे-इ-इ-श्श !···

गोपुली को विदा होते देख, केशरसिंह ने संतान-फल हरकसिंह की ओर बढ़ाया था—"परमेश्वर हो···वरदानी-फल आँचल में डाल के आगे

---

१. चमत्कार पूर्ण-घटनाएँ। २. लोक-देवताओं के द्वारा महिलाओं को 'स्यूनारी' और पुरुषों को 'स्योंकार बाबू' या 'स्योंकार धनी' कहकर संबोधित किया जाता है—याने, जिस व्यक्ति के शरीर में लोक-देवता अवतरित होते हैं, वह दूसरों को ऐसे संबोधित करता है। 'स्यूनारी' सुनारी और 'स्योंकार' साहूकार का अपभ्रंश है।

की आशा भरपूर दे जाना···"

हरकसिंह दोनों हाथों को सिर मे ऊपर उठाकर, उनकी उँगलियों की कैंची फँसाकर, प्रचण्ड-स्वर में गुरू-वाणी 'अल्लख' की पुकार मारते हुए, धूनी के उत्तरवर्त्ती-पथरौटों की ओर यह कहते हुए सरक गए थे—"हरे रामो, हरे शिबो !···सुन, रे भाई, साहूकार बाबू ! सुन ले तू मेरी यह धरम की बात !···सुन, सुन, सुन, रे धनी ! हाई रामो-रामो, हाई शिबो-शिबो !···स्यूनारी के आँग में गोल्ल-अबतार की गगा-धारा फूटी है, रे साहूकार !···उसमें अब मछली-मेंढक डालने वाला मैं कौन होता हूँ !··· आद्दे···श···श···श्श !······"

हरकसिंह को, माथे-ऊपर उठाए हाथों की उँगलियों की कैंची[1] फँसाए, धूनी के उत्तरवर्त्ती-पथरौटों की ओर सरकते देखा, तो देवदास उदेराम ने भी कैलाश-प्रस्थानी-औसाण[2] दिया—"हेर, बेला हुई अबेर !·· मेरे महादेवता, पद्मासनी सैमराजा !···नर-लोक में अबतार लिया, धरती धरमराज को धन्य-धन्य कर गया। गोठ की गैया, गोदी के बालक, घर की मैया को कल्याण मुखी हो गया—नाचा-कूदा, नर-बानरो को मंगल-मुखी हो गया, मेरे आसनधारी देवता, अस्तमुखी-कैलाशवाशी हो जा, कि इस चन्द्रमुखी-रात्रि-वेला में अपनी अवतार-गाथा के अन्तिम अक्षत-आँखरों

---

१. अँगुलियों की कैंची फँसाए, माथे से ऊपर हाथ ले जाकर, "आद्देश' कहते हुए—लोक-देवता अपने-अपने लोकों को प्रस्थान करते हैं, लोक-बोली में इसे 'कैलाशवासी' होना, या 'घरी' जाना—अपने घर को जाना—कहते हैं। 'जागर' का एक 'औसाण' यों है—'निगाली को माण-नाची-कुदी बेर, आबा कैलाश लै जाण, मेरे देबा घरी जाण।'—याने, मेरे देवता, अब नाच-कूद (नर्तन-आन्दोलित अंगों से अवतार-पूर्त्ति) के बाद तुम कैलाश चले जाओ, अपने घर चले जाओ !···कैलाश को देवताओं का लोक भी कहा जाता है। २. लोक-देवताओं की अवतार-गाथाओं का छंद-विशेष।

को लगती समाधि, मुँदती पलकों में स्थान देकर, सबको दाहिने हो जा, मेरे स्वामी !······"

धिनान्-तिनान्-ध्यानाकुटी······

और, केशरसिंह के हाथों का संतान-फल हाथों में ही रह गया—"जो तेरा हुकुम होता है, परमेश्वर मेरे !"

गोल्ल-अवतार को स्नान-शुद्ध कराने को केशरसिंह ने 'जागर' लगाया, तो उसी 'जागर' में गोपुली के शरीर में गंगनाथ-भाना[1] ने भी अवतार ले लिया। एक लाभ केशरसिंह को यह हुआ, कि महीने में दो-चार बार किसी-न-किसी के यहाँ देव-अवतार कराने के लिए जाना ही पड़ता था, सो अब गोपुली भी साथ जाने लगी—जगरिया[2]-डँगरिया[3] दोनों घर के ही हो गए। देव-अवतार कराने वाले साहूकार बाबू के घर में घी से चुपड़ी रोटियाँ, मसालों से तर साग मिलता ही था, ऊपर से कुछ टीका-पिठाँ भी मिल जाता था।

बस—हरकसिंह के शरीर में वह सैम देवता के अवतार लेने का ग्यारहवाँ वर्ष था, वह गोपुली भौजी के शरीर में त्रिदेव—गोल्ल-गंगनाथ और भाना—अवतारों का जागना था; वो हरकसिंह की और उसकी गुरु-भेंटें थीं, जिनमें हरकसिंह अपने भभूत-हस्तों को गोपुली भौजी के कलमी-कपोलों पर फेर देता था—आह्···ऽ···ऽ · ऽग !······

—और उस बरस का यह बरस है—हरकसिंह बाल ब्रह्मचारी

---

१. लोक-देवता-दम्पत्ति। २. लोक-देवता का 'जागर' लगाने—जागरण कराने—वाला व्यक्ति-विशेष। जगरिया का वाद्य-विशेष 'हुड़का' होता है। ढोल शिल्पकार-वर्ग के लोग ही बजाते हैं। जब विवाहादि शुभ अवसरों पर ये लोग ढोल-दमू बजाते हैं, तो ढोली कहलाते हैं, और जब लोक-देवताओं का अवतार कराते हैं, तो 'दास' कहलाते हैं।—(याने, देव-दास) ३. लोक-देवता जिस व्यक्ति-विशेष के शरीर में अवतरित होते हों।

की सुस्ती को दूर किया—"द, पंडित्याण भौजी ! 'फल रसीला, टेस्ट-दार—मगर, लगा दूर पेड़ की टुक्की मे, अपनी पहुँच से दूर—यार खाने वाले, तू मजबूरी का मारा, हसरत-भरी नजरों से देखता रह गया !' वाली मेरी भी हो रही है, तुम्हारे आगे । ई हो, पंडित्याण भौजी, दही की ठेकी जमी मलाईदार, घर-बिल्ली का कहीं पता नही, मगर बन-ड़ड़ वा[1] भी भूख मारने से लाचार—तुम्हारे मतकाकड़ी-जैसे दिन-पर-दिन और ज्यादा मिठास पलड़ने वाले जोबन के आगे तो धौलछीना के हर शख्श की कुछ ऐसी ही हालत हो जाती है !···हरेहर, ठीक है, कि नहीं—दुरगुली भौजी ? 'वार के कोढ़ी की पार के कोढ़ी को नामबराई' जैसी तुम भी करती हो । खुद तो यह हालत रही, कि ऐसा बगीचा एक यही देखा, कि जिसके फल न नरो के हाथ आए, न बानरों ने चखे !··· और सैंमावतारी हरकसीग का अखडित-बर्मचर्य कलेजी में कुरकुरी-जैसी लगा रहा है !······"

हरकसिंह से इतने तगडे उत्तर की आशा नहीं थी, दुरगुली पडित्याण को । उसके घुटनों-बीच दबी तौली में दवाँ-दवाँ गिरती दूध-धार कुछ लड़खड़ा-सी गई ! थन अँगुलियों में अटकते-से लगे ।

अपनी इस सफलता से हरकसिंह को बड़ा सुख मिला और पूर्वापेक्षा अधिक विनोदपूर्वक बोले—"पडित्याणी भौजी, नदी के पत्थरों के ऊपर घन की चोट, पत्थरों के नीचे छिपी मछलियों को मारने के लिए मारी जाती है । उडियार[2] के बाहर धुँवा उसके अन्दर के छेदों में छिपे हुए सौलों[3] को मारने के लिए लगाया जाता है ।···याने, बाहर से भी अक-सर चोट अन्दर की तरफ मारी जाती है । खैर, बाहर से जो चोट अन्दर को मारी जाती है, उसको तुम क्या समझोगी, पंडित्याण भौजी ?···खैर, 'अखरोट की दाणी, छिलकों के भीतर दानेदार भुट्टा होता है, यह माया पुरानी !' कह रखा है । और जहाँ तक मेरे यहाँ किस

---

१. बन-विलाव । २. खोह । ३. स्याही जानवर ।

कार्ज-विशेष से आने का सवाल है, बिना मतलब-विशेष की कोई चीज दुनिया में होती ही नहीं है !···अब, पंडित्याण भौजी, तुम्ही ने यह जो दो टाँगो के बीच में गोल-गोल तौली अटका रखी है और उसके अन्दर लम्बी-लम्बी दूद की छरैंकें मार रही हो, तो यह भी तो एक कार्ज-विशेष ही है न ?"

"हो गया, हो हरकसीग, हो गया !"—रोषपूर्वक दुरगुली पंडित्याण बोली। वह कुछ तो व्यंग से तिलमिला उठी थी, कुछ आज शनिश्चर का दिन था और कुछ भैंस दुहने में बाधा पहुँच रही थी। इस पर भैंस ने एक लात ऐसी छटकाई, कि दूध की तौली तो घुटनों पर से गिरते-गिरते बची, मगर दुरगुली के दाँए घुटने में चोट लग गई।—हरकसिह को इस पर हँसी फूटी, तो पंडित्याणी का क्रोध और उबल गया—"मैंल कौ, भैंस मुश्किलों के साथ पँगुरी हुई है, ऐसी-तीर-पूर की बेमतलब बातों से उखड़ जाएगी, तो मेरा दुकानों में दूध देने का हर्जा हो जाएगा। तुम्हारा क्या है ? निगरगंड मोटा, नफा-न-टोटा। 'न आगे आनसींग, न पीछे पानसीग—टीकमसींग की नजर अपनी ही टाँगों तक !' वाली हालत है।···बस, बस, मैंल कौ, रहने दो अब अपना सैंम-चरित्तर !···दुरगुली पंडित्याणी को तुमने समझ क्या रखा है ?"

'समझ क्या रखा है ?' की अभिव्यक्ति के लिए, दुरगुली पंडित्याण ने थनों पर से एक हाथ हटाकर, हरकसिह की ओर, बिल से बाहर निकलते हुए साँप की तरह, बढ़ाया—"जरा बखत बिलमाने को हँसी-ठट्ठे से बोल देती हूँ, कि अरे चार दिन की अब जो जिन्दगानी है, उसे हँसी-खुशी से ही काट देना है, तो तुम धौलछीना के बिना गुँसाईं[1] के साँड लोग दुरगुली को···की ही तैयारी करने लगते हो !···मैल कौ, अपने अखंडित-बर्मचर्य वाले सैंमावतार को अपनी भानावतारिणी गोपुली के लिए ही सँभाल के रखे रहो—दुरगुली पंडित्याण तो ऐसे चोर-चमार

---

१. मालिक।

धर्मचर्य पर थूक के छोड देती है !…"

कुछ तो गोपुली के अप्रत्याशित-लांछन से और कुछ सैमावतार और अखंडित-ब्रह्मचर्य के अपमान से—हरकसिंह का सारा शरीर रोष से झन-झना उठा—"हिगोर्त्त · !…पंडित्याणी स्यूनारी, नर के ठट्ठे में देबो की इन्सल्ट करती है ?…छोर्न…अन्यायी-अज्ञानी बचन बोलगी, अपने बुरे हालों को भुगतेगी !…खबरदार'…छोर्त्त…"

हरकसिंह के कम्पायमान शरीर को देखकर, भैंस ने अपने कानों को खड़ा कर लिया था, उनमें 'हिंगोर्त्त-खबरदार्र-छोर्त्त' की प्रचंड ध्वनि गूँजी, तो उसने, 'बाँई-बाँई' करते हुए, कूदना शुरू कर दिया।…दुग्गुली पंडित्याण पीछे की ओर औंधी गिर गई और दूध की अध-भरी तौली, दुरगुली पंडित्याण की तरह ही उल्टी हो करके, घुटनों के बीच अटक गई—सारा दूध पंडित्याणी की जाँघों की ओर बह गया।

इस आकस्मिक-घटना से, हरकसिंह हड़बड़ाए और जल्दी से दुग्गुली पंडित्याणी को सँभालने को लपके, कि कहीं भैंस पाँव न टिका दे। हड़-बड़ी में उठाते समय, कुहनी की जगह, दुरगुली के बाँए स्तन को पकड लिया। दुरगुली पंडित्याण ने सँभलते-सँभलते हरकसिंह के मुँह की ओर थूक दिया—थू पापी !……

"क्यों हो, हरकसीग ? क्या कर रहे हो यहाँ ?"—गोपुली काकी इस विचित्र-दृश्य को देखकर, साश्चर्य बोली—"वहाँ नरुलि ब्वारी को जोर की पीड़ उठी है, उस बिचारी के पराण जा रहे हैं। इधर तुम दुरगुली दिदी के साथ कुश्ती-जैसी खेल रहे हो !……"

"चुप रौ, गोपुली !"—सँभलकर खड़ी होती हुई, दुग्गुली क्रोध से काँपती हुई बोली—"ले जा, अपने इस हरामी अपनी माँ के मुस्यार[1] साँड को, और अपने ही साथ खिला खूब कुश्ती ! मैल की, इस हरामी का सत्यानाश हो जाए, कहाँ से सबेरे-सबेरे पिचाश[2]-जैसा मेरे पटाँगण

1. खसम। 2. पिशाच।

में आ गया। दरे, इसकी जनेऊ पत्थर पर रह जाए[1], इसका यह साँड-शरीर का फलिया गैर के मसाणघाट पहुँच जाए, नन्दादेवी के मन्दिर के साँड-जैसी डुक्क मार-मारकर मेरी पँगुरी हुई चौरी को बिछुरा[2] दिया। हट्ट हरामी, तेरी हिंगोर्त्त-छोत्त की ऐसी-तैसी मारूँ—तमाम दूद की छलरफोक कर दी। अब मैं तेरी गति में दूद कहाँ से लगाऊँ? ठैर, चोट्टे, अभी दातुली से चीरती हूँ तेरी जतिया-जैसी गरदन को!"

दुरगुली पंडित्याण आँगन-कोने में बने आले की ओर दौड़ी और वहाँ से दराती लेकर, हरकसिंह की ओर दौड़ी। मगर, बीच में ही, गोपुली काकी ने उसे पकड़ लिया—"शान्ति करो, दुरगुलि दिदी, शान्ति करो! आखिर तुमको इतना घुस्सा[3] क्यों आ गया है? क्या कसूर हो गया है, दुरगुलि दिदी?"

"मेल कौ, छोड़ दे, गोपुलि, छोड़ दे मुझको! इन धौलछीना वालों ने मुझको समझ क्या रखा है? मुँह लगाया कुत्ता, मुँह को चाटे। जरा अपने स्वभाव से लाचार-जैसी होके किसी से हँसी-ठट्टा कर देती हूँ, तो इसका मतलब क्या यह होता है, कि जिसको देखो वही दुरगुली पंडित्याण की···में घुसने को तैयार है!··· खबरदार, है कोई अपने बाप का बेटा, जो मेरे तन-बदन में जरा हाथ भी लगा देवे?·· मैल कौ, गोपुलि वे, तू जरा छोड़ दे तो मुझे।···"—गोपुलि काकी की बलिष्ठ बाँहों में बँधे-बँधे, दुरगुली पडित्याण एक साँस में कह गई और, छूटने के लिए, हलके-हलके झटके देने लगी। हलके-हलके झटके यह सोचकर, कि जोर लगाने पर गोपुली के हाथों से छूट ही गई, तो क्या हरकसिंह को दातुली मार सकेगी? मार भी देगी, तो परिणाम क्या होगा?··· पटवारी-पेशकार

---

१. जब आदमी मर जाता है, तो—यदि वह यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हुआ—उसकी पुरानी जनेऊ उतारकर (शव अर्थी पर रखने से पूर्व), उसे नई जनेऊ पहनाते हैं। पुरानी जनेऊ पत्थर पर रख दी जाती है। २. चौंका। ३. गुस्सा।

आएँगे, दुरगुली की कलाइयों में हथकड़ियाँ पड़ेंगी और सारे गाँव की बदनामी होगी।··· अन्ततः नाम दुरगुली पंडित्याण को ही पड़ेगे, कि धौलछीना में इसी दिन के लिए टिकी हुई थी क्या ?

गोपुली काकी ने एक बार आग्नेय-आँखों से हरकसिंह को आपाद-मस्तक निहारा, फिर पूछा—"क्यों, हो हरकसीग ? दुरगुली दिदी इतनी बेकाबू क्यों हो रही है ? छिः, तुम्हारे आँग में भी हर जगह सैम-जैसा आता ही रहता है।"

हरकसिंह एकदम खिसिया गए थे, कि गोपुली न-जाने क्या सोच रही होगी ? ·· और हल्ला-हो सुनके गाँववाले एकत्र हो गए, तो वो न-जाने क्या सोचेंगे, कि 'अच्छा बाल-बर्मचर्य पाला है, हमारे हरकसीग ने भी ! अरे, हम तो पहले ही कहते थे, कि जो कुत्ता जंजीरों से बँधा रहता है, वही ज्यादा कटखना भी होता है !'

हरकसिंह ने जरा इधर-उधर आँखें फेरीं, तो देखा—ऊपर से बिजे-सिंह और पोस्टमास्टर साहब नीचे को आ रहे थे, 'क्या हुआ हो, पंडित्याणज्यू[1] ?' कहते हुए—नीचे की तरफ से उमादत्त, फतेसिंह, किसन मिस्त्री और रमुवा आदि कई लोग ऊपर को चढ़े आ रहे थे—"क्यों, हो हरकसीग ? क्या हो गया ?"

हरकसिंह ने विवशता-भरी आँखों से गोपुली-दुरगुली की जोड़ी को देखा और खिसियाई आवाज में बोला—"द, गोपुलि भौजी, आज सबेरे-सबेरे न मालूम किस काने-लूले को देखा, जो पंडित्याण भौजी के मुख की चार चोखी-चोखी चीजें सुन रहा हूँ। 'फल तोड़ने की कोशिश में, पेड़ सिरपर गिरा,' इसी को तो कहते हैं। सब अपनी-अपनी तकदीर है।···च-च, दरअसल मैं बड़ा तकदीर हीन रहा हूँ, वे गोपुलि भौजी ! मेरे ही साथ के, उमर में दश-पनर बरस बड़े ही सही, अपनी जिन्दगी में कई चीजों की शौकीनी करके भी पाक-साफ ही रह गए। मगर, हट्ट,

१. पंडिताइन जी।

तेरी तकदीर साली के मुख में कुतिया पिशाब करे—मै बिगैर कसूर का कसाई बन रहा हूँ।···जरा पूछ, वे गोपुलि भौजी, तू ही इस पंडित्याण भौजी से, कि आज तक किसी किसम की लंफदरबाजियों में इसे इस हरकसींग की कोई सूरत भी दिखाई पड़ी ?···''

थोकदार और मेहनरसिंह का प्रच्छन्न नामोल्लेख किस इरादे के साथ किया है, हरकसिंह ने, दुरगुली पंडित्याण यह समझ गई थी। सो, उसका क्रोध थोड़ा-सा ढीला पड़ गया, कि इस चर्चा ने यदि ज्यादा तूल पकड़ा, तो अब तक राख के अन्दर दबे हुए कोयले ऊपर आ जाएँगे। जमनसिंह-मेहनरसिंह की पंडित्याणी से सटबट की खुफिया-चर्चा करने वालों को, खुली हवा में बोलने को यह अच्छा मौका मिल जाएगा और 'वन चरके तो गाई घर आ गई थी, गोठ-पड़ी पगुराते में जो बाघ के हाथ पड़ी !' हो रहेगी। सो, दुरगुली पंडित्याण ने सोच लिया, कि हरकसिंह को इस समय सिर्फ कायल करके छोड़ देना चाहिए। पूर्वापेक्षा धीमे-स्वर में, बोली—"अच्छा, हो हरकसीग, मैंल को, तुम ही अपने सैंम देवता की कसम खाके कहो, कि तुमने मेरा बाँया चुच[1] पकड़ा था, या नहीं ?"

अब हरकसिंह और सकपकाए, कि वह गोपुली सामने है, जिससे उन्होंने कई बार कहा है, कि 'सिर्फ एक तुझे छोड़ के, इस किसम के कामों को औरों के साथ करने की बात सोचने वाला भी अपनी ऊपर होती उमर न भुगते !···'

ऊपर-नीचे से आने वाले लोग समीप ही पहुँच गए थे, सो हरकसिंह एकदम धीमे स्वर में, पंडित्याणी के पास पहुँचकर, बोले—"दहो, पंडित्याण भौजी, जिसने किसी बुरी नियत से तुम्हारे चुच मैं हाथ डाला होगा, उसने अपनी महतारी के ही चुच में हाथ डाला होगा। वह तो भैंस के बिछुरने से तुम उताणी[2] हो गई थीं, मैंने जल्दीबाजी में इस घैंसियत से तुमको पकड़के उठाया, कि कहीं भैंस पाँव टिका देगी।···अब

---

१. स्तन। २. औंधी।

जल्दीबाजी में किसी गलत जगह पर हाथ पड़ गया हो, तो मै उसके लिए माफी चाहता हूँ।··· देखो, पंडित्याण भौजी, धौलछीना के चौड़ी जबान वाले लोग पटाँगण में पहुँच गए हैं, बेकार में सुई का साबल बनाएँगे। मुझसे अगर कोई कसूर हो भी गया है, तो इसका फैसला बाद में आपस में ही कर लिया जाएगा।···इस समय तो···"

"क्यों हो, हरकू चचा, आज पडित्याणज्यू से क्या खट-पट हो गई सबेरे-सबेरे ?" —बिजेसिंह ने, सबसे पहले पटाँगण मे उतरते हुए, पूछा—"क्यों, हो गोपुलि काकी, तुमने पडित्याण ज्यू को क्यो पकड़ रखा था, थोड़ी हो देर पहले ?"

गोपुली काकी ने, इस अवसर को अपने ही वश में रखने का निर्णय करते हुए, समाधानपूर्ण-स्वर में कहा—"दहो, बिजुवा, पंडित्याण दिदी आज मरते-मरते बची है। भैस हथिया रही थी—दूद लगा रही थी पंडित्याण दिदी, कि द, यह भैंस भ्योल[1] पड जाए, इसकी ठौर खाली हो जाए—ऐसी बिछुरी, कि पंडित्याण दिदी एक तरफ को उताणी तो गई, दूद की नौली एक तरफ को। बबारे, बड़ी खतरनाक भैस है। पंडित्याणी दिदी तो उताणी ही पडी थी, कही पाँव टिका देती तो, बस्स, हो गया था आज पंडित्याण दिदी का अच्छी तरह से कल्याण।··· वो तो बिचारे हरकसीग, पडित्याण दिदी की तकदीर से, यहाँ पहुँचे हुए थे—इन्होंने पकड़ के एकदम से एक तरफ को खड़ा कर दिया।"

"ओ हो रे, हम सब लोग तो दौड़ते-दौड़ते हुए आए, कि आज पंडित्याण-ज्यू के साथ न-मालूम किसने झगड़ा कर दिया है।"—डाकखाने से चिट्ठी-पत्रादि लेकर, ड्यूटी पर जाते-जाते, नीचे को आए हुए पदमसिंह ने हँसते हुए कहा, तो रमुवा ने उसकी ओर आँखों को तरेर कर देखा—"दूसरों के झगड़ो को सब बहुत जल्दी देख लेते हैं, मगर खुद इस किसम के कई काम करते रहते हैं, कि जिससे किसी भी समय फौजदारी का

१. ऊँची चट्टान का गहरी ढलान वाला हिस्सा।

केस खड़ा हो जाए।···क्यों हो, गोपुलि आमा[1], मैं ठीक कह रहा हूँ, कि नहीं ?··· क्यों हो, पंडित्याण आमा, तुम्हारी तबियत अब कैसी है ?"

—लोगों के उत्साह-उल्लास पर तो तुषार-जैसी पड़ चुकी थी, कि अरे, यहाँ तो कोई भी खास बात नही हो रही है। पदमसिंह तो बिना रमुवा के संकेत को समझे ही लौट गया। उसके पीछे-पीछे पोस्टमास्टर जयदत्त जी मुँह का स्वाद बिगाड़ते हुए, राधेश्याम-तर्ज में, एक फीका वाक्य सुनाकर चले गए, कि—हल्ला-गुल्ला तो ऐसा हो रहा था, जैसे कोई खून-खराबी हो गई हो।···

पोस्टमास्टर साहब के इस निराशा-भरे वाक्य से गोपुली काकी की आँखों में दुरगुली पंडित्याण का दातुल लेकर हरकसिंह की ओर दौड़ने का दृश्य उभर आया, और मन थोड़ा थरथरा गया—बबा हो, कहीं मार ही देती दातुल तो ? ··इस आशंका की अनुभूति से, गोपुली काकी का कण्ठ-स्वर कुछ प्रखर हो गया—"द, खून-खराबी होने में कसर ही क्या रह गई थी !"

दुरगुली पंडित्याण ने गोपुली काकी के इस *व्यंग* को सहज-भाव से आत्मसात् कर लिया, अपने इन शब्दो के साथ, कि 'खून-खराबी के लायक काम भी तो किसी शख्श के द्वारा हुआ ही होगा ?'

'किसी शख्श' का उल्लेख सुनते ही, उपस्थित लोगों की प्रश्न-वाचक आँखे, अनायास ही, हरकसिंह की ओर घूम गईं, और उनमें-से-एक उमा-दत्त की आवाज दुरगुली पंडित्याण की ओर गई—"क्यों हो, पंडित्याण भौजी, किस शख्श के द्वारा ऐसा काम हो रहा था ? कुछ खुलासे से तो मालूम पड़े ?··· और जिस किसी शख्श के द्वारा कोई गलत सलूक तुम्हारे साथ हुआ होगा, तो मैं इस बात की गैरन्टी खुद दे सकता हूँ, कि उसके साथ किसी प्रकार की रियायत नहीं की जाएगी।··"

दुरगुली पंडित्याण, गोपुली काकी और हरकसिंह—तीनों समझ

---

१. दादी।

गए, कि खुलासा मालूम करने की जिज्ञासा उपस्थित लोगों के मन में क्यों जाग रही है। अन्तिम परिणाम चाहे कुछ भी हो, मगर व्यंग और लांछनाओं की गरम शक्कर-चाशनी में तो तीनों को ही जिलेबियों की तरह डुबाने में ये लोग कसर नहीं करेंगे—इस कल्पना से दुरगुली पंडित्याण भी जरा अचकचा गई। परन्तु उसे, समझ में नहीं आ रहा था, कि मुँह से निकाली हुई बात को सँभाला कैसे जाए ?

ऐसे में, लाज गोपुली काकी ने रख ली। पटाँगण में उपस्थित भीड़ से सकपकाई हुई-सी भैंस, एक ओर औंधी पड़ी तौली और फैले हुए दूध की ओर बारी-बारी से उँगलियों को फिराते हुए, गोपुली काकी ने उमादत्त का ध्यान भैंस की ओर मोड़ा—"उमदज्यू[1] हो, पैलाग गुरु ! वो खड़ी है, वह खतरनाक शख्श—कुछ इन्साफ कर सकते हो तो करो। बबा हो, भैंसें बहुत देखीं, पर ऐसी बिछुरने वाली खतरनाक भैंस कोई नहीं देखी। द, इसकी टाँगों को गिद्ध लग जावें, आज इसने पंडित्याण दिदी को उनाणी कर दिया। बबारे, वो तो बिचारे हरकसींग ठीक बखत पर पहुँच गए, नही तो हो गया था कल्याण।···ऐसी भैंस को स्याल लग जाएँ···"

"हो गया हो, गोपुलि, अब बहुत मेरी चौरी का शराद[2]-जैसा मत कर। मैंल कौ, यह सारी उमर भैंस पालने में ही निकाल दी और आज इसी चौंरी को तीसरी बेत[3] की हथिया रही थी।···मजाल क्या है, जो आज तक जरा भी टाँग जगह पर से उठा दी हो। मैंल कौ, 'गुनहगार गंगासींग, मगर सजावार शेरसींग', वाली क्यों करती हो, वे गोपुलि ?" —भैंस को गाली देने से, दुरगुली पंडित्याण फिर चिढ़ गई—"बार-बार यही कहती हो, कि 'बिचारे हरकसींग बखत पर पहुँच गए, बिचारे हरकसींग बखत पर पहुँच गए !'··· अरे, ये हरकसींग ही मेरे पटाँगण में

---

१. उमादत्त जी। २. श्राद्ध का अपभ्रंश। ३. जितनी बार जो भैंस ब्या चुकी हो, उसे उतनी 'बेत' की कहते हैं।

नहीं पहुँचते आज, तो यह नौबत ही क्यों आती ?"

उमादत्त ने जल्दी से खुलासा पाने का प्रयत्न किया—"क्यों, हो दुरगुलि भौजी, तुम्हारे पटाँगण मे पहुँच के बिचारे जजमान हरकसीग ने क्या किया ?"

दुरगुनी पंडित्याण एकदम से सँभल गई—"द, और क्या करेंगे ? अपना सिर थोड़ी करेंगे। बस, इनके शरीर में हर वखत ही सँमावतार जैसा होता रहता है। न-मालूम किस काम से आज आए, मैं उस वखत चौंरी को हुथिया रही थी। न-जाने अचानक इनको देव-चलक-जैसी क्या फूटी, कि हिंगोर्त्त-छोर्त्त करने लगे—और मेरी पँगुरी हुई चौरी बिछुरकर, बाँई-बाँई करती हुई, मुझको उताणी करके, एक तरफ चली गई···अब क्या करूँ, आज दूद कहाँ से पूरा करूँ ?···देख जाओ, हो बिजेसींग, अपनी आँखों से मेरे दूद की हालत देख जाओ। फिर कहोगे, 'आज बौराणिज्यू ने दूद का हर्जा कर दिया !' चनरसीग से भी कह देना हो, कि आज मेरे दूद का सत्यनाश कर दिया है। मैंल कौ, भूलना मत, हो बिजेसींग !"

"कोई बात नहीं हो, बौराणिज्यू !"—बिजेसिंह, अपने दुकान की ओर बढते हुए, अपनी अखबारी-आवाज में बोला—"मुझे तो यह फिकर हो गई थी, कि न-जाने आज हरकू चचा और पंडित्याण काकी के बीच में जबानदराजी-जैसी क्यों हो रही है ?···असल में बात यह है, कि उस समय मैं अपने दैनिक पेपरों में से खास-खास खबरो और मिडिल-फ़ाइनल के कई खास-खास रौलम्बरों को पढ़कर लोगों को सुना रहा था। तुम्हारे गले से इतनी जोर की आवाजों को पहली बार सुनने के कारण, मेरे मन में कुछ शक-जैसा पैदा हो गया था, कि आज न-जाने पंडित्याण काकी के साथ किसने क्या कर दिया है ?"

दुरगुनी पंडित्याण के थमे हुए रोष को बिजेसिंह के अन्तिम वाक्य ने फिर भड़का दिया। बिजेसिंह ने तो लापरवाही और सहजभाव से ही कहा था, पर आज पंडित्याणी का मन सवेरे से ही फटा हुआ था।

उसके मन की हालत उस आग की जैसी हो रही थी, जो हवा के थमने पर थम जाती है, राख की हलकी-सी पर्त से ढँक जाती हैं, मगर हवा का स्पर्श पाते ही फिर सुलग उठती है···

"मैंल् कौ, हो बिजेसींग, मानने को तो तुम लोग बुरा मानोगे, मगर होने को तुम सब लोग दुरगुली पंडित्याण को करने को ही देखते हो, उसका भला सोचने वाला तुममें से कोई नहीं है।"— संतप्त-स्वर में, दुरगुली पंडित्याण रोते-रोते बोली—"धौलछीना में ही कुछ चित्त रम गया था, तो मैंने सोच लिया था, कि एक जगह तो दिन काटने ही हैं। मगर, अपने चमार चित्त की भलाई के कारण तुम लोगों से जरा हँसती-बोलती क्या रही, बस्स ! वह लौंडिया-उमर थी, ये सिर के बाल सफेदी पर आने लग गए है—तुम लोगों में से किसी ने भी मेरा लिहाज नहीं रखा। भौजी-भौजी करके, हर शख्स मेरे तन-बदन पर ही हाथ फेरना चाहता है।···इस लाचार विधवा के साथ तुम लोग यह अच्छा काम नहीं कर रहे हो। मैंल कौ, इन हरकसींग को तो मैं ऐसा आदमी नहीं समझती थी, मगर आज इन्होंने ही मेरा बाँया·· पँगुरी हुई भैंस को बिछुरा के एक तरफ कर दिया।···आज से मैंने कान पकड़े, जो किसी के साथ हँसी-ठट्ठा करूँ।···"

दुरगुली पंडित्याण के रोने से, सभी खिसिया गए।

सभी को आज उसके क्रोधिल-स्वरूप से आश्चर्य हो रहा था। बिजेसिंह पीछे मुड़कर, बोला—"छि हो, बौराणिज्यू ! तुम भी आज बेकार में हाई-तोबा मचा रही हो। हम सभी लोग तुम्हारी इज्जत-आबरू करते हैं, कि पंडित्याणज्यू-पंडित्याणज्यू। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने तो तुमको हमेशा अपनी महतारी के बरोबर माना है, बौराणि-ज्यू ! ऐसे छोटे मन से बातें करना तुमको शोभा नहीं देता।"

दुरगुली पंडित्याण के रौद्र-रूप और संताप को देखते हुए, उमादत्त को यह सन्देह अभी तक व्याप रहा था, कि इस घटना की जड़ में सिर्फ चौंरी भैंस का बिछुरणा ही नहीं है !··· फिर से हरकसिंह की ओर

खोजपूर्ण-आँखें घुमाते हुए, उसने रहस्य-बोध-पूर्ण स्वर में कहा—"तुम्हारी बात नहीं है, बिजेसींग ! मै इस बात की खुद गैरन्टी दे सकता हूं, कि आज जरूर किसी-न-किसी कमीन शख्स ने दुरगुली भौजी का दिल दुखा दिया है ! नहीं तो, सदानन्दी माई की जैसी शान्ति आज तक मैंने सिर्फ इस दुरगुली भौजी में ही देखी थी, कि ऐसा बरतन भी मुश्किल से ही मिलेगा, कि छेद करने वाले छेद करते रहें अपनी तरफ से, मगर भरा हुआ पानी नीचे नहीं गिरे।···"

उमादत्त के हस्तक्षेप से, बार-बार अपनी ओर आँखें जमाने से, हरकसिंह का क्रोध उबल ही रहा था, कि एक तेज आँच यह और लग गई। हाथ की आस्तीनों को समेटते हुए, आगे बढ़कर, हरकसिंह ने उमादत्त का गला पकड़ लिया—"आखिर तू कहना क्या चाहता है, रे कठुवा ? स्साला, अपनी-जैसी क्वाँ-क्वाँ अलग ही लगा रहा है···मार साले की खाल मे भुस भर दूंगा। तेरी महतारी की मौत हो जाए, बारम्बार ढड़ुवे की जैसी आँखों से अपने बाप की तरफ ही देख रहा है। खचोर[1] दूंगा साले की आँखों को···" उमादत्त, प्रयत्न करके भी, अपना गला हरकसिंह के हाथों की पकड़ से छुड़ा नही पाया। और हरकसिंह ने, दूसरों के छुड़ाते-छुडाते, कई बार जोर-जोर से गरदन पकड़कर, उमादत्त को झकझोर ही दिया।

हरकसिंह के हाथों से छूटा हुआ उमादत्त सीधे अपने दुकान की ओर दौड़ा—"अच्छा, रे अपनी महतारी के खसम खसिया, ठैर !··· ठैर, साले, कभी-न-कभी तो मेरी ही दुकान के रास्ते से आएगा।"

बिजेसिंह बोला—"शान्ति करो, हो हरकू कका ! ऐन छंचर[2] के दिन ज्यादा झगड़ा-फिसाद ठीक नहीं होता है। जो-कुछ भी कोई बात हो गई है, उसे बाद में निपटा लेना। इस समय तुम सभी लोग गुस्से में हो। ऐसे में, ज्यादा बकमध्यायी[3] करना ठीक नहीं रहता है। अच्छा,

---

१. खोंचना। २. खास शनिश्चर। ३. वाद-विवाद।

हो पंडित्याण काकी, मैं तुमको भी हाथ जोड़ता हूँ—अब शान्ति करके, घर में बैठ जाओ थोड़ी देर। नही तो कहाँ-की-नौबत-कहाँ जा पहुँचेगी।…"

हरकसिंह और उमादत्त के झगड़े से दुरगुली पडित्याण कुछ और भी खिसिया गई थी, सो चुपचाप अपने कमरे में जाने लगी।

इतने में, अब तक मौन धारण किए हुए, रमुवा की दृष्टि दुरगुली पडित्याण के दूध-भीजे अंगों पर पडी, तो उसे याद आया, कि जब उसने 'पंडित्याण आमा, अब तुम्हारी तबियत कैसी है ?' पूछा था, तो उसे कोई उत्तर नहीं मिला था। पोस्टमैन पदमसिंह ने भी उसके गम्भीर-संकेत को कोई महत्त्व नही दिया था। अपनी इस दोतरफा-उपेक्षा से कुढ़े हुए रमुवा को ठण्डा होते हुए दूध को उबालने की सूझी—"देखो, हो हरकू बूबू, जरा देखो तो सही !…दुरगुली आमा की बाँई छाती की तरफ से नीचे को सफेदपट्ट-जैसी क्या हो रही है ?"

रमुवा के इन शब्दों से दुरगुली पंडित्याण को अपना बाँया स्तन चसकता-सा लगा। रमुवा की ओर मुँह करके, क्रोधपूर्वक, बोली—"क्यों, रे रमुवा, झापड़ खाएगा मेरे हाथ से ? मेरे ही हाथों से निकला हुआ, मुझ पर ही टोंट-जैसे कस रहा है ! ठैर, मैंने जो तेरे थोकदार बूबू से नहीं कहा तो।…"

दुरगुली पंडित्याण के 'मेरे ही हाथों से निकला हुआ' वाक्य से, गोपुली काकी को सुधि आई, कि यहाँ उसने हरकसिंह को किसलिए भेज रखा था।

बोली—"ओहो रे, किस काम से मैंने बिचारे हरकसीग को पंडित्याण दिदी के पास लगाया था, और कौन-से बवाल में जो यहाँ आके पड़ गए…उधर नरुलि ब्वारी बिचारी को पीड़ उठी हुई है, छोरी पीड़ के मारे चाख में पराण-जैसे छोड़ रही है, उधर हम लोग ले थुक्का-फजीती में लगे हुए हैं।…चलो, हो पंडित्याण दिदी, जरा जल्दी करो। चतुरिया की घरवाली नरुलि ब्वारी को पीड़ उठी हुई है।…"

"मैं अब कहीं नहीं आती-जाती, वे गोपुलि !"—दुरगुली, पंडित्याण रमुवा की ओर रोष-भरी आँखों से देखते हुए, अन्दर को चली गई—"इतनों को स्वैबन के, पराई छूँन से अपने हाथ अपवित्र करके बहुत सुख पा लिया है। और, अब क्या बाँकी रह गया है ?"

गंगनाथ-मन्दिर से लौटते हुए, लछमा डँगरियों-की-वाखली से होती हुई आ रही थी, कि उधमसिह की घरवाली सरूली—जो खेतों से घास का गढौल लिए घर लौट आई थी जल्दी, कि अपने टिकुवा को एक घुटुक दूध पिला आऊँगी—ने 'दिज्यू, जरा ठैरो हो।' कहते हुए, गलियारे में मे आँगन में बुला लिया—"यहाँ नरुलि दिदी को जोर की पीड़ उठी हुई है। हाई, त्राहि-त्राहि-जैसी कर रही हैं बिचारी, और घर में सब नदारद हैं। कलाबति और किसनू सौरज्यू खेतों में मडुवा गोड़ रहे है, कोई उनको खबर करने को भी गया है या नहीं, कौन जानता है ? पल्ली तरफ के गंगासींग के घरवाले भी खेतों में ही गए हैं।···इस तरफ हमारे घर में गोपुलि ज्यू थीं और हमारे पल्ले घरवाले हरकू सौरज्यू थे—वे दोनों भी लापता-जैसे हैं। शिबौ, हमारी गोपुलि ज्यू को भी माया-ममता नाम की कोई चीज नहीं है। मेरे टिकुवा को यहाँ एक वोरिए में घुरका[१] गई है,

---

१. लुढ़का।

खुद न-जाने किसके साथ चली गई हैं, फसक मारने ?"

लछमा अब तक पटाँगण में पहुँच चुकी थी। चौंतरे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, बोली—"द, वे सरुलि ब्वारी ! गोपुलि ज्यू की भी बात तूने एक ही चलाई। अरे, जिस पाथर के खुद टूट के दो नहीं हुए होंगे, वह पराई पीर को क्या समझेगा ? बजरवैलों को जो बाल-बच्चों की माया-ममता होती, तो और फिर क्या चाहिए था ?"

सरूली के साथ-साथ लछमा अन्दर चाख में पहुँची, तो सरूली यह कहते हुए बाहर निकल गई—"तुम जरा नरुलि दिदी के मुख के सामने रहो, लछिम दिदी ! मै अभी आती हूँ, नरुलि दिदी के लिए जरा गरम चहा चढ़ा आई हूँ चूल्हे में। बाहर कोई नजर मे आएगा, तो किसनू सौरज्यू को खबर करने को भेज दूँगी। टिकुवा को चुच पिला दिया है, उसे डाले में सुला देती हूँ।"

लछमा 'क्यों, वे नरुलि ब्वारी, अब पीड़ कैसी है ?' कहते हुए, नरूली के बिस्तर में पहुँची। पहले पीड़ा से कराहती नरूली के सिर में हाथ की अँगुलियों को फिराया—"द, ब्वारी ! अब नौराट-कौराट करके क्या हाँसिल होने वाला है, कुछ भी नहीं। जहाँ औरत-जनम ले लिया, तो यह दुखदाई दिन भी एक-न-एक दिन देखना ही है।···अहाँ-हाँ-हाँ, ऐसे टेढ़ी होकर मत लेट, कहीं नाल फँस जाएगी।···अरे, ब्वारी, तू एक में ही ऐसी इजो-बबो कर रही है—मैंने, ईश्वर की दया से, नौ-नौ वखत की ऐसी-ऐसी पीड़ों को सहा है, कि वो तो मैं थी, और कोई औरत होती तो फाँसी लगाके मर जाती। दुरगुलि ज्यू भी कहती रहती थी, कि लछिमा वे, तुझ-जैसी पीड़ सहारने वाली दूसरी धौलछीना में कोई नहीं देखी !···अरे, हॅवे, कोई दुरगुलि ज्यू को बुलाने को भी गया है, या नहीं ?"—फिर नरूली का घाघरा कमर से नीचे करते हुए, पेट मलना शुरू किया—"हाई, तेरी अकल में भी पाथर ही पड़े हुए है, वे ! इतने जोर की पीड़ उठी हुई है, मगर घाघरे के नाड़े से कमर को ऐसे जोर से कस रखा है ? बालक नीचे की तरफ को सरकेगा भी कैसे ?"

लछमा के हाथ फेरने से, नाड़ा खुल जाने से, नरूली की पीर थोड़ी-सी थमी, तो उसकी स्मृति में उखल का दृश्य उभर आया, जब वह दुसह पीड़ा से विमूर्च्छित-सी पटाँगण की किनार-भित्ति से टिकी रह गई थी··· और सामने डूँगरसिंह, चौतरे से नीचे को पाँव लटकाए, गिद्ध-जैसा बैठा हुआ था···इधर कमर का रक्त-प्रवाह टूट रहा था···उधर से गोपुली सास लपक रही थी···और डूँगरसिंह चौतरे पर से नीचे को उतर रहा था, 'अरे, नरुलि भौजी की तवियत कुछ कमजोर-जैसी लग रही है !'···

नरुलि ने, धीरे से, लछमा के, पेट से नीचे की ओर चलते हुए, हाथ को अपने बाँए हाथ से थामा—"दिदी, बड़ी शरम लग रही है, वे !··· हाइ···ओ बबा रे······"

लछमा ने हलके-से झटके के साथ अपना हाथ छुड़ाकर, और अधिक सधे हुए हाथ से मालिश शुरू करते हुए, कहा—"हो गया, वे नरुलि ! अब इस समय बहुत नखरे मत कर। तुम जो लोग ब्याते समय इतनी हाई-रे-तोबा मचाती हो, 'ओ बबो-रे-ओ इजो, नौराट-कौराट करती हो··· और ऊपर से बड़ी शरमदार बनती हो, उस समय कहाँ जाती है तुम लोगों की शरम, जिस समय खसम के बिना रात काटनी मुश्किल होती है ? नरुलि वे, मुझ से तू क्या शरम-शरम करती है, लछिमा ने सब धान कूटे हुए है। जिस समय जोर की पीड़ उठती है, उस समय तो हर औरत का मन यही कहने को होता है, कि 'परमेश्वर, इस पराण घाती पीड़ से बच जाती, तो खसम को भी, आगे के लिए, जिठाणो[1] की जगह पर समझती !'···मगर, चलुवा-चित्त तीन महीने भी कहाँ चैन से काटने देता है ? · अरे, छोड़, वे मेरा हाथ, जरा देखूँ तो सही, कि कहीं असज[2] तो नहीं पड़ी है ?···थोड़ा-थोड़ा अन्दाज-जैसा, परमेश्वर की दया से, अब मुझको भी आने लग गया है। जरा तू पीड़ को सहारना, हाँ वे ? कैसा लग रहा है तुझको ? बालक बाहर को जोर मार रहा है ?"

---

१. जेठ। २. असुविधाजनक-स्थिति।

नरूली और भी झेंप गई—"दिदी, मुझे तो कुछ भी अन्दाज नहीं आ रहा है, वे ! बस·· हाई···मेरी इजा वे···बस, जोर की चड़क-जैसी च्यास्स् करके कमर से नीचे की तरफ को उठती है···ओ-ई···ओ-वा··· लछिम दिदी, तू मुझको टोकेगी, वे !······"

दुसह पीड़ा के दशन से नरूली फिर छटपटाने लग गई । बोलने में भी उसे कष्ट होने लगा, तो सिर्फ 'ओ-ई-ओ-वा' करती तड़फड़ाने लगी ।

अब लछमा सकपकाई, कि नौ बालक भले ही जनमा दिए हैं, पर उन सब में दुरगुली पंडित्याणी के हाथ ज्यादा लगे थे । अब अगर कहीं बालक का सिर बाहर को निकल आया, तो वह थामेगी कैसे ?·· एकाएक एक सुधि उसे और आई, कि वह खुद भी तो भरे-पूरे गर्भ वाली है, उसे तो पराई छूँत नहीं लेनी चाहिए ?

लछमा ने झटपट अपने हाथों को नरूली के घाघरे के एक पाट से पोंछा और उसके बिस्तर पर से बाहर सरक आई—"द, नरुलि वे, मेरा भी तो आता सौण[1] ही है । मुझको तो होश ही नहीं था । अब मैं कैसे तुझे हाथ लगा सकती हूँ ? अरे, इस गों के और सब जितने थे, कहाँ मर गए हैं ? कोई दुरगुलि ज्यू को बुलाने भी नहीं गया होगा···बस, बालक पैदा कराने में जो जस दुरगुलि ज्यू के हाथों में है—धान-में-का-चावल-जैसा अल्लग निकाल देती है ।······"

नरूली पीड़ा से छटपटा रही थी ।

सरूली चहा का गिलास लेकर आई—"लियो हो, नरुलि दिदी ! एक घुटुक गरम-गरम चहा की मार लियो ! थोड़ी शरीर-सेकन्ती हो जाएगी । ऐसे में तो अंग बड़े कौले[2] हो जाते हैं ।"

नरूली सिर्फ 'ओ-ई-ओ-बाज्यू' करती तड़फड़ाती रही—"चहा अपने-आप रहा, वे सरुलि !···पंडित्याणी ज्यू को बुलवा दे···ओ-ई···"

"हाइ···इस नरुलि दिदी की इजुलि-बाबुलि[3] ने भी खाया ।"—

१. सावन । २. कोमल । ३. माँरी, बापरे ।

नरुलि जरा रोष के साथ बोली —"मुझ से सयानी है, मगर मेरे-जितना भी सबर नही है। इससे पहले की जतकाली[1] मैं हूँ। तुमको तो मालूम ही है, हो लछिम दिदी, कि मेरा टिकुवा कहाँ हुआ था ! चैत-निकाल की बात है, जौ काट रही थी। घर से ही तन-मन में कुछ झ्यास्स्-झ्यास्स्-जैसी हो रही थी, मगर ज्यू ने जौ काटने को लगा ही दिया, कि ब्वारी, बाल पक के एकदम तैयार हो गई है। बस, तुम्हारी कसम, वे लछिम दिदी, झूठ कहने वाली तुम्हारा ही गू खाए—सु-ह-ह-ह···कमर से नीचे को एकदम तेज और ह्यूँ-जैसी ठण्डी आंधी चलती हुई लगी और मैंने एक ही आँखर 'ओ, बबो !' कहा···हाथ में की दातुली हाथ में ही रही, जौ की मूठ मुट्ठी में ही रही···ओ, बबा रे, इस समय तो बडी शरम-जैसी लग रही है, वे लछिम दिदी, तुमसे कहते हुए, उस समय तो मेरी अकेली पराणी ठहरी, उस पर ही पर्वत-जैसा गिरा हुआ ठहरा···एकदम घबरा के हाथ की दातुली फैंककर, नीचे हाथ लगाती हूँ, तो आधा बालक बाहर निकल गया ठहरा !···ओ, बबो, सच्ची, वे लछिम दिदी, झूठ कहने वाली अपनी उमर न भुगते, टिकुवा की कसम—मैंने दोनों हाथों से घाघरे के अगले पाट को जमीन में दोहार मोड़ लिया, नही तो टिकुवा के सिर मे जौ के खुम[2] बुड़ जाते···शिबो, छोटा-छोटा गदुवे का फुल्यूड़[3]-जैसा कोमल सिर ठहरा उस समय तो !···अरे, ले, वे नरुलि दिदी !···चहा का गिलास मेरे हाथ में ही ठण्डा हो रहा है। ले, थाम। थोड़ी देर में सब ठीक हो जाएगा।···तुम जरा बैठो, हो लछिम दिदी ! मैं गोपुलि ज्यू को भी ढूँढती हूँ, दुरगुलि ज्यू को भी बुला के लाती हूँ।···"

इतना कहके सरूली उठी ही थी, कि उधर से गोपुली काकी, हरकसिंह और रमुवा आ गए। लछमा भी अपने जगह से उठ गई—"आओ, हो गोपुलि ज्यू ! जरा नरूली को सँभालो। क्यों, दुरगुलि ज्यू नहीं आईं क्या ?···अब मेरे हाथ का तो कोई काम ही नही ठहरा। मैं तो खुद ही

---

१. प्रसविनी। २. खूँटे। ३. नरम और छोटा कद्दू।

असजीली ठहरी। पहले याद नहीं रहा, खाँमुखाँ[1] अपने हाथ लगा बैठी।···सरुलि वे, जरा तेरी बाछी को गोतिया[2] दे। मै मिट्टी से हाथ माँजकर शरीर शुद्ध कर लूँगी। मेरा रामी आज डिभीजन मारके पास हो गया है। गोपुलि ज्यू हो, जीती रहो, तुम्हारे शरीर के गोल्ल-गंग-नाथ दाहिने हो गए। मैं अभी-अभी तुम्हारे गिवँधार वाले मन्दीरों में धूप-बास उठाके, शाँख-घाँट बजाके लौट रही हूँ। चल, चेला रामी !···"

इतना कहकर, लछमा बाहर को निकलने लगी, तो गद्गद गोपुली काकी ने, एक तरफ को हटते हुए, कहा—"लछिम ब्वारी, परमेश्वरों की भक्ति कभी बेकार नहीं जाती है। मेरे मन्दीरों में तू जौल हाथ करके, धूप-बास उठा आई है—अपना परलोक सुधार रही है।···अच्छा, तू जाती है, तो जा। अपने रमुवा को जरा मेहलगैर के खेतों में मडुवा गोड़ते किसनू ज्याठज्यू और कलाबती को बुलाने को भेज दे।"

सरूली भी बाहर को निकली, कि मैं लछिम दिदी के लिए बाछी गोंतिया देती हूँ। हरकसिंह देली पर से एक ओर हटके, लछमा को रास्ता देने के बाद, फिर अन्दर को आने लगे थे, कि गोपुली काकी ने धीरे से टोक दिया—"तुम बाहर ही रहो हो, हरकसीग ! एक तो तुम्हारे शरीर में सँमावतार होने वाला ठहरा, कही छूँत-वूँत लग जाएगी। दूसरे, तुम पुरुष जात ठहरे, नरूली ब्वारी भी शरमाएगी। तुम एक काम यह जो कर दो, कि नीचे थोकदार-की-बाखली में जाके आनसींग की घरवाली मालुली को बुला लाओ। दुरगुलि बामुणी तो अपने बाप रँडुवे की जोरू होके घर में घुस गई है, न भुगते मुसटन्डी अपनी ढलती जवानी को।··· हाई, मैं लछिम ब्वारी के हाथ से जबाब भेजना जो भूल गई। बिचारी बड़ी होनहार-समझदार औरत है।······"

लछमा के घर पहुँचने तक, गोबिन्दी ने सबको चाय पिला दी थी, थोकदार ते दूध लगा लिया था, गाय-भैंसों का। बच्चों को बासी रोटियाँ

---

१. बेकार में ही। २. गाय या बछिया से गोमूत्र पाने की क्रिया।

खिला दी थीं, दूध के साथ। बौलियों (मजदूरिनों) के लिए आटा गूँथ दिया था। घर-समीप के बाड़े (छोटे खेत) में से एक लौकी तोडकर, काट दी थी। बौलियों के लिए साग भी हो जाएगा, भात के साथ को टपकिया भी। जौल[1] के लिए मसूर का मस्यूट पीस दिया था।

इतना काम कर चुकने के बाद, गोबिन्दी घर की बिचली थुमी के पास दही बिलोने बैठ गई थी। गोबरसिंह रमुवा के पास होने की खुशी से मगन, नौले की तरफ चला गया था, कि नहाना भी हो जाएगा, दस-पाँच लोगों में रमुवा के पास होने की चर्चा भी हो जाएगी।

थोकदार एक गिलास चहा, दो चिलम तमाखू पीने के बाद, खेतों की तरफ चले गए थे। गोबिन्दी से कह गए थे, कि भागुली-नदुली दोनों को चहा पिलाकर भेज देना, बाद में, कलेवे की रोटियाँ तू खुद ले आना।

सबलुवा और पिरमुवा, आज की छुट्टी मारने के लिए, बमराटाने की तरफ, रमुवा के चरने को लगाए हुए गाय-बकरियों के साथ घर की ब्याई गाय को पहुँचाने चले गए थे।

लछमा ने घर पहुँचते ही, पहले अपने बालकों की सुधि ली, कि सबको दूध-चहा-रोटी का कलेवा दे दिया गया, कि नहीं। फिर गोबरसिंह के बारे में पूछा, कि 'सौरज्यू तो, हुँहो गोबिन्दी, चहा तमाखू का अमल बुझा करके किसी तरफ को निकल गए होंगे, मगर रमुवा के बौज्यू को चहा-तमाखू कुछ मिला, कि नहीं! बड़ी लापरवाही रखते हैं, छि! किसी ने मुख तक पहुँचा दिया, तो ठीक, नहीं तो अपने काम में ही ध्यान रखा।'

गोबिन्दी ने हाथ की रस्सी-गुल्लियों[2] को रोक कर, कहा—"ठुली

---

१. पतली खिचड़ी। २. दही बिलोने की रौली (रई) के बीच में रस्सी बँधी रहती हैं, फेरेदार। उसके दो छोरों पर, रौली को चलाने के लिए, दो लकड़ी की गुल्लियाँ बँधी रहती हैं, ताकि रस्सी खींचने में सुविधा रहे।

भौजी, गुवरदा चहा-तमाखू पीके नौल की तरफ नहाने को चला गया है।"

अब लछमा का ध्यान सबसे छोटी धेवती की तरफ गया। वह बिल्ली के साथ खेल में लगी हुई थी। उसकी पूंछ को ऐंठते हुए 'पुसी बाग काँ ?' कहते हुए, घर की चाख में वन के बाघ का पता पूछ रही थी। 'पूसी' म्याऊँ करते हुए, उसकी भगुली से घुसुड़ी खेल रही थी।

रमुवा, माँ के संकेत की प्रतीक्षा-बिना ही, मेहलगैर की तरफ दौड़ गया था। हरकसिह भी, अपनी दो कलिया टोपी को ऊपर से खुजलाते हुए, थोकदार की-बाखली की ओर चले गए।

नरूली पीड़ा से कराह रही थी, इन लोगों की बातें सुन रही थी। चहा का गिलास और छोटी-सी गुड़ की डली सरूली उसके समीप रख गई थी, मगर, उसका पीने को मन ही नहीं हो रहा था। उदर-अतराल में दुसह्-पीर की अनवरत-परतें, बिछी हुई चटाइयों की तरह, गोलाइयों में सिमट रही थीं—"ओ, मेरी इजा वे···ओ, बाबू मेरे···अब मैं क्या करूँ ?···कैसे इस प्राणघाती पीड़ को सहारूँ, हो गोपुली ज्यू, आज अब मैं मर जाती हूँ···ओ-ई मेरी"···

"द, ब्वारी ! अब इजा-बाबू को पुकारने से क्या हो सकता है ? तेरा दूख तो तुझी को सहारना होगा।"—गोपुली काकी ने दूर से ही सहानुभूति जताई—"तेरा चहा का गिलास पड़ा हुआ है, पीले। जरा शरीर में गरमाई आ जाएगी।"

"गोपुलीज्यू हो···ओ-ई···चहा अपने-आप रहा। मेरा तो कलेजा बाहर को निकल रहा है···ओ बाबू मेरे···तन-मन को काई मरोड़-जैसा रहा है···अँ-अँ···जरा कोई उपाय कर दो, हो गोपुलीज्यू, इस मरण-संताप से बचाने का। मै तुम्हारे पैरों में पड़ती हूँ, ज्यू हा, मै तुम्हारा उपकार कभी नही भूलूँगी"···नरूली पीड़ा से छटपटाती बाली।

"द, ब्वारी वे ! उपाय तो, खैर, मैं कोई-न-कोई कर ही देती, पर मैं लगूँ कैसे तुझको ? वैसी मामूली चौदिनिया-छूंत की लसर-पसर होने

में ही, पेट में मेरे शूल-जैसा उठता है। अपने बुरे हालों को जैसे मैं भुगतती हूँ, मेरी ही आत्मा जानती है। तीन-तीन देवतों का आसनधारी शरीर ठहरा—जरा अशुद्धी हुई नहीं, कि हाई···फौरन पकड़-जैसी हो जाती है, गोल्ल-गगनाथों की।"—गोपुली काकी ने अपनी विवशता दूर बैठे-बैठे ही जता दी—"तू टिटियाट-जैसा कर रही है, पीड़ के मारे, तो मेरा कलेजा खुद कुर्र-कुर्र-जैसा कर रहा है। मगर, क्या करूँ, लाचारी ठहरी। तेरी यह पहले जतकाल की छूँत ठहरी, मुझे तो पिडेगी ही—कहीं देवों की पकड़ तेरी तरफ भी नहीं हो जाए। गोल्ल-गंगनाथ तो बड़े चोखे देवता ठहरे। ठैर अभी नीचे से मालुली ब्वारी आती ही होगी, इन चीजों का अन्दाज मुझ से ज्यादा उसी को ठहरा।"

"ओ बवो···इजा, वे"—नरूली फिर कराह उठी। उसने अपने को एकदम असहाय-जैसा अनुभव किया और विवशता के आँसू ऐसे ढुलक पड़े, जैसे भोर के ओस-कनों से भरे पिनालू के कढ़ाई-नुमा पत्ते को किसी ने एकाएक सीधा कर दिया हो।···

और, ऐसे में, चतुरसिंह की वह, तस्वीर कुरकुराते हुए कलेजे से आँखों में उतर आई, जो उन क्षणों की थी, जिनकी अक्षर-अतीत मोहकता और मिठास इस समय की दुसह-वेदना का मूल कारण थी।··· उन सुखद-क्षणों की संस्मृति से इस दुसह-पीर से थरथराते मन में एक पश्चाताप-सा जगा—छिहाड़ी, उस समय जो ऐसा दुख भोगना पड़ेगा करके जानती तो···और नरूली अपने आक्रोश से अटपटा-जैसी गई··· ओ-ई···

o o o

धेवती को गोद मे लेते हुए, लछमा ने अपने समीप ही रखी पूजा की थाली में से एक बताशा उसके मुंह में डाला। उसके उलझे हुए छोटे-छोटे बालो को हथेली से पीछे की ओर सँवारा। फिर धोती के एक छोर से उसकी आँखों के कोनों को साफ करते हुए, धोती के उस मैले छोर को गोविन्दी की ओर घुमाया—"ये गिदड़ों के ढेर हैं, छोरी की

ग्राँखों में, कितना ग्रुजमुजाट हो रहा होगा ? जरा एक हाथ पानी का इस छोरी के मुख-ग्राँखों में भी कोई मार देता, तो कोई ग्रन्धेर तो हो नहीं जाता ?···ग्रो हो रे, बजर बैलों को सगति मिली हुई है। कोई बाल-बच्चों वाला होता, तो उसे मेरे बालकों की भी फिकर होती।"

गोविन्दी का मन हुग्रा, कि लछमा से जरा पूछे तो सही, कि जैता भौजी है घर में, तो बिधवा है—मैं हूँ, तो कन्या हूँ—ग्रब बाल-बच्चे वाली कौन बने, तुम्हारे ग्रलावा ?'

लछमा ने पहले धेवती के मुँह में देने को दाँया स्तन ग्राँगडे से बाहर निकाला, मगर फिर ग्राँगडे के ग्रन्दर कर लिया—"द, चेली ! ग्राज-कल दूध कहाँ है, लिसी-जैसी निकल रही है।"···फिर ग्रपने लिसीदार-स्तनों ग्रौर गर्भिल उदर को गौरवपूर्ण-दृष्टि से हेरते हुए, ग्रपने-ग्राप से बोली—"परमेश्वर भी माया-ममता देख के ही गोदी में बालक देता है। फल-फूल भी ज्यादा उसी बाग-बगीचे में फूलते है, जिसका माली ग्रच्छा होता है।···हमारी ज्यू कहा करती थीं, कि 'ठुलि ब्वारी वे, तूने हमारे घर को इन्दर राजा का दरबार-जैसा बना दिया है, बालकों से।'··· बल्कि उस समय तो मेरे सिर्फ छै बालक ही हुए थे। सातवाँ लछमिया पेट ही में था, कि ज्यू की ग्राँखें बन्द हो गई थीं।"

लछमा के प्रताप से कुढ़ती-कसमसाती गोबिन्दी सोच रही थी, कि नौनी एक लग जाए, तो जैता भौजी के साथ को भागूँ। उसके हाथ कुछ तेजी से चलने लगे थे, कि लछमा ने टोक दिया—" गोबिन्दी हो, एक-दम घट[1] पिसाई-जैसी मत करो। नौणी कट जाती है, छाँ फुलुड्दार हो जाती है। नौणी तो तभी ठीक से एक लगती हैं ,जब—एक बार खूब रौली चला के, दही में गाज फोड़ लेने के बाद—बाद में हलके-हलके हाथों से रौली को चलाते जाग्रो, ग्रौर तुड़ुक-तुड़ुक ठडे पानी की धार

१. घट पनचक्की को कहते हैं, जिसका ऊपरी पाट बहुत ही क्षिप्र-गति से घूमता है।

देते जाओ।"

गोबिन्दी को गुस्सा आ गया, तो उठ खड़ी हुई—"लो, तुम ही क्यों नही देती हो तुडुक-तुडुक ठंडे पानी की धार ? 'जिसका मुँह चले, उसके नौ हल के बैल चलें' वाली तुम भी करती हो, हो ठुलि भौजी ! दूर-दूर से हाथ-मुख मटका-मटका के दूसरों के कामो के छिलके-कंकर दिखाना आसान होता है, मगर काम करने में सात जगह से चौड़ी होती है। हम तो घर में सयानी हो, महतारी की बराबरी में हो, यह सोच करके तुम्हारा लिहाज करती हैं। मगर, तुमसे हमारा काम भी सही आँखों से नही देखा जाता ? ईश्वर ने तुम्हें बालक दे रखे है, भौजी, बालको से भरा-पूरा घर हमें भी अच्छा लगता है। मगर, तुमसे खुद तो अपने बालकों की सँभाल हो नही पाती है, दूसरों को हजार कामों में फँसाकर भी, बच्चों की साफ-सफाई न करने की शिकेत करती हो ?···खुद तो हरेक काम से अपने हाथ-पाँवों को अलग रखना चाहती हो, दूसरो पर धौंस जमाती हो। मै बौज्यू और गुबरदा से साफ-साफ कह दूँगी, कि लछमा भौजी हम दोनों को सताती है।"···

गोबिन्दी रोती हुई, बाहर को जाने लगी थी, कि इतने में सामने से गोबरसिंह पानी की बाल्टी लिए आ गया, और गोबिन्दी ठिठककर, देली के पास ही खड़ी हो गई।

गोबिन्दी के विद्रोही-स्वर से चौंकी हुई लछमा ने अब धेवती को नीचे को झटका और, गोबिन्दी से भी आगे निकल कर, बाहर चौतरे पर पहुँचके खड़ी हो गई—"रमुवा के बौज्यू विचारे तो आ ही गए हैं, खेनों पर से थोकदार सौरज्यू को भी बुला लो—और हो ही जाने दो आज फैसला। इस रोज-रोज की तिकतिकाट से, हे भगवान, मैं कहती हूँ, किसी तरह मुक्ति तो मिले।"

"क्यों, वे, क्या हो गया ?" बाल्टी चौतरे रखते हुए, गोबरसिंह ने प्रश्न किया।

"इस समय तो क्या होता है, मगर एक-न-एक दिन तुम्हारा-मेरा

दोनों का सत्यानाश होगा !"—लछमा ने एकदम से आँखों में आँसू भरकर कण्ठ-स्वर को एकदम ऊँचा कर लिया—"हे, ईश्वर हो, इस घर में तो अब रहने में ही खराबी हे । मेरा तो रमुवा के बौज्यू हो, मैं तुम्हारे हाथ जोडती हूँ, कोई अलग-जैसा बन्दोबस्त कर दो । नहीं तो, मैं किसी दिन फाँसी लगाके अपना परागघात कर लूँगी । मेरे बाल-गोपालों का पाप-पराशित मेरे दुश्मनों के सिर रहेगा । जो मेरे भरपूर-भण्डार को देखकर छिलुक[1]-जैसे भ्वाँ-भ्वाँ करके जलते हैं, उनकी-डाँडी[2] काफलिया गैर के मसानघाट चली जाए !...जो मेरे राजकुमार जैसे बाल-गोपालों के पेट में लात मारना चाहते है, उनके पापी पेट में ये हाथ-हाथ भर के लमपुँछिया कीडे पड़ जावें !"

फिर, अपने दोनों हाथों की कुहनियों के निचले हिस्से को लम्बी पूँछ वाले कीड़ों की तरह हिलाते हुए, लछमा ने गोविन्दी की ओर अपना मुँह मोड़ा—"सबर करो, हो गोबिन्दी लली ! मेरे रमुवा के बौज्यू ने जो मेरा बन्दोबस्त नहीं किया, तो मै खुद आत्मघात कर लूँगी । बस, तब तो तुम दोनों ननद-भौजियो की छाती में ठण्डक पड़ेगी ! अरे, तुम क्या शिकैत करोगी अपने गुबरदा और अपने बौज्यू से ? आज तो मैं खुद ही फैसला कराती हूँ अपना । जाओ, हो रमुवा के बौज्यू ! तुम जरा सौरज्यू को बुला के लाओ । और उनसे कहो, कि बाहर के लोगों के फैसलों की तरफ उनकी थोकदार- बुद्धी बहुत जाती है, अपने घरके छेद नजर नही आते हैं । उनसे कहो, कि कल तल्ली बाखली के डुँगर-सिंग की जैजात-बँटवाई तो करवा ही रहे हैं; तुम्हारा हिस्सा भी अलग कर देवें ।...मुझसे इन लोगों के नटौरे सहन नहो होते । ओ बाबा हो, इस गोबिन्दी ननदी को मैंने अपने हाथो से बचपन में खिलाया-पिलाया । अपने रमुवा को छोड़ दिया । अरे, अपनी ही ननद है सोच करके, इनकी

---

१. चीड़ के पेड़ में से निकलने वाली एक विशेष लीसादार लकड़ी, जो बहुत तेज जलती है । २. अर्थी ।

खोज-खबर पहले रक्खी। तेल चुपड़-चुपड़ के चलचलान-खलखलान बनाया।···हे राम, इसी दिन के लिए बनाया होगा, कि आज वही गोबिन्दी लली मेरी सात जगह से चौड़ी करवाने को तैयार है।···अरे, गोविन्दी लली, चौडी-चिरी तो सात जगह से उनकी सबसे पहली होती है, जो दूसरो का सुख देख के छाती में धान-जैसे कूटती है।···करेगा, इन्साफ जो होगा, तो सब विचार—रमुवा के बौज्यू और थोकदार-सौर-ज्यू नहीं भी करेंगे—तो वह ऊपर वाला परमेश्वर करेगा।"····

बोलते-बोलते लछमा हाँफने लग गई। गोबरसिंह किंकर्तव्य-अचेत-सा लछमा का मुँह ताकता ही रह गया था। उसके रौद्र-रूप के आगे वह अपने को एकदम लूला पाता था। जब लछमा की पहाड़ी नदी के बरसाती-जल-जैसी वेगवती-वाणी कुछ थमी, तो गोबरसिंह जल्दी-से सीढियाँ चढके चौतरे पर आया और लछमा को हाथों का सहारा देकर, अन्दर चाख़ में ले आया—"तुझमें एक आदत यह बहुत बुरी है, वे, जो तू इस तरह से खुले आम में खड़ी हो करके बकमध्यायी लगाती है। तुझे जो-कुछ भी बात करनी होती है, जरा शान्ति के साथ, घर के अन्दर ही क्यों नही करती है ?"

गोबरसिंह को उत्तर देने के लिए लछमा के पास शब्दों की कमी तो नहीं थी, मगर इस बार वह मौन साधे फिए पर लेट गई। बहुत अधिक बोलने और आवेश में आने से उसका सारा शरीर झनझना उठा था। कमर में हल्की-सी चसक भी अनुभव हुई।···और लछमा का मन इस आशंका से थरथरा उठा, कि कहीं नरूली की तरह उसे भी पीड़ नहीं उठ जाए ?···हाई, पीड़ तो सरती भी है और उसने नरूली को हाथ लगाए थे !···आज तो दुरगुलि पंडित्याणा भी बिगड़ी हुई है।

गोबरसिंह ने गोबिन्दी से कहा—"देख तो, बैणा, तेरी ठुलि भौजी को चक्कर-जैसा क्या आ रहा है ? इसकी तो आदत ही बड़ी खराब पड़ गई है, लड़ने-झगड़ने की। पेट में कुछ मैल थोड़ी रहता है, तुम लोगों के लिए।"

गोबिन्दी का मन क्रोध से संतप्त हो रहा था, पर गोवरसिंह के आग्रह को वह टाल न सकी और लछमा के सिरहाने बैठकर उसके माथे को दबाने लगी—"गुबरदा, तू जरा तेल देजा हो ! मैं सिर में मल दूँगी।"

गोबिन्दी का हाथ माथे के पिठाँ-अक्षतों पर पड़ा, तो अक्षत के कछ दाने लछमा की आँखों की ओर लुढक पड़े और लछमा उठकर, बैठ गई—"हाई, मैं भी आजकल परलोक-जैसी पहुँची हुई रहती हूँ। अब ये गोबिन्दी लली का हाथ मेरे सिर के पिठाँ-अक्षतों पर पड़ा, तो होश आया है, कि पूजा तो करके आई, मगर पिठाँ घर आके अभी किसी को भी नहीं लगाया। कहाँ से ? मुझे तो तुम लोगों की बकमध्यायी ने ही एकदम पगल्या-जैसा दिया है ! लाओ हो, गोबिन्दी, जरा मन्दीर से लाई हुई पूजा की थाली तो ले लाओ।···"

गोबिन्दी उठी, पूजा की थाली ले आई। बच्चो में से घर में सिर्फ मधिया, लछमिया, गोपुवा और धेवती थे। लछमा ने सबसे पहले धेवती को पिठाँ लगाया, एक बताशा और उसके मुँह में डालके, अपने हाथों से उसके दोनों हाथ जुड़ाकर, 'पैलागइजा, कह चेली !' कहके, खुद ही 'जीरौ' कहा। फिर बारी-बारी से तीनों बेटों को पिठाँ लगाया, बताशे दिए।

गोबरसिंह को पिठाँ लगाते हुए, बोली—"परमेश्वर गोल्ल-गंगनाथ देव तुमको अच्छी रति-मति दें, ताकि तुम चेत सको।—अब क्या करूँ, बताशा तो है ही नही ?"

गोबरसिंह हँस पड़ा—"बताशे से क्या करेगी, वे ? मै कोई वालक थोड़े हूँ।"

"द, अपनी तो कुछ मत ही कहो तुम।"—गोबरसिंह की टोपी के किनारे मैं पया के पात खोंसते हुए, लछमा वोली—"होने को तो नौ-दश बच्चों के बाप हो गए हो, मगर अकल तुममें रत्ती-भर भी नहीं है।"

गोबरसिंह को गोबिन्दी का ध्यान नहीं रहा, तो कह बैठा—"द, वे ! अकल ही जो होती, तो तुझसे इतने सुँगर के जैसे घेटे[1] क्यों पैदा करता ?"

लछमा क्रुद्ध गई—"हो गया हो, तुम्हारी भी मति-हरण हो गई है आजकल। शरम भी नहीं आती, मेरे बालकों को बुरे बचन कहते हुए, छि ! आओ हो, गोबिन्दी, तुम भी पिठाँ लगा लो।"

गोबिन्दी आगे बढ़ आई, लछमा ने उसके नाक के मध्य से माथे की सिन्दूर-रेखा के सिरे तक पिठाँ लगाया, अक्षत रोपे और, सिर के चाल के ऊपर पँया के पात रखते हुए, आशीर्वाद दिया—"बेर क्या हो तुम्हारा और बुरूँश-जैसी फूलो, बेरी-जैसी फलो।"

गोबिन्दी, 'ठुलि भौजी, पैलाग' कहते हुए, लछमा के पैरों पर झुकी और उसकी झगुली की जेब में से लड्डू लछमा के पाँव पर गिर गया। गोबिन्दी तो हड़बड़ा गई, एकाएक, उठा भी नही पाई। इतने मे लछमा ने ही उठा लिया—"क्या है यह ?···ओ, बबा रे !···भुटी कुन्द का लड्डू ?···आओ हो, अपनी लाड़ली बैणी के गुबरदा, आओ ! देखो, अपनी गोबिन्दी के करतब ! कुछ नहीं हो, गोबिन्दी, तुम्हारी नियत भी दिन-पर-दिन एकदम हीन होती जा रही है ! थोड़ी ही दिनों में तुम्हारा ब्या भी हो जाएगा, और आदत तुम ऐसी चुरड़ी पाल रही हो। खूब नाम चलाओगी अपने मैत का ! सासू-सौर भी तुम्हारे यही कहेंगे, कि किसी चोर-घर में ही पली है।···"

गोबरसिंह आगे आ गया, तो लछमा ने भुटीकुन्द का लड्डू दाहिने हाथ की तीन उँगलियों के ऊपर अटका के, उसके मुँह के सामने घुमा दिया—"अरे, नहीं खाने वाली बहू-बेटियाँ तो बागेश्वर के मेले में पकड़ी

---

१. सुअर के छौने।

जाती है !¹ उस दिन मिष्ठान्न-बँटाई करते हुए मैं खुद अपने हाथों मे, अपने बालकों के से भी बड़ा हिस्सा दे रही थी, मगर कमर मटकाती अपनी छाती मे बाँधनी जैंता भौजी के साथ चली गई—मिठाई को मेरे हाथों में ही छोड़ गई। मगर, मेरा जो अपमान उस दिन करा, उसको भी किसी परमेश्वर ने देख ही लिया—पाप का घड़ा, लो, तुम्हारी-मेरी आँखो के आगे ही फूट गया। जो ईमानदारी से दी हुई चीज को लात-जैसी मारके चला जाएगा, उसको तो भुटीकुन्द का मीठा लड्डू क्या, गू भी चोरना पड़ जाएगा।"

गोबरसिंह ने देखा, गोबिन्दी एकदम बिसूर-बिसूर कर रोने लगी थी। सहानुभूति उमड़ आई—"अब चुप हो जा, गोवी ! मगर, ऐसा नहीं करते हो। अपनी ठुलि भौजी से कोई चीज खाने की होती है, तो माँग क्यों नही लेती ?"

"अजी, जिसको चोरी की चाँट लग जाएगी, वह माँगने के लिए मुख खोलेगा ही क्यों ?"—कहते हुए, लछमा ने भुटीकुन्द के लड्डू को धेवती के हाथ में थमा दिया।

"मैंने यह लड्डू लछिम भौजी के लड्डुओं में से नहीं चोरा, ददा !" —कहते हुए, गोबिन्दी और जोर से रो पड़ी।

"ल्ले तेरी—चोरी और साहूकारी, दोनो साथ-साथ !"—कहते हुए, लछमा ने धेवती के हाथ से लड्डू छीन लिया और, कमर से चाबियों का गुच्छा निकालते हुए, बोली—"द, दुलहन सामने है, तो घूँघट उठाने

---

१. एक लोकोक्ति। बागेश्वर अलमोड़ा का एक तीर्थ-स्थल है, जहाँ वर्ष के विशिष्ठ-पर्वों पर मेले लगते हैं। गाँवों की औरतें मेले में बड़ी संख्या में आती है। कभी ऐसा हुआ होगा, कि किसी परिवार की वो बहू-बेटियाँ बागेश्वर के मेले में मिठाइयाँ खाती देखी गई होंगी, जो घर में मिठाई खाने से इन्कार करती रही होंगी। तब से यह लोकोक्ति चल गई, कि 'निखानेर चेली-ब्वारी बागेश्वरा-क कौतिक देखीनी।'

मे क्या समय लगता है ? नाचती-कूदती सच्चाई अभी सामने आ जाएगी। डूँगरसींग बिचारों के लाए हुए आधे लड्डू बचा के रखे हुए हैं, टिरंक में। अभी उन लड्डुओं से इस लड्डू को मिला के देखती हूँ।…"

रमुवा उसी समय लौट आया था, जब लछमा बोल रही थी। अन्दर को जाने लगी, तो पूछा—"क्यों, वे इजा, क्या हुआ ?"

"द, और क्या होता, रे ?"—लछमा ने लड्डू को रमुवा की ओर घुमा दिया। और फिर, गोबिन्दी की ओर संकेत करके, बोली—"शरीफ चोरों की कारस्तानी सामने आई है। हाई, न-जाने टिरंक में से कितने लड्डू निकालके पचका दिए है। नही मालूम मेरी कमर से किसी समय चाबी खिसका के यहीं टाँग दी, या नही मालूम ताला ही ठसका के एक तरफ रख दिया है !"

रमुवा अब तक सारी घटना समझ चुका था। गोबिन्दी रोए जा रही थी, दीवार से सिर टिकाए। रमुवा गोबिन्दी को बहुत प्यार करता था, सो सहानुभूति से उसका मन भर आया, और लछमा को डाँटने लगा—"हो गया, वे इजा ! तू भी गोबिन्दी दिदी को बहुत परेशान करती है। ऐसे तेरे ही भुटीकुन्द के लड्डू थे सोने के अशर्फी, जो कोई चोरेगा।"

"द, मुझे क्या जोर से डाँटता है, रे रामी ? 'खूनो की चश्मदीद गवाही तो लाश खुद देती है !' वाली बात है।"—कहकर, रमुवा को फिर से लड्डू दिखाया, लछमा ने।

रमुवा ने लड्डू छीनकर, और जोर से डाँटा—"बस, अब जा, वे इजा, तू अपना काम कर। खाँमुखाँ गोबिन्दी दिदी को त्रास दे रही है। यह लड्डू तो मेरी आँखों के सामने गोबिन्दी दिदी को पोस्टमैन पदमसींग ने दिया था—जिस समय मेरे मिडल-फैनल का रिजल्ट आया था और गोबिन्दी दिदी धारे में पानी भर रही थी।"

"ओ, बवारे !"—लछमा माथे पर दोनों हाथ रखके वही बैठ गई।

आँखें बन्द कर ली—"हे परमेश्वर।"

गोविन्दी, पर-कटे पंछी-जैसी तड़फड़ाती, बाहर को भाग गई। पाल की मिट्टी में, दीवार से लेकर देली तक, उसके आँसुओं की एक पतली पगडण्डी-जैसी तैयार हो गई।

२८

डूँगरसिंह किसनसिंह के आँगन में अधिक देर ठहर नहीं सका था। नरूली के प्रसविनी-स्वरूप के पूर्वाभास-मात्र से वह इतना कुढ़ गया था कि किसनसिंह के पटाँगरण के पथरौटे-पथरौटे पर चतुरसिंह और नरूली की सयुक्त-प्रतिच्छाया दिख रही थी।

और उसके कानों में आज फिर—देहरादून से लौटने के बाद, अल-मोड़ा पहुँचकर, चितई-मन्दिर तक पहुँचने के दिन के बाद का—चितई के गोल्ल-मन्दिर का कास्य-घंट घनघनाने लगा था—घनन्-घनन्-घनन्···

और डूँगरसिंह के कलेजे में सतमुखिया-काँटा नीचे-ऊपर सरकने लगा था—च···तु···र···सिं···ह·· ने···गी···इन सात अक्षरों को मिलाके एक बनाने का एक वह चितई-मन्दिर पहुँचने का दिन था, एक आज यह उन्हीं सात अक्षरों वाले बेटे के बाप किसनसिंह और उसी की घरवाली नरूली का पटाँगरण था—और डूँगरसिंह की दृष्टि इस पटाँगरण के पथरौटों पर से ऐसे फिसल रही थी, जैसे उलटे-गरम तवे पर पड़ा

हुआ पानी—बूंदों में बँटकर छ्यॉं-छ्यॉं करता हुआ—नीचे को गिरता है !

ऊखल के पार्श्ववर्त्ती पथरौटों पर नरूली का प्रसवपूर्व का रक्त-स्राव फैलकर, जम गया था।···और डूँगरसिंह को ऐसा लग रहा था, कि यदि इस पटाँगण के पथरौटों को वह देखता रहा, यदि उसके कानों में गोल्ल-मन्दिर में टँगे चतुरसिंह के नाम-खुदे घण्टे की मर्मवेधी-घनन्-घनन् और प्रसव-पीर से आकुल नरूली की कराहों का करुण-मन्मथ स्वर गूंजता रहा···तो···तो, शायद, डूँगरसिंह पागल हो जाएगा ! · तो, शायद, डूँगरसिंह मरने की नौबत तक पहुँच जाएगा ! !···तो, शायद, डूँगरसिंह अन्दर घुसकर, नरूली का गला ही घोट दे ???···

मगर, डूँगरसिंह इन तीनो स्थितियों से बचना चाहता था, क्योंकि उसे नई जिन्दगी शुरू करनी है। उसे धौलछीना में अपना वह चमत्कारी स्वरूप दिखाना है, जो नरम नौनी-सा दिखे, पर दाहकता जिसमें उस हुक्के के कोयले से भी ज्यादा हो, जिसे लगातार लम्बी नली की फूंक मिल रही हो।······

और डूँगरसिंह एक शब्दातीत-व्यथा और आक्रोश लिए, किसनसिंह के—डूँगरसिंह की दृष्टि में चतुरसिंह और नरूली के—पटाँगण से निकल आया था, कि कहीं इसी बीच दुरगुली पडित्याण आ गई और नरूली की देह हलकी हो गई · और गोपुली काकी ने, या और किसी ने, बालक की जात पहचानने के बाद, शंख-घट गुँजार दिए···पूँ-पूँ-पूँ-ट-न्-न्-न् ·· तो, शायद, उस स्थिति के संताप से डूँगरसिंह की आँखों में थोकदार की चेतन चिलम के लाल-लाल कोयले-जैसे उतर आएँ, · और, शायद, कोई उनमें जोर की फूंक मार दे, कि एक चतुरसिंह भी है, जो पलटन में हौल-दार भी हो गया है और एक सुन्दर बेटे का बाप भी बन गया है !···और, शायद, उन्हीं धधकते-कोयलों-जैसे आँसुओं को डूँगरसिंह के कलेजे से निकलती हुई अन्तर्दाह की आँधी भी फरफरा दे, कि—और एक तू है, रे डुँगरिया, जो न हौलदार ही बन सका, न नरूली को ही पा सका और न एक सुन्दर बेटे का बाप ही बन सका !···न कलेजे में चुभे हुए सतमखिया-

काँटे को निकाल सका···न दिल की चौखट में कोई मनपसन्द-तस्वीर ही बिठा सका······

और डूँगरसिंह के मन में, चलते-चलते, एक नई कल्पना उपजी थी—काश, वह कश्मीर की लड़ाई में चतुरसिंह के साथ ही जा पाता··· और वहाँ के किसी मोर्चे पर चतुरसिंह किसी कबाइली पठान को मार देता···और पीछे खड़ा डूँगरसिंह चतुरसिंह की पीठ में बारूद-बुलेट ठोक देता···और कबाइली पठान की वर्दी उतार के चतुरसिंह को पहनाकर, उसका मुँह राइफिल के कुन्दे से कूट-कूट के ऐसा कर देता, कि कोई उसे पहचान नहीं सके···और फिर उसकी लाश को घसीटकर, कम्पनी-कमांडर के पास ले जाता—"हुजूर, एक कबैली पठान को मैंने ठंड[1] कर दिया है !"···और कम्पनी-कमांडर, खुश होके, उसकी पीठ पर हाथ मारता—"वैल, भेरी-गुड !"···और फिर धनुष-मार्का तीन फीते डूँगरसिंह की खाकी कमीज में लग जाते···हौलदार डूँगरसिंह !···और फिर चितई के गोल्ल-मन्दिर में टँगे चतुरसिंह के नाम-खुदे घण्टे के ठीक ऊपर एक चार-इंची कील और ठोकी जाती, और उस पर जजीरदार दशाक्षरी-घण्टा चढ़ाया जाता—श्री-हौ-ल-दा-र-डूँ-ग-र-सिं-ह ! ·····

च्यास्स पाँव चसका, डूँगरसिंह की आँखें कल्पना-लोक से पड़ाव की ओर जाती सड़क पर उतरी, तो उसे ध्यान आया—मगर, बारूद की बुलेट फिलहाल तो उसी की बाँई टाँग में घुसी हुई है !······

० ० ०

उमादत्त की दुकान में दुबारा पहुँचा डूँगरसिंह, तो उस समय वहाँ हरकसिंह, गोपुली काकी और दुग्गुली पंडित्याणी की चर्चा चल रही थी।

उमादत्त, अपनी नारियल-पनौटे की बिना हुक्के की नारियल की नली को कसते हुए, कह रहा था—"मगर, चाहे कुछ भी हो, हरकसींग ने आज जरूर पंडित्याणी के साथ कोई-न-कोई बदसलूकी की है, इस बात की मैं खुद गैरन्टी दे सकता हूँ !···खसिया खौडा[2], सुसरा उमादत्त को

१. समाप्त। २. निकृष्ट क्षत्रिय।

महतारी की गलीच गाली देकर, उसका गला घोटने की खूंख्वार कोशिश करता है ! गल मरेगा साला ब्रह्म-हत्या के महापातक से !···अजी लोगो, ब्रह्म-राक्षस की हत्या करने से ही देवराजा इन्दर के शरीर में भी कोढ के दश सैकड़ा घाव फूट गए थे, हरकुवा खसिया खोड़ा किस भंगी-मेहतर की गिनती में आता है ?···अरे, एक तो सुसग बाल-विधवा ब्राहमणी पर बदमाशी की नजर डालता है—ऊपर से ससाला एक-दूसरे नेक ब्राहमण का गला घोंटता है। ठैर, कठुवा साले, कभी-न-कभी मेरी ही दुकान के रास्ते से गुजरेगा !······"

थोकदार के पडौसी ठाकुर मानसिंह भी वहीं बैठे हुए हथेलियों पर टिकाए हुक्के[1] की दम लगा रहे थे। उनका गोपालसिंह भी मिडिल-फाइनल की परीक्षा मे, द्वितीय श्रेणी में, उत्तीर्ण हो गया था। और, जैसा कि धौलछीना का प्रायः हर वह आदमी करता था, जो गाँव मे रहता था—(कि, कोई महत्वपूर्ण-घटना या बात हुई, तो पडाव की ओर आने मे देर नहीं लगाई)—मानसिंह भी अपने बेटे के पास हो जाने की खुशी को फैलाने को लिए उमादत्त की दुकान में बैठ गए थे, कि धूप-अगरबत्ती की सुगंध फैलानी हो, तो उसको आग दिखानी पडती है, और कोई विशेष बात-चर्चा फैलानी हो, तो उसे पडाव की दुकानों मे पहुँचाना चाहिए, जहाँ से तमाखू के धुँए मे भी तेज रफ्तार से बात-चर्चा दूर-दूर, दशों दिशाओं में फैल जाती है।

एक चिलम तमाखू के साथ-साथ, गोपाल की प्रशंसा का सिलसिला भी समाप्त करके, मानसिंह उठने को ही थे, कि एक तो सामने बैठे उमादत्त ने उनके खसिया-स्वभाव को ठेस पहुँचा दी, दूसरे, गाँव की तरफ से आता हुआ, डूँगरसिंह उसी ओर को आता दिखाई दिया।

---

१. ब्राह्मण लोग क्षत्रियों और शूद्रों को और क्षत्रिय शूद्रों को अपनी चिलम नहीं देते हैं, सिर्फ हुक्का चिलम पर से निकालकर दे देते हैं। ऊँचे-नीचे ब्राह्मण-क्षत्रियों में भी आपस में यह भेद (अन्तर) चलता है।

“थुत् !”—अपनी अस्सी से ऊपर को पहुँचती हुई देह को रोष से और भी अधिक थरथराते हुए, मानसिंह ने हुक्का, उमादत्त के हाथ की नारियल में रखने की जगह, दुकान के आँगन में दूर फेंक दिया—“किसी उजड्डी[1] वानर को छत से नीचे गिराने के लिए पूरे घर को उखाड़ने की बात करना, एकदम जलील पन्ना है ! खबरदार, जो फिर जात के सामने को लेकर खसियों की शान के खिलाफ कोई बात कही तो ! तुमको कोई कठुवा लिना[2] कहेगा, तो तुमको कैसी मिर्ची लगेगी ?”

“मिर्ची लगती है मेरे अँगूठे को ! किसकी छाती में है बाल, जो मुझे कठुवा लिना कहेगा ?”—उमादत्त क्रोध से पाँव पटकने लगा, पाथर पर—“और, हो मानसींग, तुमने मेरी नारियल का हुक्का क्यों फोड़ दिया ?”

“और तू कैसे दूसरों को खसिया खोड़ा कहेगा, रे, कठुवा लिना ? अरे, बामुण, रह—अपनी औकात में रह, रे !”—मानसिंह अपनी लाठी टेक के खड़े हो गए—“नहीं तो भूल जाएगा धौलछीना की चौबटिया में चहा के गिलास बेचना ! हमारी ही धौलछीना में रह के कठुवा-कमीना अपना पेट पाल रहा है, हमी को खसिया खोड़ा कहता है ? सब खसिए बिगड़ जाएँगे, तो तेरी चानी[3] के बालों का पता नहीं चलेगा ! ...”

“अरे, हो जाओ—तुम सब अन्यायी खसिए लोग एक हो जाओ ।”—उमादत्त जोर से चिल्लाया—“मगर, ‘रामलीला’ तो तुम लोग देखते ही होगे ? ‘रामलीला’ स्टार्ट होने के तीसरे दिन के धनुष-यज्ञ में जो परशु-राम आते हैं, अपने विकराल फरसे को घुमाते हुए, वो कौन थे ?... जिन्होंने, कि अपनी अकेली ब्राह्मण-जान से एक-बीसी-एक दफा इस पिरथिवी को—(यह धौलछीना भी इसी पिरथिवी के अन्दर आता है, यह याद रहे !)—खसियों से एकदम विहीन कर दिया था ?”

---

१. उपद्रवी । २. कुढ़ने-क्रोधित होने पर इतर-वर्गीय ब्राह्मण को ‘लिना’ भी कह देते हैं । ३. सिर की चाँद ।

गुरु, मगर तुम्हारी तरह् ओकात मे डूम नही हूं !"

उमादत्त का शरीर खौलते पानी से कहीं-कहीं जल गया था। वह आक्रोश और दाह से तमतमाता चेहरा लिए, बार-बार कराह रहा था—"ओ, बबा रे !...मुझ अकेले गरीब ब्राह्मण को इस अन्यायी धौलछीने के खसिये और डूम दोनों मिलकर मार रहे हैं ! मगर, ब्राह्मण के साथ अत्याचारी करने वालों को साक्षात् ब्रह्मा दण्ड देते हैं ?...ठैर, रे कुहेड़िया[1] ! मुझको गरम पानी मे जलाता है ? स्साले, ब्राह्मण का शराप लगेगा, तेरे कबीले का सत्यानाश हो जाएगा। हे, परमेश्वर हो मेरे ! जैसे इन धौलछीने के चौबटिये में, बिना किसी कसूर के, खसिया और डूमों ने मिलके मुझ गरीब ब्राह्मण और उसके बेटे की हत्यागिरी करने की कोशिश की है, तू खुद उनका सत्यानाश जल्दी ही करेगा ! और, मैं अभी, इसी हालत मे, अपने दुःखी और चोट खाए शरीर को लेकर, बाड़ेछीना के खीमसींग पटवारी साहब के यहाँ जाता हूँ। और, बाद मे, अलमोड़ा की सेशन-कचहरी मे इस ब्राह्मण-हत्या के केस को चलाता हूँ।...और, इस बात की मैं खुद गारन्टी दे सकता हूँ, कि..."

इस बीच मानसिंह को लगातार कई हिचकियाँ आई थीं। उनका कृश-जर्जर शरीर उमादत्त के झटके को सँभाल नही पाया था, और हिचकियों का एक ताँता-सा बँधने के बाद, उनकी साँस चढ़ गई थी। पल्यूँ के रामदत्त और धौलछीना के भोपालसिंह ने उस समय उनको बिठाए-बिठाए सँभाल रखा था, कि उनका सारा शरीर ऐंठने लग गया।...

किसन मिस्त्री जोर-जोर से चिल्ला उठा—"अरे, यहाँ मानसींग गुसैं का कतल हो गया है !" और स्वयम् मानसिंह को अपनी गोद में सँभालते हुए, बोला—भोपालसिंग हो, तुम जरा एक आदमी बाड़ेछीना

---

१. झगड़ने पर, शिल्पकार-वर्ग के लोगों को उच्चवर्गीय-जन 'कुहेड़िया' भी कहा करते थे। इसे 'नीच' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। यह अशोभन-परम्परा अब समाप्त हो रही है।

पटवारीज्यू के पास दौड़ा दो, कि थोलछीना के बदमाश दुकानदार उमादत्त ने वहाँ के एक बहुत ही सभ्य और पुराने आदमी मानसींग का कतल कर दिया है ! गवाही के लिए हम सब लोग हाज़िर है ! वैसे तो पटवारीज्यू खुद भी जिमदार हैं।"

अब तो उमादत्त को होश-जैसा आया, कि अरे, यह तो उलटी फाँसी मेरे गले पड़ती है, तो घबराकर मानसिंह के सिरहाने पहुँचा—अपने दाह करते अँगों को सहलाता-फूँकता। बेटे को संकेत करके, बोला—"मथुरादत्त, रे ! आज नहीं जाने सुबह-सुबह किस अलच्छनी के मुँह पर दीठ पड़ गई—चेला, अब तू सार मे दोनों बाप-बेटे फँसते हे ! ··ओ, बाबो, आज मुझ गरीब ब्राह्मण के ऊपर बजर-पर-बजर-जैसे पड़ रहे हैं। किसमत मिस्त्री हो, यार, मैं तेरे पैर पकड़ता हूँ। तू सयाना और दयावान आदमी है। जैसे-तैसे तू मानसींग जजमान को बचा ले।··· (अगर ··अगर ·· खुदा न खॉस्ता कुछ हो भी जाता है, तो तू मुझ गरीब ब्राह्मण के कुल की रक्षा कर ले, पटवारी को मत बुला।)···और हो रामदज्यू, भोपाल सींग जजमान !···वगैरह लोगो, मैं तुम्हारे चरणों में अपनी यह टोपी रखता हूँ ··आ हो, डूँगरसींग जजमान ! मैं लुट गया, हो जजमान ! ·· आज अब मुझ गरीब ब्राह्मण की घर-गृहस्थी फाँसी पर चढ़ती है ··"

डूँगरसिंह ने झगड़ा-फसाद तो दूर से ही देख लिया था, पर जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाते भी, दुकान के आँगन में पहुँचने तक, थोड़ा समय लग ही गया था।

डूँगरसिंह ने सारी स्थिति को भाँप लिया था। कुछ बातें तो उसके कानों तक पहले ही पहुँच गई थी। फिर भी 'क्या बात हो गई है, गुरु ?' पूछने के बाद ही, उसने मानसिंह की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया—"अरे, तुम लोग लाश-जैसी सँभाल के तथा बैठे हुए हो ?··· भोपाल का हो, तुम जरा लपक करके उस घण्टी मे जरा ठंडा पानी ले आओ !···ओ हो, यह तो एक बिल्कुल मरडर केस-जैसी पोजीशन पहुँच रही है !"

"कुछ ऐसी ही मेरी कपाली फूट गई है, यार जजमान!"—उमादत्त ने डूगरसिंह को अपने दोनों हाथ जोड़ दिए—"दरमल आज सवेरे से ही कुछ गर्दिश का फेर चल रहा है मेरा। वैसे सवेरे तेरी शानदार लेक्चर-बाजी से थोड़ी-बहुत बिकरी बट्टे में मदद जरूर मिल गई थी, हो जजमान!· बाद में, उस हरकुवा डँगरिया से कुछ ऐसी थुक्काफजीती हो गई, और उसने मेरा गला इतनी जोर से घोट दिया, कि मेरा दिमाग एकदम से गरम और औट[1] हो गया।···जेठ अठार पैट[2] से मुझे अस्टम-राहू लगा हुआ है, वैसे इस साल का सम्बत्सर भी मुझे अपैट[3] गया हुआ है।···एक तो मेरा दिमाग इन कमीन ग्रह-दशाओं से ही बेकाबू हो रहा है आजकल, ऊपर से हरकसीग ने गला घोट दिया। ···और इधर ये मानसीग जजमान लट्ठ लेके मेरा सिर फोड़ने को आए···इस बात के गवाह यहाँ पर हाजिर सभी लोग है···अपनी जान बचाने की कोशिश में मैंने जरा मानसीग को उस तरफ को रोकना चाहा, तो ये नौबत आ गई·· हकीकत यही है, डूँगर!···और क्या राज-दरबार में और क्या देव-दरबार में—मेरा यही हलफी-बयान भी रहेगा।···"

भोपालसिंह घण्टी मे पानी ले आया था। किसनराम ने जल्दी से पानी की घण्टी को हाथ में लिया और मानसिंह के मुँह मे थोड़ा-थोड़ा पानी चुआया। थोड़ा पानी सिर में छपछपाया। गीली हथेली से मानसिंह की कनपटियों पर मालिश करते हुए, बोला—"और, गुरू, चश्मदीद गवाह तो यहाँ, मेरे साथ-साथ, और भी कई लोग है, जो देव-दरबार और राज-दरबार—दोनों दरबारों में यही हलफी-बयान (अपने बाल-बच्चों के सिर पर हाथ रखते हुए और ईमान-धरम से डरते हुए) देंगे, कि—'हमारे सामने-सामने मे, और हमारी मौजूदगी मे खुद किसनराम मिस्तरी ने यह अपनी आँखों से, अपनी पूरी होश-हवास में, देखा है, कि उमादत्त

१. अंग्रेजी out (आउट) का अपभ्रंश। २. गते। ३. अशुभ।

गुरू ने अपने बाप की जगह पर पहुँचे हुए इन्सान, हमारे गुँसें मानसीग ज्यू को जोर से धक्के मारकर, पीछे के पत्थरों पर फेंक दिया, जिससे नतीजा यह हुआ, कि···"

डूँगरसिंह की ओर बढते-बढते, उमादत्त फिर किसन मिस्तरी के पास आ गया—"यार, किसन मिस्तरी ! मैं पहले ही, ऊँचे ब्राह्मण वंश का होते हुए भी, तुझ नीच को·· अँ-अँ-अँ···अरे, यार, तू तो शिलपकार आदमी ठहरा···और तू जानता है, देवदास उदेराम हमारे घरों में बड़े बड़े हरू-सैम देवताओं का अवतार करा जाता है, तथा धरमदास कहलाता है। वह भी तो शिलपकार ही हुआ ?···अँ-अँ···इसलिए तू मेरी बातों का बुरा मत मानना, यार, मैं तेरी अपने तहे दिल से कदर करता हूँ, इस बात की मैं तुझे गैरन्टी दे सकता हूँ।"

इतना जोर से कह चुकने के बाद उमादत्त जरा धीमे स्वर में बोला—"जैसे भी हो, यार, तू इस केस को डिसमिस करा दे, किसन मिस्तरी। मैं जन्म-जनमांतरों तक तेरा गुनहगार और अहसानमंद रहूँगा। इसके अलावा अगर, खुदानखॉस्ता, जजमान मानसीग की जिन्दगानी सलामत रह गई, तो मैं कल से इनके साथ किसी किसम की बदसलूकी नहीं करूँगा, बल्कि खातिरदारी ही करूँगा।···(और, तेरी मजदूरी भी जो है, उसे जरूर-बढ़ा दूँगा। सबेरे तू दो रुपए तय कर रहा था, मैंने उस समय पौने-दो पर टाँग अड़ा दी थी। मैं मानता हूँ, कि वह मेरी गलती थी।···मैं तुझे सवा-दो रुपए से लेकर ढाई रुपए तक की ऊँची मजदूरी दे सकता हूँ।) इस बात की तू गैरन्टी समझले, यार !"

डूँगरसिंह ने जब देखा, कि इस समय उमादत्त की दुकान में सबसे महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति किसनराम बना हुआ है, और स्वयं उमादत्त भी, उसकी ओर आते-आते पलटकर, किसनराम को ही प्रमुखता दे रहा है, तो एक आक्रोश-सा आँखों में उतर आया, और झट से मानसिंह के पास पहुँचकर, नीचे टाँग-पसारे बैठकर—किसनराम को एक तरफ करते हुए—मान-सिंह के सिर को अपनी गोद में ले लिया—"जरा तू उधर होजा हो,

किसन मिस्तरी ! मानसींग ज्याठ बौज्यू का मरडर-केस मुझको बहुत डैन्जरस-केस मालूम पड रहा है।···शायद, जोर से धक्का दिए जाने की वजह से दिल और फेफड़े टूट गए है !"

इतना कहने के बाद, डूँगरसिंह ने मानसिंह की कमीज का गले का बटन खोला, और—एक बार अपने चारों ओर बहुत ही अर्थपूर्ण-दृष्टि को मुसिगा चील की तरह घुमाते हुए—फिर मानसिंह की कमीज के अन्दर अपनी हथेली को चक्की के ढीले पाट की तरह घुमाने लग गया।··

उमादत्त के पूरे शरीर में दाह हो रहा था, मगर परिस्थिति की विकटता के कारण उमादत्त उसे सहे जा रहा था। कहीं-कहीं ओस की बूँदों के आकार वाले फफोले उभर आए थे। डूँगरसिंह को मानसिंह का सिर जाँघ पर धरे छाती पर हथेली फिराते देखा, तो उमादत्त को पहले तो आशंका-सी व्याप गई, कि कहीं···फिर आशा के अक्षर उमादत्त के एक अप्रत्यक्ष-भय से थरथराते होंठो पर आइना-जैसा देखने लगे, कि 'डूँगरसींग जजमान बडा जानकार आदमी है, शायद, मानसींग के टूटे हुए दिल और फेफड़ों की मालिश कर रहा है !···और, शायद, मानसींग जुजमान के जाते हुए प्राण लौट आएँ ?'

मानसिंह की छाती के ऊपर डूँगरसिंह की हथेली और अँगुलियों का घुमाव जारी था, सो यह अनुमान लगाना कठिन था, कि दिल धड़क भी रहा है, या नहीं !

अचानक मानसिंह को एक जोर की हिचकी आई और, डूँगरसिंह की बाँई जाँघ पर से सरककर, घुटने तक पहुँच कर, उनका सिर एका-एक ऐंठकर, पलट गया—जैसे गरम कोयलों पर गीला पापड़ रख दिया गया हो।···

डूँगरसिंह ने झट से, छाती पर हथेली फिराना छोडकर, मानसिंह की नाड़ी अपने हाथ में ले ली—"अरे, रे, रे···हमारे मानसींग ज्याट बौज्यू की तो नाड़ी ठप्प हो गई है !···दिल तो पहले ही शांति हासिल कर चुका था !···"

"ओ, बबो रे !···फिर तो हो गया मुझ गरीब ब्राह्मण का सत्यानाश !"—चिल्लाते हुए, अपने सिर को दोनों हाथों से पीटते हुए, उमादत्त विक्षिप्तों की तरह खड़ा हो गया—"आज अब मुझ गरीब ब्राह्मण पर मुसीबतों का जो यह पहाड़ मेरी बुरी दशाओं ने गिरा दिया है···ओ, बबो रे !··मथुरादत्त रे, मेरे बेटा-आ-आ-आ—"

मानसिह का प्राण-पखेरू तो उड़ ही चुका है, अब शेष क्या होना है। मगर, इस प्रसंग का उपयोग उमादत्त को सदैव के लिए अपने वश मे करने के लिए किया जा सकता है और जहाँ दुकान खोलनी है, अपने ही बड़े भाई चरनसिह की टक्कर में उतरना है, तो कोई जरा पीछे से आधार देने वाला भी चाहिए—इस विचार मे डूँगरसिह की आँखों में कुछ ऐसी चमक आ गई, जैसे किसी बिल्ली को दूध की वह कढाई दिख गई हो, जिसके आस-पास घर का कोई आदमी भी न हो और दूध में से भाप भी न उठ रही हो !···

"शान्ति रक्खो, हो उमादत्त गुरू, जरा शान्ति से काम लो। जनम-मरण पर यहाँ के किस आदमी का काबू है ? यह तो सब परमेश्वरी लीला है, इसे तो किसन मिस्तिरी भी बेचारा बड़ी अच्छी तरह से समझता है। और वह आपके खिलाफ कभी भी कोई मरडर-केस खड़ा नही करेगा, क्योंकि हमारे मानसीग ज्याठ बौज्यू का प्राण-पंछी उड़कर स्वर्गलोक को चला गया है। और, कह भी रक्खा है, 'चल उड़ जा, रे पंछी'···और वह स्वर्ग पहुँचा हुआ पंछी, तुम्हारे खिलाफ सेशन-कोरटों में मरडर-केस चलाने से नही लौट सकता। किसन मिस्तिरी बहुत समझदार और बाल-बच्चो वाला, अपने काम में बहुत ही हुशियार आदमी है, वह जानता है, कि बीती ताहि बिसार दे और आगे की सुधि लेता जा !"—कहने तक, डूँगरसिह को मानसिह के सिर के भार से अपनी टाँग चसकती-जैसी लगी, तो उसने मानसिह का सिर नीचे, पत्थर पर रख दिया···इसके बाद डूँगरसिह ने 'अच्छा, हो सब लोगो, अब मिट्टी का ज्यादा मोह क्या करना है, मानसींग ज्याठ बौज्यू के लिए

फोर्का-फफल का बन्दोबस्त कर लेना चाहिए !' कहना ही चाहा था, कि मानसिंह की नाक से पानी का एक सिनक-सना फव्वारा-जैसा छूटा— जैसे बिना जाली की कितली की टोंटी में पत्तियों के जमाव से अटकी हुई चाय, एकाएक, मय पत्तियों के बाहर निकल पड़ी हो !···

धीरे-धीरे मानसिंह में चेतना लौटती रही, और फिर वह उपस्थित लोगों पर एक लोकोत्तर-दृष्टि डालते हुए उठकर, बैठ गए—"हरे राम, हरे राम !···अब कोई घबराने की बात नहीं है।"

उमादत्त ने अपना सिर पीटना छोड़कर, मथुरादत्त की पीठ पर हाथ फेरा—"मथुरादना रे, जा, मेरे बेटा ! हमारे मानसीग जजमान के लिए फारग एक हुक्का तमाखू का भर ला···अब हमारे जजमान के लिए ऐसे किसम का कोई खतरा नहीं है—इस बात की मैं खुद गैरन्टी दे सकता हूँ। और, इसी के साथ-साथ, अब हमारे लिए भी कोई वैसे किसम की मसीबत नहीं रह गई है···ओ-हो-हो—हाइ, सारे शरीर में चने-भुनाई-जैसी हो रही है !···"

डूंगरसिंह को न मानसिंह को मरा समझकर कोई विशेष मानसिक-क्लेश या हर्ष हुआ था और न उनके प्राण लौट आने से ही कोई विशेष-सुख-दुःख व्यापा। जरा-सी खुशी यह हुई, कि 'चलो, बेचारे मानसीग ज्याठ बौज्यू बच गए', तो जरा-सी कसक यह रही, कि 'उमादत्त गुरू को अपने वश में करने का एक जबर्दस्त मौका हाथों से निकल गया !···'

सभी अपने-अपने ढंग से मानसिंह के प्राण लौट आने की चर्चा कर रहे थे, कि अरे, ऐसा है ही, किसी की जिन्दगी का भरोसा ही क्या है, साली इस दो दिनों की दुनिया में ?···अरे, भाई, जब काल-आँधी चलती है, तो वन-खेतों के कच्चे फल-फूल भी टूटकर मिट्टी में मिल जाते हैं, पुराने पत्तों की भली चलाई !···अरे, खैर, 'जनम-मरण सब देबाधीना' कह रखा है, मगर कहीं अगर इस समय मानसीग काकज्यू को कुछ हो जाता, तो 'आपतो' डूबा बामुणा, ले डूबा जजमान' होती थी और बेकार में उमादत्त गुरु लपेट में आ जाते, कि 'मथनसीग चाहे अपनी

ही मौत से मरा, पर हरकसींग के हाथों में तो हथकड़ी पड़ ही गई !··"

"अरे, यह तो यह एक ऐसा मरडर-केस हो गया था, कि उमादत्त गुरू को दफा तीन-सौ-दो में जाने से कोई भी नही बचा सकता था, क्योंकि किसनराम-जैसे कई चश्मदीद-गवाह यहाँ पर इस चीज के मौजूद थे, कि वही हमारे भोपालदाज्यू की कही हुई मिसाल सामने आ सकती थी, कि जो भी मरा, मरने को तो अपनी ही मौत से मरा, मगर बहाना एक ऐसा हो गया, कि उलटी फाँसी हमारे उमादत्त गुरू के गले पड गई थी।·· क्योंकि दफा तीन-सौ-दो के मरडर-केस में खूनी शख्स को या तो फाँसी का फंदा मिलता है और या कम-से-कम—अगर, वो भी कोई जज-सेशन-कोरटी दयावान निकल गया, तो—कालापानी की सजा धरी-धराई है !"—डूँगरसिंह गम्भीरता के साथ बोला।

उमादत्त ने मथुरादत्त के हाथ से हुक्का लेकर, स्वयम् मानसिंह को दिया, तो उसकी काँपती उँगलियो को दबाते हुए मानसिंह बोले—"कोई बात नहीं, गुरू, अब घबराने की कोई बात नही है। सब चला-चली का मेला है।"

उमादत्त गद्-गद् हो गया—"धन्य हो, मानसींग जजमान, जै हो ! महाराज, इसी को कहते हैं ठाकुर-खून, कि मौत सिर पर आके चली गई, मगर मुख मलीन नही पड़ा। मैं आपका बहुत ही शुकुर गुजार हूँ, मानसींग हो, कि तुमने मेरी डूबती हुई नैया को पार लगा दिया···अब देने दो, कई चश्मदीद सालों को अपनी हलफबयानी···मेरा कुछ भी नही उखाड़ सकते ! मुद्दई अगर मुद्दाले के मन की बातों को समझके, यह कह देता है, कि 'फिकर करने की कोई बात नही हैं,' तो चश्मदीद गवाहों की तो ऐसी-तैसी मारूँ, उनसे कोई भी मरडर-केस, मेरे खिलाफ, किसी भी दफा का मेरे अँगूठे के बराबर भी खड़ा नही किया जा सकता, इस बात की गैरन्टी है !···"

उमादत्त ने अपनी ओर से आक्रोश केवल किसन मिस्तिरी पर उतारना चाहा था, मगर अनजाने ही चोट डूँगरसिंह पर भी पड़ गई

और वह तिलमिला उठा—" फौर युअर इनफौरमिशन, उमादत्त गुरू, ज्यादा गरमी दिखाने से आज तक किसी की भलाई नहीं हुई है। इसलिए, शांति रखो। सब्र करो·· थोड़ी देर पहले तुम अपना बरमाण्ड[1] दोनों हाथों से उमेदिया हुड़किए के तबले की तरह डबुल-रफ्तार से पीट रहे थे। और, बाद में औनली टू मिनिटों के, अभी अपनी छाती ठोंकने लग गए हो?···मगर, यह क्यों भूल जाते हो, कि एक दफा तीन-सौ-तीन भी है, जिसके द्वारा तुम्हारे ऊपर मरडर करने की कोशिशी का केस दायर किया जा सकता है!···इस दफा में भी कम-से-कम सात साल की सजा लगती है!·· और चश्मदीद-गवाहों में से कोई भी शख्स इस केस को सेशन-सुपुर्द कर सकता है!"

उमादत्त अब फिर सकपका गया। फफोलों का दाह बढ़ता ही जा रहा था। खिसियाए-स्वर में, बोला—"अरे, यार डूँगर जजमान! बेकार में मुझ गरीब ब्राह्मण का सत्यानाश क्यों करते हो, यार? अरे, महाराज, इस साल मेरे ग्रहों ने न-जाने मुझको कहाँ ले जाना है···अच्छा हो, डूँगर जजमान, यार, मेरे सारे शरीर में दहा-दहा हो रहा है। मैं जरा घर में जाके शांति के साथ लेटने की कोशिश करता हूँ। भूल-चूक माफ करना। गरीब ब्राह्मण हूँ। आइन्दा इस साली धौलछीना के लोगों से बचकर रहने की बरकरार कोशिश करूँगा, इस बात की मुझसे गैरन्टी लेले।···और बाकी मैं क्या कर सकता हूँ? ओ-हो-हो···मथुरादत्ता रे, मेरे बेट्टा, अपने डूँगर जजमान और किसन मिस्तिरी को जरा एक-एक घुटुक चहा पिलादे, रे!···"

कुछ आगे बढ़कर, उमादत्त दुकान के पिछवाड़े की तरफ जाते-जाते लौट आया—"मथुरादत्ता रे, मेरे बेट्टा, चहा तो लोगों के लिए बना ही देगा बाद में—मगर, पहले जरा मेरे जले हुए तन-बदन में अपनी फौन्टीन में डालने वाली स्याही की शीशी से एक हाथ फिरा जा···और

---

१. ब्रह्माण्ड का अपभ्रंश; सिर।

देख, मानसींग जजमान को भी चहा पिला देना। हाँ, रे, शाबाश, मेरे बेट्टा!"

० ० ०

उमादत्त के चले जाने के बाद भी, आपसी चर्चाएँ चलती रहीं और फिर हरकसींग-दुरगुली पडित्याण के कलह का प्रसंग प्रारम्भ हो गया—"मगर, चाहे कुछ भी हो, हरकूका को बिचारी पंडित्याणी के साथ झगडा नहीं करना चाहिए था। धौलछीना के लोगों पर पडित्याणी के कई अहसान है।"

बातों-ही-बातों में जब यह बात निकल आई, कि 'आज पहली बार पंडित्याणी ने नरूली की स्वै बनने से इनकारी कर दी है, कि जिस धौलछीने में मेरी इज्जत-आबरू की कोई कीमत नहीं, जिस धौलछीने में मेरे बुरे टैम का मददगार कोई नहीं, उसी धौलछीने में बेटे-बेटियों की पढोलरी करवाना अब मेरे बस की बात नहीं है!'—तो डूँगरसिंह एक सन्तोष की साँस लेते हुए, घर की ओर लौट गया—परमेश्वर करे, नरूली को आज खूब जोर-जोर की पीड उठे···और बच्चेदानी से बाहर को आता हुआ चतुरसिंह का बेटा, बीच रास्ते मे अटक जाए···और दुरगुली पंडित्याण बच्चा पैदा करवाने के लिए कदापि न आए···और··· और···और···

एक अन्दरूनी-अट्टहास की वीभत्सता और विकटता ने डूँगरसिंह के सारे शरीर को झकझोर डाला। उसे लगा, जैसे उसके शरीर में, प्रतिशोध की दाहकता से, फफोलों की एक गुच्छ-कतार-जैसी लग गई है···

डुँगरिया रे, एक मौका शायद, तुझे यह ईश्वर भी दे रहा है, कि नरूली बेटे को जनम देते हुए खुद ही टूट जाए—या कम-से-कम चतुरसिंह की वह निशानी शेष न रहे, जो नरूली के चित्त को, मुख-सामने के डूँगरसिंह पर से हटाकर, कश्मीर-फ्रन्ट में पड़े चतुरसिंह तक पहुँचाती है—और एक वह शूल नष्ट हो जाए, जिसकी कलेजे को छेदते चले जाने की आशंका है!···और इसके बाद एक रास्ता यह भी साफ हो सकता

है, कि जहाँ चतुरसिंह की निशानी आँखों से ओझल हुई और नरूली का चलायमान-चित्त धीरे-धीरे, कुछ दिनों के हेर-फेर से ही नहीं, डूँगरसिंह पर टिक गया, तो···शायद, डूँगरसिंह की एक टूटी हुई आशा पूरी हो जाए—

—और·· और···और···

हे-प-र-मे-श्-व-र···

वैसाखी का कम्पन रास्ते के कंकरों में टकराता चला गया—

२९

जैता भागुली-नदुली के साथ मडुवा गोड़ रही थी।

पर, पिछले कई दिनों से चलता कुरकुराट मन को हलकी-खेंच की गैली-जैसा फरफरा रहा था···अभी तो एक अछोर-जीवन-यात्रा शेष है।

"नानि गुसैंणी[1] आज कितने दिन हो गए हैं?"—भागुली ने, जैता की घाघरी की ओर आँखें फिराते हुए, पूछा और कुटल की नोक से सिर खुजाने लग गई।

"चौथा दिन नहाना है, वे भागुली, आज मैंने!"—जैता बोला—"बस, जरा चार हाथ तुम लोगों के साथ गोडने में लगती हूँ, उसके बाद फिर गाड़ चली जाऊँगी।"

"गुसैंणी वे, हाई, आग लगे इस औरत-जनम को, वे!"—भागुली ने एक गहरी उसाँस छोड़ी—"जरा सिर का मुकुट उठा नहीं, कि ले साली सारी जिन्दगानी का सत्यानाश हो गया। उमर-शाँक[2], गुसैंणी वे,

---

१. छोटी मालकिन। २. उम्र की कसम।

रोनरफी-दुखों से मन का मैदा हो जाता है। अपनी कमर जो टूटी, वह अलग—तन-मन का, माला, साज-सिंगार जो मिट्टी में मिल गया, वह अलग—और, दुनिया-भर की आँखों के चील जो चारों तरफ से उड़ते रहते हैं, हाइ, एक-एक कदम झसक-झसक के चलना पडता है !"

जैना चुप रही, तो भागुली को लगा, उसके वचन व्यर्थ हो गए हैं। गोड़ती-गोड़ती जैता दो डगर आगे बढ गई थी और नदुली भी।

भागुली ने अपने सामने का मडुवा एकदम से अलबला कर खिरोला और उन दोनों की बराबरी में आ गई—"मेरे हाथों की तो मार ही कुछ ऐसी है, कि कभी सिर में जूँ ने खाजी लगा दी, तो पीछे रह गई औरों से, कभी जरा अंगों में चिलैंनी लग गई, तो पीछे रह गई—मगर, एक हाथ फुर्ती से मारा नहीं, कि फिर यहीं पहुँच जाती हूँ।...लछिम गुसैंणी जब आती है गोड़ने को मेरे साथ, तो बिचारी बड़े उसके साथ कहा करती हैं, कि भागुली वे, तेरी-मेरी काम-कराई बिलकुल एक-जैसी है।"

नदुली को हँसी आ गई—"द, यह बात तो दरसल में सौ-में-से-एक है, वे भागुलि दिदी ! तेरा मास खाऊँ,[1] तेरी-लछिम गुसैंणी की-काम-कराई बिलकुल एक-जैसी है। थोडी देर तक सिर को गुजगुजाया, थोड़ी देर आँगड़ी-घाघरी के जूँ प्याच्च्-प्याच्च् पिचकाए, थोड़ी देर कान में कन-गड़ फिराया—जब तक तू इन कामों से फुरसत पाए, लछिम गुसैंणी अपनी बिणै[2] बजाती रही, तु-री-तु-रीं-करके...और फिर काँकड़ की जैसी एक ही उछाल मारी आगे को, मडुवा भले ही ठीक से न गोड़ा जाए !" कहते हुए, नदुली ने भागुली की गोड़ी हुई जगह के मडुवे में से दो-तीन जाले उखेलकर, कुटल से फर-फर नचाते हुए, एक तरफ पडे जालों के ढेर पर डाल दिए।

भागुली का रोष जाग उठा—"द, नदुली वे, तू कौन-सी दीवान-खानदान की काम-करैया है ? इस खड्डे के आलू, उस खड्डे के पिनालू

---

१. 'तेर मासु खों' एक शपथ। २. दंत-वीणा।

में खास फरक नहीं होता।···जरा अपने कनबुजों[1] और छाती का मैल तो देख पहले, पीछे मुझको नाम धरेगी।·· सच्ची कहती हूँ, वे जैंतुलि गुसैंणी, जो झूठ कहे, इस फसल क मड़वा न चखने पाए—इसके चुचों में भी मैल की ऐसी पपलेटर जमी हुई रहती है, कि दूद भी कच्यार[2]-जैसा निकलता होगा।···और, तुम ही बताओ, जैंतुलि गुसैंणी, कि जूँ किसके शरीर मे नही पड़ते ?···अरे, नदुली वे, बहुत सुघड क्या बनती है, मेरे तो सिर्फ सिर और इसके अलावा कोई दश-पाँच जूँ आँगडी-घाघरी मे ही पड़े होंगे, मगर तेरी और जगहों की तो अब क्या कहूँ, अगर सब ठौर नहीं पड़े होंगे, तो मैं इसी कुटल से अपना हाथ कलम कर लूँगी !"

अन्तिम वाक्य कहते-कहते, भागुली को जोर की हँसी फूट पड़ी—"हमारे सदराम जब इसके पास से निकलते है, तो ले सरासर अपना आँग ही खुजाते रहते है। सच्ची, वे जैंतुलि गुसैंणी !"···इतना कहके, एक होठ-हिलोरती-हँसी को हवा में फैला दिया भागुली ने—"द रे, चोट लगी प्यार की हलकी-सी घिनौडी चड़ी की पाँख में, घिनौड़ी कैसे उड़ी ?··· हाई, ठीक हमारी नदुली ब्वारी की तरह।···द-रे-रे-रे·· अहा-हा-हा··· हुँ-हुँ-हुँ ··कानों में कनसाँगली घुसी, कानो मे हुई फुर्र···हाई, मेरी नदुली घिनौडी को गुलेल-जैसी लगी, उड़ नदुली फुर्र-फुर्र-फुर्र····· "

नदुली गोड़ते-गोडते फिर आगे बढ गई थी। पीछे मुड़कर, देखने लगी भागुली की ओर, तो भागुली ने, द-रे-रे-रे-हुँ-हुँ-हुँ करते हुए, अपनी नाक की फुल्ली को अँगूठे और तर्जनी की कैंची मे फँसाकर, घुमा दिया—धूप की एक उजली कनी, सोने की फुल्ली की अठकोनिया-गोलाई में फँसकर, थोड़ी देर चमचमाती रह गई।

भागुली की बातों से जैंता को भी जोर की हँसी आ गई थी—"द, भागुली वे ! काम-काज में तू थोड़ी सुस्त ही सही, मगर स्वभाव और बोल-चाल में तू बड़ी रँगीली है।"

---

१. कानों के आस-पास। २. कीचड़।

नदुली ने अपने गले में पड़े वृत्ताकार चाँदी के 'सुत' को आगे से पीछे की ओर घुमा के, फिर ऐसे आगे की ओर कर लिया, कि धूप का एक छोटा-सा, चमकीला टुकड़ा, क्षण-भर को 'सुत' की वृत्ताकार-सफेदी में अटककर, सीधे भागुली की आँखों से जा चिपका—"द विस्ट्याणी ज्यू[१], अभी तुमने मेरी भागुली दिदी के पूरे रँग कहाँ देखे ? जितनी ही खाजी-खिलैली इसके तन-मन में, नीचे से लेकर ऊपर तक के बालों में पड़ी जुँओं के कारण लगती है और यह बानरियों की तरह, लै मेरी, नीचे से लेकर ऊपर तक के अंगों को घिगोड़ने लगती है—तुम्हारा मांस खाऊँ, ठीक इसी तरह इसकी आत्मा के अन्दर भी किसम-किसम के कुरकुरिया कीड़े पड़े हुए हैं। ये रँग-विरँगे शौकीन तबियती और जवान्यू के कुर-कुरिया-कीड़े जब हमारी इस भागुली दिदी के चित्त को घचघचाने लगते हैं, खजबजाने लगते हैं—तो, हाई रे मेरी भागुली दिदी, फिर कहाँ से तू किसी के काबू में रहेगी ?···हमारे जितू ज्याठ ज्यू रोज रात को कमरे से बाहर निकलकर, एकटक आँखों से—एकदम परचेत[२]-जैसे होकर—आकाश के टिमटिमिया-तारों को गिनते रहते हैं !···द-रे-रे-रे · हो-ओ-हो-ओ-हो · अरी, ओ मेरी दिदी भागुल्ली, कुछ दिन रहना इसी धौलछीने में, कुछ दिन चली जाना दिल्ली···ई-ई-ई···ह-रे-ह-र-अ-अ—हाइ वे, सुबह की धूप में बड़ी अच्छी चमकती है, वे, तेरी सुवा-नाक[३] की सोने की फुल्ली···ई-ई-ई···ह-रे-ह-र·· ···अहाँ-हाँ-हाँ-हाँ····द-रे-रे-रे···"

भागुली ने कुटल के बींन (बेंट) से नदुली की पीठ को गदगदा दिया—"ह-रे-रे-रे-रे···रे !···हट्ट, साली कठुली, अपनी जिठाणी का गीत जुड़ाती है ?···अच्छा, गाती है तो गा फिर। जरा मन भी विलम

---

१. राजपूतों को 'विष्ट जी' भी कहते है। यों विष्ठ राजपूतों की एक उप-जाति भी है। विष्टों की पत्नियाँ निम्न-वर्गीय शिल्पकारों द्वारा—'विष्टानीजी' कहकर सम्बोधित की जाती हैं, जो उच्चारण 'विस्ट्याणि ज्यू' हो जाता है। २. अचेत। ३. शुक-नासिका।

जाएगा। चल, वो वाला गीत गाते हैं, जो परार के साल चला था—'हिटगा भलो पगडण्डी को ढेस लागँछ त्यर···द-रे-रे·· त्यारा पछिला हिरन-जस मन भाजँछ म्यर···हुँ-हुँ-हुँ···हिट रुपसा जँगला-बाट···बजारा-बाट पयर[1]···'···रूपसा-आ-आ···ढेस लागँछ त्यर···द-राँ-राँ-राँ···रे-रे-रे-रे-रे······"

नदुली के हाथ का कुटल भी लय-ताल से चलने लगा—"द-रे-रें-रे-रे··रे···हिटगा भलो पगडण्डी को······"

जैंता खिलखिला उठी—"हाई, तुम दोनों तो पूरी अपने खसमों पर उतरी हो। जैसे ही शौकीन जितुवा और मदुवा हैं—ठीक वही रँगत तुम लोगों में भी है। · तुम्हारे गीतों को सुनकर तो मन में मौनों की जैसी मरामराट[2] भर जाती है··हिट रुपसा जँगला-बाटा···दिगौ लाली, हिया हिलुर-हिलुर जाता है, वे नदुलि!·· मगर, गीतों का सुख भोगने को भी बड़ी तकदीर चाहिए।······"

मडुवा के हरे-हरे पौधों की पतली-किनारी की बारीक-लम्बी पत्तियों पर पिनकट्टों की तरह कुदकती स्वर-लहरी, एकाएक, जैसे जड़ों की ओर लुढ़कती-लुढ़कती, जालों की मकड़ी-ताँत-नुमा रेशों में उलझ गई···एक ओस-कनी-अवसाद जैसे खिरोली हुई माटी-परतों में विलीन हो गया···दिगौ लाली!······

"गुमैणी", —'द-रे-रे-रे···' की टेक देती-देती, नदुली रुक गई—"तुम्हारे मुख दीठ पड़ती है, तो जैसे कंठ का गीत कंठ में ही किरमड़ के काँटे-जैसा अटक जाता है, कि लागी आग कमल-बन जला, कोकिल भई उदास—दिगौ, फूल खिला ऐसा हतभागी, भँवरा उड़ा अकाश!···कैसी

---

१. चलना भला सँकरी पगडण्डी का होता है, जिसमें तेरे तन से अपना तन टकराता है। तेरे पीछे मेरा मन हिरन-जैसा दौड़ता है। चल, रूपा, जंगल के रास्ते चलें, नगर-पथ से तो बहुत घुमाव पड़ता है।

२. भँवरों की जैसी गुनगुनाहट।

तुम्हारी शोभा होनी, कैसा तुम्हारा सिंगार होता, गुसैणी ? दिगौ, कैसे-कैसे सुख तुम्हे हाँसिल होते ? मगर, बिधना करनी ऐसी करी— पानी गयो तलाब को सूख, मछली तड़फड़ावे अधमरी !···हाइ, करमसीग गुसैं क्या गए, तुम्हारी सारी रौनक ही चली गई, जैतुलि गुसैणी वे !······ ईश्वर का यह अन्यायी-अंधेर खुद हमे अपनी आँखो से दिखाई दे रहा है, कि ''अरे पापी परमेश्वरा, जब हाथ न दिए, तब हलुवा काहे को दिया—?'' बन में फूली केतकी, बन मे ही मुरझाय—भँवरा उडा अकाश को, उडके लौट न आय !'···दिगौ······''

भागुली ने भी एक निगाले-नलतुरे की लम्बी नली-जैसी उसाँस छोडी—''द हमारी जैतुली गुसैणी का तो भरपूर जोबनावस्था में ही सारा सुख-सिगार उजड गया। द, करमसीग गुसैं की मोहनी-मूरत अभी तक मेरी आँखो में ज्यों-की-त्यों है, वे नदुली !···हाइ, विचारे कैसी काली सरज की तिरछी टोपी लगाते थे सिर पर ? चार आँगुल चौडा कपाल कैसा था चमचमान ? घाम में चलते थे, मुखड़ी की रँगत आइने की चमक को भी मात करती थी। और ऊपर से दाँई-बाँई तरफ को तोड़े हुए घुँघराले बुलबुल···हाइ, कहाँ भूली जाएगी वह सूरत ? कैसा लगाव लगा के बोलते थे, हम डुमणियों से भी, कि 'भागुली भौजा वे !'···हाइ, उनकी वह मोहिल-मुखड़ी मुझे टोकेगी, मेरा तो तन-मन कतुवे[1]-जैसा फरफराने लगता था।''

जैता को ऐसा लग रहा था, कि जैसे भागुली-नदुली दोनों मिलकर, वर्षों पहले के उस करमसिंह से उसकी भेंट कराने में लगी हैं, काल ने जिसकी सूरत के सूरज को असमय ही अस्त कर दिया था।

अहा, भागुली जैसे करमसिंह के मुख-मण्डल की धुँधली-रेखाओं को एक ठौर एकत्र कर रही है—जैंता की आँखों-आगे जो दश-पाँच पौधे मडुवे के हैं, ठीक उनकी हरियाली के ऊपर···जैसे उसकी आकृति को

---

१. तकली।

मडुवा-पौधों की हरियाली का आधार दे रही हो ·

और, जैता को लगा, कि जैसे करमसिंह की वही काली मरज की तिरछी टोपी वाली, चार अंगुल चौड़े माथे की दाँई-बाँई ओर छटकाए हुए घुँघराले बुलबुलों वाली सूरत एक आकार ग्रहण कर रही है और, ठीक जैता की आँखों के सामने के, पौधों की हरियाली के ऊपर आसन ग्रहण कर रही है···और उस हरियाली के अदृश्य आधार-स्तम्भों पर सूरज किरन-सी टिकी सूरत में अतीत के आँखरों को काले-काले बालों वाली दाढी-मूँछे फूट रही है···'हो गया हो, तुम तो मेरे गालड़ों में स्यूड़[1]-जैसे बुडाते हो !'···अहारे, उस दिन—जिस दिन करमसिंह ने उसे पहली-पहली बार खुली-बाँहों को प्यार से बाँधा था—उसने कैसी बिशरम बात कह दी थी ? छि हाडी, जैतुली भी नही खाएगी अपना हिस्सा ··—कह बैठी थी, कि, 'हँहो, पिरेम तो कर रहे हो, और मुझे कोई ऐतराज भी नही है। मगर, अपनी दाड़ी-मूँछ के बालों की तो फिकर रखा करो ? अभी-अभी तो फूटे ही हैं, गनेल के सींगों-जैसे कौले[2] हैं—इसी तरह से मेरे गालडों पर घिसोगे तो ठसाठस टूट जाएँगे ?'···और करमसिंह क्या कहता था, कि 'मुझे तो यह डर लगता है, कि कही मेरी मूँछ-दाड़ी के बाल तेरे कौले गालड़ों में घुस गए, तो मै अपना मुख तेरी होंसिया-मुखड़ी से अलग कैसे करूँगा ?'···

कुछ नही हो, कुछ नही। सब एक चलाचली का खेल था। धोखा था, मन को मिट्टी का बना के छोड गया।···जो करमसिंह ऐसा कहता था, वही एक दिन अपने मुखड़े को सदा-सदा के लिए अलग उठा ले गया—और जैता रह गई, अपने पूर्व-जनम के पापों का प्रायश्चित्त करने को, कि वह सूरज-किरन-सी सूरत सामने आती है और मन ऐसा मिट्टी में मिलता है, जैसे ठंडे पानी के लोटे में किसी ने लाल-लाल बाँज का कोयला डुबो दिया हो···छ्या-आँ-आ···

---

१. कपोलों में सुई। २. घोंघे के सींगों-जैसे कोमल।

अहा रे, उन दिनों जैता के अधरों में कैसे-कैसे अनगढ़-असंयत अक्षर फूटते थे ?···और एक दिन आज के है, कि मिट्टी में मिले हुए जैसे मुरझाए मन में ममता और वेदनाओं का महाभारत-जैसा फूटता है, मगर हर बार अधरों पर आते ही अपनी ही कथा-व्यथा के आँखर ऐसे लोप हो जाते हैं, जैसे बूँद-बूँद चूना पानी बालू की चट्टान के नीचे दब गया हो।

० ० ०

'तुम तो गोडाई-सिंचाई दोनों साथ-साथ कर रही हो, जैतुली गुसैणी ?"—कहते हुए, भागुली ने जैता के आँसू पोंछ दिए। जैता ने जल्दी से अपनी आँखों को चाल के कोने से पोंछा और, खिसियाकर, बोली—"भागुली वे, एक मेरा सुर भी आजकल परलोक जैसा रहता है।·· तू अपना वह रुपसा वाला गीत क्यों नहीं गा रही है, वे ?··· हाइ, तू और नदुली—तुम दोनों ने अपने खसमों से खूब गीत-जोड़ सीख रखे हैं !·· तू तो अपने घर में भी खूब गाती होगी ?···गुलजार करके रख देती होगी घर को ?···है न ?"

"द, गुसैणी हम गरीबों का घर क्या गुलजार होता है ? खसम हमारे दिन-भर ओढगिरी-बढईगिरी करेंगे, या अलमोड़ा की बाजार जाकर, लकड़ियों के गढौल[1] बेचेंगे, तब जाके घर में जरा नूण-तेल-तमाखू की सूरत दिखाई देती है। अपनी खेती हम फुटकपालियों के पास ठहरी नहीं। पराए खेतों में अपने हाडों का रस निचोड़ा, तब कहीं जाके हमको चार डाडू[2] जौल मादिरे का नसीब होता है, गुसैणी !"—भागुली उदास स्वर में बोली—"बाल-बच्चों के लिए फटा-पुराना वस्तुर चाहिए ही। हरुवा को अलमोड़ा के जी-याइ-सी कौलिज में भर्ती-जैसा कर रखा है, उसका खर्चा ठहरा ही। गास-टुकड़े सुबह-शाम के लगे ही ठहरे। चारों तरफ से हरुवा के बौज्यू की कमर में किसम-किसम के खर्चों की

१. गट्ठर। २. गहरा चम्मच।

धचकों का ही जार ठहरा।···ऐसे मे, 'चिन्ता चिता जलावे ऐसी—हाड-मांस सब राख भयो है, कोयला रहा न एक—मन-मूरख यह माया बतलावे कैसी' वाली ठहरी, गुसैंणी ! मगर, मन से दुखों के बोल फूटने लगे और आँखों में अँगारे-जैसे उपजने लगे, तो गीत-जोडों के रस के जरिए से, अपने दुखों की आँच जरा कमकर लेनी, बिलमा लेनी ठहरी, कि 'चोटें लागी चित्त मे, आँसू निकले आँख—अरे, मुग्ध मन दुख बिलमा ले, उड़े कबूतर-पाँख !'···याने, दुख को दूर फेंकना हुआ, तो 'ओबबो, गोइजो' करके कपाल पीटने की जगह चार जोड गीतों के मार दिए, कि द-रे-रे-रे-रे नाच, रे मना···नाच, रे मना, नाच !···बस्स, गुसैंणी !"

जैता ने कुटल आगे बढाया, ताकि बातो के बोझ से दबा मन थोड़ा मुक्त हो जाए। भागुली-नदुली के कुटल भी एक सीध के पौधों की जड़ों को खिरोलने लग गए। मडुवा के पौधो की हरियाली पर डोलती कपोत-पखी हवा जैसे एकाएक गूँगी हो गई। गीतों की गूँज जैसे हरियाली के वृत्तों को लाँघकर, खेतो पार चली गई थी।

मिट्टी खिरोली जा रही थी···खुटुर-कुटुर···खुटुर-कुटुर-खि-ड़ि-डि···डि···खेत-किनारे के मेहल-वृक्षों पर बैठे पंछी अपने थके पंखों को छटका-छटकाकर, अपनी चोचों के सिरे से छाती के बारीक रेशों को रुई-जैसा धुन रहे थे—सु-रि-रि-रि···फु-र्र-र्र-र्र···

जैता ने कुटल तेजी से चलाना शुरू कर दिया था—"द, अभी तक हमारी गोबिन्दी भी नहीं आई हैं। बिचारी को किसम-किसम के छोटे बड़े कामों में फँसा लिया होगा, लछिम दिदी ने।"

"जैतुली गुसैंणी वे, गोविन्दी गुसैंणी जरा आ जाती, तो जरा गले में एक घुटुक चहा की तो जाती !···हाइ, एकदम उदेख-जैसा लग रहा चित्त को।—" नदुली ने पौधों की जड़ मैं मिले एक पत्थर को दूर फेंकते हुए, जोर से दोनों हाथों को दुबारा पारी-पारी से छटकाकर, अपने होंठों को थपथपाते हुए; 'अ-प्पा-प्पा-प्पा-प्पा···' करके, लम्बी जँभाई ली

और हाथों को एक बार आकाश की ओर उठाकर, 'ओ-ई-ई-स्सि-स्स्...' करते हुए, टूटे हुए पंखों की तरह नीचे छोड़ दिया।

थोड़ी देर पहले गूँजते गीतों से गमकती हरियाली की तुलना में, इस समय की चुपचाप कसमसाती-सी हरियाली से ऐसा लग रहा था, जैसे दुँक्की-हुँ-दुँक्क-दुँक्की-हुँ-दुँङ...बजके हुड़के की पुड़ी, जोर का हाथ पड़ जाने से, फ्याट्ट फूट गई हो......

३०

गोबिन्दी के पाँवों की गति लटपटा रही थी ।

उसका मन इस तीखे शूल से बिधा चला जा रहा था, कि वैसे ही लछमा भौजी आकाश गुँजा के रख देती थी, अब तो उसके हाथ गोबिन्दी की पोल-पट्टी पड़ गई है ।

गोबिन्दी, घर का आँगन पार करने के बाद, खेतों की ओर दौड़ पडी थी । उसे लगा था, जैसे वह जितनी ही क्षिप्र-गति से आगे को भाग रही है, उतनी ही तीव्रता के साथ पीछे से लछमा भौजी के बचन उसके अंग-अंग में तीखे काँटे-जैसे चुभ रहे हैं—"देखो हो, अपनी गोबिन्दी लली के लच्छरण !" और एक दुसह व्यथा उसके तन-मन के जोड़-जोड़ को मरोड़ती चली गई—हे, परमेश्वर ! अब क्या करूँ ?

लछमा भौजी के हाथ पड़ गई है उसकी बात—पदमसिंह से उसकी लड्डूवाली सटबट की बात—तो सारे गाँव में ऐसे फैल जाएगी, जैसे हवा का भँवरीला-वेग धरती की मिट्टी-पत्तियों को उड़ाकर, शून्य में

घुमा-घुमाकर, दूर-दूर तक पहुँचा देता है—जैसे सूखे वन में लगी आग फैलती चली जाती है—जैसे आठ-दश मुट्ठी मडुवा के दाने अँकुराते है, पौधे बनते हैं और एक छोटे-से खेत की मिट्टी को अपनी हरियाली से पाट देते है !...

लछमा के वचन-बाणों को तो बिना खाद-पानी के ही बड़े झालरदार अंकुर फूटते हैं। धौलछीना गाँव के कोने-कोने में छा जाते है।... और जब ये वचन हर आदमी के कान खड़खड़ाएँगे—"ओ, बबा हो, आज से ही जब यह हालत है, तो कही एक-दो साल और मौरज्यू ने कही क्या नही करा। हमारी गोविन्दी लली का, तो बस ! चारों तरफ चमत्कार-ही-चमत्कार दिखाई देंगे। ह्वाइ, ऐसा बिशरम-निर्लज्ज तो हमने आज तक कोई नही देखा, कि कन्यावस्था मे ही भुटीकुन्द के लड्डुओं को पचकाने की यारी पाली जा रही है !'—तो गोविन्दी को ऐसा लगेगा, जैसे सारी धौलछीना में उसकी लछमा भौजी के वचन-बाण मरी भैंसो को उधेड़-उधेड़कर खाने वाले लम्ब-गरदनिया-गिद्धों की तरह मँडरा रहे है, और गोबिन्दी के तन-मन के जोड़-जोड़ में अपनी लम्बी-तीखी चोंचे घुसा रहे हैं—

गोविन्दी और तेज दौड़ने लगी। उसका हिया धुक्-धुक् कर रहा था। एक कातर-कँपकँपी उसके शरीर में बिजली-जैसी चमचमा जाती थी, कि अब कैसे वह किसी को अपना मुख दिखाएगी ?...कैसे—बौज्यू और दाज्यू के सामने जा सकेगी ?...कैसे गाँव-घरों के लोगों के व्यंग और लांछनों को सह पाएगी ?

गोबिन्दी ने दौड़ते-दौड़ते ही अपने मन को टटोला, तो उसने पाया, कि उससे सही नही जाएगी यह स्थिति।...उसे याद आया, दो-तीन वर्ष पहले, एक बाघ खेतों में घुस आया था। (वन की घास सूख चली थी। खेतों में गेहूँ की फसल खड़ी थी। बाघ का मन ललच गया होगा।) गाँव वालों को सूचना मिली, तो उन्होने चारों ओर से घेरा डाल दिया और लट्ठ-कुल्हाड़े-दतैया ले-लेकर, 'पकड़ो-पकड़ो-मारो-मारो'

करने लगे।···और थार, अपने लाल-लाल कानों को खड़ा करके, छोटी-सी पूँछ को बालुका पर लोटती मछली की तरह फड़फड़ाते हुए, कभी इस ओर भागता था, कभी उस ओर। कभी नीचे को भागता था, कभी ऊपर को!···ओहो, कैसी विकल विह्वलता थी उसकी आँखो में ?··· गोबिन्दी ने भी देखा था, मौत की विकराल-बाँहों के घेरे मे छटपटाते उस थार को···और उसके मन में एक करुण-कल्पना जागी थी, 'शिवौ, यह थार इन खेतों में आया ही क्यों होगा ?'

···थार की गेहूँ-खवाई-जैसी आज गोबिन्दी की भुटीकुन्द-लड्डू-खवाई हो गई थी।···उसके आगे-पीछे, ऊपर-नीचे भी तो लोगों की लाछनाओं के अविच्छिन्न-घेरे पड़ेंगे ?···हाइ, गोबिन्दी ! उस भुटीकुन्द का लड्डू खाने से तो, तेरे लिए, गू खा लेना अच्छा था। छि···

और गोबिन्दी का ध्यान अपनी कमर-बँधी रस्सी पर गया !···

० ० ०

दौड़ते-दौड़ते गोबिन्दी तलटान के खेतो के एकदम समीप पहुँच गई थी, पर अपनी आँखों के आगे छाए अन्धकार मे उसे नीचे के खेत में मडुवा-गोड़ती जैता, भागुली और नदुली नहीं दिखाई पड़ीं।···दिखाई दिया, सिर्फ सामने खड़ा मेहल का पेड़, जो दो खेतों के जोड़ पर खड़ा था। ···

३१

थाकदार के घर के निकट पहुँचते-पहुँचते, डूँगरसिंह के कानों में, लछमा की वाणी के वचन गूँजे—"रमुवा के बौज्यू हो, चाहे तुम कुछ भी कहो, मगर दूरंदेशी तुम लोगों के दिमाग में रत्ती-भर भी नहीं है। कल इस बात की नौबत कहाँ तक पहुँचेगी, इसकी कुछ खबर भी है ?"

"जो हो गया, हो गया, वे ? अब कम-से-कम तू तो बहुत पिरूल का पर्वत मत बना। तेरी जबान तो, बस, हर समय दिवाली के फटाकों की तरह फटफटाती रहती है। लोग हजार उपायों से अपने कुल-कुटुम्ब की लाज रखते है, मगर तेरी मति में ऐसे पाथर पड़े हुए हैं, कि 'आओ रे दुनियावालो, हमारी उघड़ी हुई देखो !' वाली हालत कर देती है।"—गोबरसिंह जरा रोष के साथ बोला। गोविन्दी की रुआँसी सूरत उसके मन को विचलित कर रही थी। वह जानता था, कि लछमा का अपनी वाणी पर वश नहीं है, गोबिन्दी को उधेड-उधेड़कर खा जाएगी। इस-लिए वह चाहता था, कि इस मामले में तो लछमा को जरा डाँट-फटकार

कर, समझा-बुझाकर—जैसे-तैसे उसके मुख से निकलते बचन-बाणों को रोकना ही होगा। नही तो, गोबिन्दी का मन तो दुखेगा ही, घर की प्रतिष्ठा को भी आँच लग जाएगी। और गोबरसिंह इधर कई दिनों से रसोई सँभाल रहा है, तो उसने कई बार देखा है, कि जब दाल की पतीली का पानी बहुत खौल गया, तो, अपने ऊपर के कटोरे को हिला-कर—पतीली की किनारियो से बांध से गिरते पानी की तरह छलक-कर—चूल्हे में जलती लकड़ियो पर गिर गया···भ्याँ-फ्याँ-फुत्-फुस्स्··· और जलती-लकड़ियों के नीचे दबी हुई राख के छर्रे चूल्हे से भी ऊँचे उठ गए···कुछ पकती-दाल में गिरे, कुछ गोबरसिंह की आँखों तक पहुँचे और कुछ चूल्हे-ऊपर की भरपाटी के तख्तों से चिपक गए।

···गोबरसिंह को ध्यान आया, कि उसी दबी हुई राख के छर्रे भरपाटी के तख्तो से नीचे को बहुधा धुँए की रंगत से स्याह पडकर, झोलियारों की तरह लटक गए···भोटिया कम्बल के नीचे की ओर लडबड़ाते लुमुरो की तरह, तख्तो से नीचे की ओर झूलने लगे···और रसोई-घर की रँगत मिट्टी में मिल गई···

लछमा के बचन-बाणों के छर्रे गरम-राख की तरह लोगों के कानों में फफोले फोड़ देने की सामर्थ्य रखते हैं, गोबिन्दी बेचारी क्या सह पाएगी ?·· शिबौ, सन्ताप से झुलस जाएगी छोकरी गोबरसिंह का मन मोह और सवेदना से कतकता गया।

लछमा ने इस बीच दो-चार वाक्य और भी छोड़ दिए थे कमरे में—"सड़ी हुई चीज को कितना भी ढँक के रखो, कभी-न-कभी तो वह बदबू मार ही देती है। फिर कुल की लाज तो बहुत बडी चीज है, उसमें अगर कोई खोट आ जाती है, तो तुम्हारे-मेरे-जैसे लोगो के लिए तो लोगों को अपना मुँह दिखाना मुश्किल हो जाता है। जो बिल्कुल बेशरम हों, उनकी भली चलाई। मेरे बौज्यू मेरी बाल्यावस्था में बड़ी-बड़ी पतिव्रताओं और रजपूताणियों के उपदेश दिया करते थे, कि 'चेली, एक वो भी औरतें थीं, जिन्होंने अपने पतिव्रता-जीवन के लिए अपनी जीती

जिन्दगी को चितों[1] पर चढा दिया था !'···और एक यह जमाना भी मेरे ही देखते-देखते सामने आया है, कि पतिव्रता होने का तो सवाल ही नहीं, लोग कन्यावस्था में ही यार-दोस्तों की सोबत[2] में फँसी हुई हैं।··· और वो भी एक मामूली मिठाई-जैसी चीज के लिए ?···छि···ऐसी हीन नियत भी किसी काम की नहीं होती, हो रमुवा के बौज्यू !"

अपने बौज्यू को लछमा की प्रखर-वाणी के प्रहार से अटपटाते देखा, तो रमुवा ने अपना मुँह लछमा की ओर किया—"हो गया, वे इजा ! तेरा मुख भी सौलखेत के घट[3]-जैसा दिन सानभर घड़घडाट करता रहता है। कहाँ की बात को तू खुद ही कहाँ ले जाती है, फिर बिच्छी के जैसे डंक मारती है। तूने क्या अपनी आँखों से देखा था, कि गोबिन्दी दिदी को किसने दिया था, भुटीकुन्द का लड्डू ?···पहले अपने सन्दूक के भुटीकुन्दों में से चोरी का इलजाम लगाती रही। बाद में, एक बात गलती से न मालूम क्या मेरे मुख से निकल गई, कि अब उसी की टाँग घसीट रही है !··· गोबिन्दी दिदी को तू इस तरह से मत भिमौडों[4] की तरह चटकाया करवे, इजा !"

लछमा पहले तो सकपका गई थी, कि उसी का रमुवा उसकी बोलती बन्द करने पर उतारू है। फिर सारा रोष एक साथ उबल पड़ा—"फचम्म मारूँगी एक फचैक[5] हरामी छोरे के मुख में, फिर याद करेगा, कैसी हुई थी करके। ओहो रे, मुझ-जैसी हीन ग्रहों की औरत भी इस दुनिया में कोई नहीं होगी।—जिसके खुद के खसम-बेटे ही उसकी खाल खींचने को कमर कसकर सामने खड़े होंगे, उसका भला दूसरा कोई क्या करेगा ?···मेरी तो ऐसी तकदीर फूटी हुई है, कि जिस बैल को बन के बाघ से बचाने की कोशिश की, उसी ने सीगों से कलेजा फाड़ के रख दिया। क्या रमुवा, और क्या रमुवा के बौज्यू···मैं जितना

---

१. चिताओं। २. सोहबत का अपभ्रंश। ३. पनचक्की। ४. बर्र। ५. थप्पड़।

ही तुम दोनों की जिन्दगी को बनाने के लिए अपने पराण गँवा रही हूँ, दश दूसरो की खरी-खोटी अपने सिर पर ले रही हूँ, कि चलो, चाहे कुछ भी हो, जैसे-तैसे मेरे मालिक रमुवा के बौज्यू और मेरे बाल-गोपालों की जिंदगानी सुधर जाए...उतना ही तुम दोनों बाप-बेटे मेरी हवा ढीली करने मे लगे रहते हो !...मेरी तो यह हालत है, कि 'जिस रमुटी में बीन'[1] ही नहीं होगा, तो चाहे उसमें कितनी ही तेज धार हो, जगल के पेड़ तो उससे कट नहीं सकते !'... यह मानी हुई बात है !"

गोबरसिंह अपने ही वैचारिक-द्वन्द्व में उलझा हुआ था, कि किस उपाय से लछमा को गोविन्दी की जेब में से निकले हुए भुटीकुन्द के लड्डू वाली चर्चा से विमुख किया जाए ?

रमुवा की समझ में यही नही आ रहा था, कि वह अपनी माँ की बातों का क्या उत्तर दे। वह तो सिर्फ यह चाहता था, कि गोबिन्दी को गोलियाँ न दी जाएँ। उसने सीधा-सादा प्रश्न किया—"इजा वे, मारने को चाहे तू मुझे, एक की जगह, चार झापड़ मार ले। मगर, मैं फिर भी यही पूछूंगा, कि तू आखिर गोबिन्दी दिदी और जैता काकी के पीछे क्यों पड़ी रहती है ?"

"अरे, रमुवा बेटे ? मुझको क्या तुम दोनो बाप-बेटे मिलके ढड़वे की जैसी आँखें दिखाते हो ? मैं क्या पड़ूँगी किसी के पीछे ? पीछे पड़ने वाले खुद ही सामने आ रहे है। अरे, पाप के पिण्डों को फूटते हुए 'टैम' ही क्या लगता है ? पोस्टमैन पदमसींग वाली बात सामने आ ही गई है, गोबिन्दी लली के सिलसिले मे...किसी दिन कोई और शख्श भी निकल ही आएगा !"—लछमा दर्पिल-स्वर में कहती रही—"मैं रमुवा के बौज्यू से पहले ही कह चुकी हूँ, कि बदनामी तो चौमास के बादलों-जैसी गरज-गरज के बरसने वाली चीज है, उसे तुम कैसे रोकोगे ?—मैं तो अपने कान पकड़के एक तरफ बैठ जाऊँगी, मेरा क्या

---

१. कुल्हाड़ी की बेंट।

है ? किसी की बुराई करने से मुझे कौन-सा राजा इन्दर का दरबार मिल जाएगा ?···मगर, जब अपने ही घर में इस प्रकार की भ्रष्टाचारिता और पाप होते देखती हूँ, तो चार आँखर थू-थू के मुख से निकलेंगे ही ?···मैं तो सच्ची अपने मन की बात बता दूँ, हो रमुवा के बौज्यू—तुम्हें जो-कुछ करना होगा, तुम करते रहना—लच्छरण एक गोबिन्दी लली के ही क्या, तुम्हारी जैता ब्वारी के भी···क्यों, रे रमुवा, तू अभी तक यहीं क्यों खड़ा है, रे ? तेरा क्या मतलब है, ऐसी बातों से ? बहुत बकमब्यायी करने लग गया है, डाँकू कहीं का ! क्यों रे, तूने ही नहीं कहा था, कि वह भुटीकुन्द का लड्डू पोस्टमैन पदमसींग ने तेरी आँखों के सामने गोबिन्दी लली को दिया था ?···अब इस समय 'कहाँ-किधर' कर रहा है। फटलिपन्ना[1] करते हुए शरम नहीं आती तुझे ?··· अच्छा, जा, जा, अब। तितर की जैसी चोंच क्यों उघाड़ रहा है, जबाब देने को ?···जा, अपना काम कर। कहाँ तुझे हैस्कूल में भर्ती करवाना है, कहाँ तेरे लिए बाकी सब चीजों का बन्दोबस्त करवाना है। और तू यहाँ बेकार में मेरा दिमाग खराब कर रहा है ! कमीनियों का पक्ष लेकर महतारी से लड़ता है ?"

"मैं रात को बूबू से कह दूँगा, कि इजा गोबिन्दी दिदी और जैता काकी को कमीनियाँ कह रही थी !"—रमुवा, गुस्से से तमतमाता, कमरे से बाहर को निकल गया।

"अरे, रात पड़ने तक क्यों ठहरता है, अभी जाके क्यों नहीं कहता ? 'बहुत दूर चले गए हैं, रात को ही लौटेंगे घर' कहना थोड़े ही हो रहा है। ईश्वर करे, मेरे दुश्मन वन से घर न लौटने पाएँ !·· जा, जा, डाँकू माले ! एक तेरे बौज्यू ने और तूने मिलके कुछ उखाड़ लिया था, एक अब तेरे बूबू मुझे फाँसी पर लटका देंगे !"—लछमा इतने जोर से चीखी, कि आँखों में आँसू उतर आए—"हाइ, मेरी-जैसी अभागी भी

---

१. गालबाजी।

ईश्वर दुनिया में किसी को नही बनाए। लोगों के दुनिया मे कितने ही मददगार होते हैं, जो उनके दुख-सुख में साथ देते है। मैं भरपूर सुहाग वाली और नौ-दश बाल-गोपालों वाली होकर भी अपने ही घर में निराधार और लावारिशों की तरह पडी हुई हूँ।—अरे, मेरे अपने ही खसम-बेटो को जब मेरी टीस नहीं, तो दुनिया के और पाथरों से मेरे लिए क्या पानी फूटेगा?"

फिर लछमा नीचे पाल पर बैठ गई और करुण-स्वर में विलाप करने लगी—'हे परमेश्वरा, तू ही करना इन्साफ, कि जो मेरे ही खसम-बेटे मेरे सिर में जूते-जैसे मारने को आते हैं। जितनी ही इनकी भलाई सोचनी हूँ मैं, उतनी ही बदनेकी मेरे सिर पर पडती है, स्साली!···बवा हो, आज से तुम्हारे ही सामने कान पकडती हूँ, हो रमुवा के बौज्यू, कि अब आगे तुम बाप-बेटो के कार्यों में दखलन्दाजी नही करूँगी।···"

गोबरसिंह ने धेवती को पकड़कर, लछमा की ओर सरका दिया—"जा चेली, अपनी इजा के आँसू पोंछ दे।···तू तो बेकार में विलाप करती है, वे! आँखिर इस घर के सारे काम-काजों को तूने ही अपने पूरे अखतियार में ले रक्खा है, पर मैंने कभी किसी किस्म की रुकावट डाली है, तेरे कामों में? इस घर की घरिणी तो ले-देकर तू ही बनी हुई है, इसलिए तुझे ही इस घर की सँभाल भी करनी चाहिए। अपने घर का पलस्तर कहीं से उखड भी जाए, तो उसे औरों को दिखाने की जगह, चुपचाप लीप के दुरुस्त कर देना, तेरा काम होता है। "जस जावै एक कोस, अपजस जावै अठार कोस' कह रखा है।"

"अरे, अठारही कोस क्या? जो कमीने करमों वाले होते हैं, उनके नाम का थूक तो पूरे अलमोड़ा जिले में फैल जाता है। बज्योली की चन्द्रिका माता वाले केस को ही ले लो, जो सदानन्दी मैया के धरमशाले में हुआ था।···कैसी हुल्ल-ऽ-ऽ···हो गई थी, सारे अलमोड़ा में?"—लछमा ने बैठे-बैठे ही गोबरसिंह को सुनाया।

"हो गया, वे रमुवा की इजा! तू भी कहाँ 'शक्तेश्वर की सड़क

मुक्तेश्वर, मुक्तेश्वर की सडक बागेश्वर' ले जाती रहती है !"— गोबरसिंह ने धेवती को लछमा के गले से चिपका दिया, ताकि वह उसकी बातों को जल्दी से काट न सके। फिर आगे बोला—"कहाँ चन्द्रिका माता वाला हमल गिराने का खतरनाक केस ठहरा, जिसको कई लोगों ने अपनी आँखों से देख लिया था। और कहाँ यह हमारे घर की मामूली-सी बात हुई, जो अभी तेरे-मेरे सिवा कहीं बाहर फैली भी नहीं है। कौन-सा तेरे लिए रमुवा हुआ, कौन-सी तेरे लिए गोविन्दी हुई—तू तो महतारी ही ठहरी, तेरे लिए सबकी माया ममता बराबर ठहरी।"

इतना कहकर, गोबरसिंह ने लछमा के गले पर से फिसली हुई, धेवती की बाँहों की वेड़ी फिर लछमा के गले में डाल दी—"अपनी इजा से अँगाल-भिड़ी[1] कर ले, चेली !"

लछमा का मन मातृत्व से मतमता गया। उसने चुपुक्क-चुपुक्क धेवती के कुसम्यारू[2]-जैसे कपोलों को चूमा, उसकी छोटी-छोटी हथेलियों को आपस में टकरा-टकराकर, 'ता-बुड़ी-ता-ता' करवाई। और फिर, गोद में लेते हुए, छाती से चिपका लिया—"द, कितनी प्यारी है मेरी पोथी ! द, तेरे अदिन मुझको ले जाएँगे। लाख बरस बचेगी मेरी चेली।"

धेवती ने, लछमा के आँकडे के भीतर हाथ डालकर, स्तन टटोलने का प्रयास किया, तो लछमा कुतरुवक बच्चों-जैसी हँसी हँस पड़ी—"ना, पोथी ! अभी इनमें दूद नहीं आया है। तेरा भुली[3] हो जाएगा, तब उतरेगा दूद। दश-पाँच दिन रुक जा। फिर एकाध घुटुक चुच तुझे भी पिला दिया करूँगी।..."

गोबरसिंह, लछमा को इसी स्थिति में छोड़कर, खिसक जाना

---

१. बाँहें गले में डालके गले मिलना। २. एक फल, जिसकी बाहरी पर्त सुनहली और चिकनी होती है। ३. भैया।

चाहता था—रसोई-घर की ओर। अचानक लछमा की सुधि आई, कि 'कभी गोबिन्दी लली भी अपनी इजा की छाती से लगी रहती होगी!' —और उसकी आँखों से ममत्व के आँसू ऐसे नीचे लुढक पड़े, जैसे हवा के हलके-से स्पर्श से ही दो पिनालू के पत्ते पलट गए हों—पिनालू के पत्ते, जो अपनी गहराइयों में वर्षा ओस की बूंदें सहेजे रहते हैं।

गोबरसिह को सुनाते हुए, बोली—"हूँ हो, एक मिनट ठहरो। कहाँ को कूद-जैसी मार रहे हो? अरे, तुम लोग तो लछमा के कलेजे को कुरेद-कुरेद के छोड़ देते हो।...मेरा तो ममेड़ी का मन हुआ, अपने दुश्मनों के लिए भी भरी हुई गागरि-जैसा छलछला उठता है।...अच्छा हो, अब तुम बाप-बेटे मिल करके बहुत बकमध्यायी मत करना मेरे साथ। मैं कान पकडती हूँ, आज से दूसरों की थुक्काफजीती में अपनी टाँग हरगिज-हरगिज नहीं अडाऊँगी। वैसे जलती हुई लकडी की आँच कहाँ जाती है, चूल्हे पर धरे तवे को ही लगती है। चन्द्रिका माता का जैसा केस होने मे भी देर ही क्या लग सकती है, अगर हमारे घर के—या किसी के भी घर के सही—कुछ लोग गलत रास्तों पर चलना शुरू कर रहे हों।...खैर, मुझे किसी से क्या लेना-देना है? मैं गोविन्दी लली वाली बात को अपने ही दिल में दबा दूंगी।...तुम ही बताओ हो, रमुवा के बौज्यू, भला गोबिन्दी लली या जैंता ब्वारी को दुख देने मे मुझे क्या सुख हाँसिल हो सकता है?"

रुकने की जगह, गोबरसिह एक सुख-सन्तोष की साँस लेकर, आगे बढ़ गया।

लछमा ने धेवती की झगुली का अगला पाट ऊपर को उठाकर, उसकी गोरी-उजली उदर-भूमि पर अपने अधरों के प्यार को फैला दिया—अप्पू-ऊ...मेरी पोथी...पप्पू-ऊ...धेवती को पेट में कुतकुती लगी, तो वह खितखिताट करने लगी...ई-ई-ई-ओ-ई...

'मेरी पोथी', कहते हुए, लछमा ने उसे फिर अपने गले से चिपका लिया।

बाहर चौतरे तक पहुँचे हुए डूँगरसिंह को पहले हल्की-सी खाँसी फूटी, फिर उसने आदरपूर्वक पुकारा—"क्यों हो, लछिम भौजी ? भव्वा को खेल लगा रही हो ? मैं तो पड़ाव का एक चक्कर मारके आ रहा हूँ, कि चलो, अब जरा चार बातें लछिम भौजी के मुख की भी सुन लूँ।"

३२

मानसिंह का मिडिल-पास बेटा गोपालसिंह आके, बहुत ही रोषपूर्ण आँखों से मथुरादत्त की ओर देखकर, अपने बौज्यू को सहारा देते हुए, घर को लौटा ले गया था, कि 'क्यों रे, मथुरिया, कहाँ गया तेरा बाप ? ठैर, मैंने जो अगर किसी दिन तेरी खबर नहीं ली तो ! ··ठैर तो सही, मैंने भी अगर अपने बौज्यू पर किए गए हमले का बदला तुझ से नहीं लिया, तो अपने बाप का बेटा नहीं ! ठैर, डू-डू-कबड्डी खेलने तो आएगा ही ?"

मथुरादत्त क्या उत्तर देता ? डू-डू-कबड्डी में जब गोपाल उसको पकड़ लेता था, तो उसे ऐसा लगता था, जैसे हड्डियों में एक-दो वक्र-रेखाएँ खींच दी हों दबाव ने, और सारे शरीर में कई अलग-अलग अंशों के कोण बन गए हों।···मथुरादत्त डर गया, कि डू-डू-कबड्डी खेले बिना उससे रहा नहीं जाएगा और गोपाल के हाथ जहाँ पड़ गया, तो वह न जाने कैसी तरकीब से उसकी डू-डू-डू-डू की एकतान-साँस को तोड़ दे ?

गोपाल की ओर देखकर, इतना ही बोल दिया—"यार, गोपाल, मेरे ऊपर तो तू खाली-पीली नाराज हो रहा है, डियर ! बाई गौड, मेरे बौज्यू बिल्कुल बेकसूर हैं। अभी-अभी कालापानी और फाँसी की सजा वाली दफा तीन-सौ-दो में जाते-जाते बडी मुश्किल से बचे हैं।···बाई फादर, मेरे बौज्यू तेरे बौज्यू की बडी इज्जत करते है, कि 'बिचारो के आखिरी दिन है। जहाँ तक हो सके अपनी ओर से सेवा कर देनी चाहिए !'··· तूने आते समय देखा ही होगा, कि मै तेरे बौज्यू को इसपेशियल और स्टौन-टी का गिलास पिला रहा था ? ··बाई मादर, मै बिल्कुल बेकसूर हूँ। ··"

दूर से गोपाल की आवाज पीछे को लौटी थी—"इस बात का फ़ैसला तो कल डू-ड्-कबड्डी के खेल में ही होगा, डियर !"

इतने में जयदत्त पोस्टमास्टर जी व हेडमास्टर मोतीराम जी भी नीचे पहुँच गए थे। मानसिंह के साथ उमादत्त, उमादत्त के साथ हरकसिंह और हरकसिंह के साथ दुरगुली पडितयाण के झगडे के सूत्र-सम्बन्धो की तह तक पहुँचने के लिए।

उमादत्त के पटाँगण में पहुँचते ही, हेडमास्टर मोतीराम जी ने म्यूजिक-मास्टर और पोस्टमास्टर जयदत्त जी को कुहनी की ठसक मारी थी····"पोस्टमास्टर सैप, कुल मिलाकर इन झगड़ो का एक तिरभुज-जैसा बनता है। हरकसिंह पहले दुर्गा पंडिताइनी से झगडा करता है, उसके बाद, उमादत्त से भी वही झगड़ा करता है—इसके बाद जो तीसरा झगड़ा इस समय हुआ था, वह भी मानसिंह के द्वारा उमादत्त के साथ हुआ है। क्या समझे आप, इन तिरकोणों से ?···याने इन झगडों का केन्द्र-विन्दु एक ही है···"

मथुरादत्त ने हेडमास्टर मोतीराम जी को देखा, तो एकदम से स्काउटिंग-नमस्ते करते हुए, खडा हो गया।

हेडमास्टर मोतीराम बोले—"चारों अँगुलियों को हमेशा एक साथ मिलाया करो, और अँगूठा भी हमेशा अन्दर की ओर, अँगुलिओं की जड़

में, हथेली की गद्दी पर टिका रहना चाहिए ! ··इसकौट-अ-अ···चारो अँगुलियों को आपस में मिलाते हुए, जिससे उनके बीच मे छेद नही रहे, और अँगूठे को उनकी जड में जमाकर—कुहनी की जोड वाली गहराई में पैंतालीस अंशो का कोण बनाते हुए—नमस्ते-ए-ए-ए···कर्र !"

फिर एकाएक, उसके गालों मे बारी-बारी से चपत मारते हुए, पूछा—"छोकरा कही का !···अरे, तेरे पिताजी कहाँ है ? हमने तो सुना था, कि उनपर हमला किया गया था ?"

"जी, मास्साहब ! बौज्यू पर तो ऐसा हमला हुआ है, कि बेचारे दफा तीन-सौ-दो और तीन-सौ-तीन मे जाते-जाते बचकर, किसन मिस्तिरी के अचानक हमले से, गरम चहा की कितली पर गिरके, सारे शरीर का भुर्ता-जैसा बनवा के, अन्दर के कमरे में लमलेट पड़े हुए हैं !"—मथुरादत्त ने तत्परता से उत्तर दिया—"मैं अभी-अभी उनके जले हुए शरीर पर अपनी फौनटीन वाली स्याही की मालिश मारके लौटा हूँ।"

पोस्टमास्टर जयदत्त जी ने कहा—"चलो हो, हिडमास्टर साहब, जरा उमादत्त के हाल-चाल देख आएँ। फिर मुझे जरा जल्दी से अपने पोस्ट-औफिस में लौटना है। एक अर्जेन्ट-रजिस्टरी की रशीद बनाते-बनाते चला आया था, उसको डिसपैच-बुक में बाई-नम्बर चढ़ाके, आगे बडे पोस्ट-औफिस अलमोडा को फौरवर्ड कर देना है।"

"चलो, पोस्टमास्टर साहब जी !···मेरा भी जल्दी ही लौटने का काम है।"—मोतीराम जी ने पहले अपना पाँव आगे बढ़ाया—"मैं भी अपने इस्कूल में दर्जा चार क्लास को ले रहा था। ब्लैक-बोर्ड में एक चक्रवृद्धि ब्याज का मूलधन एक हजार, आठ सौ पिचानब्बे और मिश्रधन के साथ-साथ साढ़े-सात रुपया प्रति वार्षिक ब्याज की दर वाला हिसाब लिखते-लिखते यहाँ को चला आया था। थोडे ही दिनों में तिलाडी के लछमसिंह डिप्टी साहब का मुआइना होने वाला है मेरे इस्कूल में !··· और तब तक मैंने अपने इस्कूल के बच्चों को जरा चुस्त और इस्मार्ट बना के रखना है।···क्यो रे, मथुरिया, तू क्यों नही आया, रे, आज

इस्कूल में ? मैंने तुझे 'ग'[1] कर दिया है ।

"मास्साहब, आपको तो मालूम ही है, कि आज सवेरे-सबेरे मेरे परमपूज्य पिताजी पर डूम और जिमदारो ने मिलकर हमला कर दिया था ? जिसका नतीजा यह हुआ, कि मै आज उपस्थित नही हो सका । मैं एक दिन की छुट्टी की अर्जी भेज दूंगा, मास्साहब, आप उसको पास कर दीजिएगा ! थैंक यू, सर !"—मथुरादत्त, अपने बौज्यू के कमरे की ओर इशारा करते हुए, दरवाजे के एक ओर खड़ा हो गया ।

मोतीराम जी पोस्टमास्टर साहब के कन्धे पर हाथ मारते हुए, बोले—"छोकरा बहुत फास्ट है । एक बात बहुत गहरी कह गया है । आप क्या समझे ? याने यह हमला जो है, सो डूम और खसियो की ओर से उच्च जाति के ब्राह्मणों पर है ।"

मोतीराम जी की आवाज सुनकर, उमादत्त ने चादर मुँह पर से हटाकर, उठने की चेष्टा की—"नमस्कार हिडमास्टर साहब, नमस्कार पोस्टमास्टर साहब !···अरे, बबा रे ! दहा-दहा-दहा हो रहा है···"

"लेटे रहो, गुरू, लेटे रहो !" कहते हुए, दोनों जन अन्दर पहुँच गए । मथुरादत्त भी अन्दर आ गया और उसने मास्टरों के बैठने के लिए दरी बिछा दी ।

"जा, मेरे बेट्टा, अपने पूज्य मास्टरो के लिए···ओ, बबारे !··· (हाइ, जरा-सी करवट लेने मे भी सारे बदन में दहा-दहा-दहा हो रहा है ।···) जरा जा, मेरे बेट्टा, अपने मास्टरों के लिए दो गिलास स्टौन चहा के बना ला, और दो बत्तियाँ कैंचीमार सिगरेट की भी मय सलाई के डिब्बे के—हाइ, सारे आँग में किरमल-जैसे चटका रहे हैं !···"

० ० ०

दोनों मास्टर, सिगरेटो की दम बन्द मुट्ठियो के पीछे वाले छेदों

---

१. जो लड़का उपस्थित न हो, उपस्थिति-पुस्तिका में उसके नाम के आगे 'ग' लगाया जाता है, अर्थात् 'गैर-हाजिर' ।

और चाहे और कोई हो—यहाँ का हर खसिया हममें से हर ब्राह्मण को दबाना चाहता है !"

"यह कौम ही बड़ी नमकहराम होती है !"—पोस्टमास्टर जयदत्त बोले—"हम लोग कितनी भलाइयाँ करते हैं इनके साथ ? म्यूजिक-मास्टरी करता हूँ, तो हर साल यहां 'रामलीला'—'वीर अभिमन्यु' और 'सत्य नारायण-कथा' के साथ-साथ 'श्रीमत् भागवत्-पुराण' करा देता हूं। इन खसियों के बाप-दादों ने भी कभी कोई इस प्रकार की धर्म-पुराण-विद्या सीखी थी ?···पुण्य मिलता है, धर्म मिलता है। सत्य-नारायण जी का प्रसाद इनको मिलता है। इसके अलावा जिन खसियों को 'दोतारी का तार' जोड़ मारने की तमीज नहीं थी, उनको राधेश्याम और उदयशंकर-तर्ज की चौपाइयों-दोहों का अभ्यास करा दिया। कई बिहाग, आसावरी, भैरवी, पूरवी, मारवी, काफी, हिंडोला, यमन कल्याण, श्याम कल्याण, खम्माँज और जैजैवन्ती आदि राग-रागनियों की शिक्षा दे दी। अब कई खसिया छोंडे मेरे पोस्ट-ऑफिस के आस-पास ही 'सा-रे-गा-मा-पा-धा-नी-सा-आ-आ-आ···सा-नी-धा-पा-मा-गा-रे-सा-आ-आ-आ···' करते फिरते है। इस सबके अलावा अपने पोस्ट-ऑफिस से हजारों रुपयों के मनी-ऑर्डरों को मैंने इन्हीं खसियों को दिया है। मगर, भलाई का वक्त नहीं है, लेकिन कौन किसी का अहसान मानता है ?"

हैडमास्टर मोतीराम जी ने नकफोड़ों से सिगरेट के धुएँ के साथ बाहर निकलते हुए बालों को, बाएँ हाथ की तर्जनी और अँगूठे के सिरे से चिमटी-जैसी बनाकर, उखाड़ते हुए—सिगरेट वाली मुट्ठी को दाएँ घुटने पर हिलाते हुए—जयदत्त पोस्टमास्टर से भी प्रगल्भ-स्वर में कहा—"क्या बात कही है, पोस्टमास्टर साहब ने। वा, लाखों की एक बात कही है। अरे, धौलछीना क्या पूरी कुमायूँ के खसियों में जो आज एक विद्या की लहर-जैसी दौड़ी हुई है, और हलकोड़-खसियों के बेटे भी जो बी० ए० एम० ए० की इम्तहानिशिनों को पास कर रहे हैं—

यह सब हमी ब्राह्मण लोगों की कृपा से ही तो हो रहा है ? खुद मेरा एक अपना जो छोटा-सा इस्कूल है, इसी मे मैंने इन खसियो के पचासों बेटों को अ-आ-इ-ई से लेकर, दर्जा चार के बेसिक रीडरों तक की पढ़ाई-लिखाई सिखा दी है। इसके अलावा विद्या के अनेक विषय और भी इन लोगों को सिखाए होंगे, जैसे कि—'भारतवर्ष का भूगोल', 'भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास', 'वनस्पनि-विज्ञान', कृषि उत्तम कैसे हो ?' 'मिट्टी का काम', 'बागवानी' आदि के अलावा ड्रीइग-कौपियों का आर्ट और गणित के जोड़-गुणा-भाग-पहाड़ा-मूलधन-मिश्रधन-प्रनि सैकडा ब्याज की दर, छोटाकोस्ट-मँझलाकोस्ट-बडा कोस्ट के सवालों को भी मैंने इन लोगों को सिखाया है। वैसे यहाँ के कोर्स से तो नही है, मगर मै खुद अपनी तरफ से कई सवाल बीज-गणित और रेखा-गणित के भी सिखा देता हूँ।···इन लोगो को इस तरह से ऊँची विद्या देने का नतीजा यह निकल रहा है, कि ये नमकहराम लोग हम ब्राह्मणों को ही गुलाम बना के रखना चाहते है। साँप के बच्चों को दूध पिलाना ऐसा ही होता है। क्या समझे आप, पोस्टमास्टर साहब ?···याने नेकी के बदले में बुराई इसी को कहते है।"

"खैर, ये तो हमारे कई प्रकार के फर्ज ही होते है, जिन्हे पूरा करना हमारा फर्ज ही होता है।"—उमादत्त शान्त स्वर में बोला—"पोस्ट-मास्टर साहब और हेडमास्टर साहब जी, आप दोनों का जो कर्तव्य है, उसे आप पूरा कर रहे है और उसके बदले मे आप लोगों को तनखा भी भरपूर मिलती रहती है। जैसे कि, मैं अगर किसी खरीदार को चहा पिलाकर, और उसके पूरे छै पैसे लेकर, किसी किसम का अहसान नही जता सकता—ऐसे ही हर आदमी अपने फर्ज को पूरा करता है। अब जयदत्त ज्यू ही 'श्रीमत् भागवत्' करते है, तो जितनी भेट-पूजा धौल-छीना के राजपूतों की ओर से मिलती होगी, उतनी इनकी दो महीने की तनखा भी नहीं होगी। रामलीला वगैरह का भी यही हाल ठहरा। इसके अलावा जस अलग से मिलता है, कि 'पोस्टमास्टरी और म्यूजिक-

मास्टरी—हमारे जयदत्त ज्यू डबल-मास्टरी में हुशियार हैं।'...यही हाल मोतीराम हेडमास्टर साहब जी का भी है, कि बाल-बच्चों वाले इनको परमेश्वर की जगह पर समझते हैं। और दही की ठेकियाँ, ताजा घी, सब्जी आदि समय-समय पर इन्हें देते रहते है। नहीं तो चौहत्तर रुपयों में अपना परिवार पालने में फूक सरक जाती इनकी![1]...याने, इस प्रकार के मामलों में ब्राह्मण-राजपूत का कोई सवाल नहीं उठता है। एक जजमान है, दूसरा पुरोहित है। दोनों अपनी-अपनी जगह पर है, और अपने-अपने कर्तव्यों की तामीली करते है।...याने पढ़ाई-लिखाई, कथा-बाचकी, म्यूजिक-मास्टरी आदि के सिलसिले में धौलछीना के क्या, कहीं के भी खसियों के साथ किसी किसम की स्वारथबाजी और दुश्मनी करने की सलाह मैं नहीं दे सकता। इस सिलसिले में तो हम ब्राह्मणों और राजपूतों को एकदम आपस मे मिलकर ही रहना चाहिए।...मैं जो इन खासियों से टक्कर लेने की बात करता हूँ, इसकी जड़ में कुछ दूसरी ही बात है।..."

उमादत्त की बातों से दोनों मास्टरों को आश्चर्य हो रहा था, और असन्तोष भी, कि जिस केन्द्र-बिन्दु के भरोसे एक बहुत बड़ी समस्या खड़ी की जा सकती थी, उमादत्त स्वयम् ही उससे बहुत दूर हट रहा है। फिर भी अपनी सिगरेट की समाप्ति की रिक्तता को दूर करने के लिए, मोतीराम मास्टर ने पूछ ही लिया—"तो फिर इतना बड़ा हल्ला-हो खड़ा करने की क्या आवश्यकता थी ? मैं तो इसे अपनी जाति-पाति-रक्षा का एक जरूरी काम समझकर, बच्चों को पढ़ाते-पढ़ाते छोड़ आया। आखिर मै सरकार से तनख्वा किस बात की लेता हूँ ? और, आज तुम्हारा बेटा मथुरादत्त क्यों अपनी कक्षा में उपस्थित नहीं हुआ ? यही हाल रहा उसकी गैर-हाजिरी का, तो उसके मेरे अपर इस्कूल से ही बाहर

---

१. 'फूक सरक जाना' एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है, 'हवा खिसक जाना।'

निकलने के लक्षण कम हैं। तुम्हारे हाइ इस्कूल और इन्टर-कौलिजों के सपने सब धरे ही रह जाएँगे !"

"हेडमास्टर साहब, जहाँ तक मथुरादत्त की पढाई का सवाल है, उसे आप इसी समय भी फौरन कान पकडकर, अपने इस्कूल मे ले जाके, अपने रजिस्टर मे हाजिरी भर सकते है। इस मामले मे मै आपके हर हुक्म को मानने को तैयार बैठा हूँ, हर तरह से।"—उमादत्त उठकर, पीठ-पीछे के एक सन्दूक के साथ कमर टिकाते हुए, बोला—"ओहो-दहा-दहा···सारे शरीर में एक जलन-जैसी हो रही है, मास्टर साहब !···मगर, राजपूतों—याने कि धौलछीना के खसियों—के साथ मोर्चा लेने की जो बात कही थी मैने, वह (पढ़ाई-लिखाई या म्यूजिक-मास्टरी के सिलसिले मे नही) जवाँमर्दी और लडाई भिडाई के मामले मे कही थी ! ··अब सोचिए, सवेरे बाल-ब्रह्मचारी हरकसींग मेरा गला पकड़ लेता है, और मै अपना सारा तराण[1] लगाकर भी, उसके हाथों की पकड मे अपनी गरदन को नहीं छुटा पाता हूँ। बाद मे, मै खुद अस्सी बरसों से भी ज्यादा उमर के बुड्ढे मानसींग को जोर से धक्का मारता हूँ; बुड्ढा बड़ी जोर से जमीन की तरफ को गिरता है, बेहोश हो जाता है।···मगर, थोड़ी देर में फिर खड़ा हो उठता है।···मेरा बेटा मथुरादत्त इन खसियों के बेटो के साथ खेल-कूद करने जाता है, और गुल्ली-डण्डा, डू-डू-कवड्डी तथा मुर्गी-चोर में मार खाके रोते हुए घर को आता है।···आखिर क्या कारण है, कि हम ब्राह्मण लोग ताकत के मामले मे इतने कमजोर हैं ?· ·अच्छा, आप दोनों मास्टर लोग यहाँ पर है—क्या आपमें से कोई चनरसींग, देबसींग या जसौतिया से लड़ाई में टक्कर ले सकता है ? बल्कि आप लोगों को तो थोकदार का नाती रमुवा भी अकेले ही फचका[2] सकता है ? मै इस बात की खुद···"

दोनों मास्टर तिलमिला उठे थे। मोतीराम हेडमास्टर तो अपने

१. बल। २. पीट।

आक्रोश को व्यक्त करने के लिए बेताब होकर दरी पर से उठ गए—"आखिर तुम हम लोगों को समझते क्या हो, उमादत्त ? आप क्या समझे, म्यूजिक-मास्टर साहब ? याने, उमादत्त हमारी मजाक-जैसी बना रहा है। यह हमारी खुली हुई इन्सल्ट है !"· · ··

'इन्सल्ट है' कहते हुए, मोतीराम हेडमास्टर साहब ने इतनी जोर से अपने दाएँ पाँव को पटका, कि जयदत्त जी की मुट्ठी में अटका हुआ सिगरेट का टुकड़ा (जिसे वो दम लेने के लिए अपने मुँह की ओर ले जा रहे थे) छिटककर, नीचे गिर गया और खाली मुट्ठी से जयदत्तजी के होठों पर घच्च-घच्च हलकी चोटें लग गईं—"क्या कर रहे हो, मोतीराम मास्टर ?"

"कुछ नहीं, सौरी !" कहते हुए, मोतीराम जी ने फिर अपनी आग्नेय-आँखों को उमादत्त की ओर लगाया—"उमादत्त, ब्राह्मण के काम आखिर ब्राह्मण ही आ सकता है ! इस तरीके से तो तुम ब्राह्मणों से भी वैर मोल ले रहे हो ?"

"ब्राह्मण तो, खैर, मैं खुद भी हूँ।···और, हेडमास्टर साहब, आप लोगों की दुआ से मुझमें भी इतनी कुव्वत बाँकी है, कि जैसे-कैसे ढदुवे ब्राह्मण तो मेरा कुछ भी नहीं उखाड़ सकते !"—उमादत्त, शरीर के फफोलों पर चादर के कोने से हवा करते-करते, बोला—"मैं तो ब्राह्मण-मैं-ब्राह्मण परशराम भगवान् को मानता हूँ।·· इसलिए नहीं मानता हूँ, कि उन्होंने इस पृथिवी को इकाईस बार खसियों से खाली कर दिया था—बल्कि, इसलिए, कि मौका पड़ने पर सारे संसार को खसियों से खाली कर देने की शक्ति उन्होंने हाँसिल कर रखी थी !···इसलिए जब सबेरे हरकसींग के हाथों की पकड़ से मेरी गरदन गिचक गई, तो मुझे अपने ऊपर बहुत जोर का गुस्सा आया।···और उसी गुस्से में, बाद में, मैंने मानसींग जजमान-जैसे बाप-बरोबर वृद्ध सज्जन पुरुष को भी जोर से धक्का मार दिया और दफा तीन-सौ-दो के मरडर-केस में जाते-जाते बचा! ···दरसली में, हरकसींग साले ने मेरा दिमाग इस तरह से बेकाबू

कर दिया था, कि एक तो विधवा ब्राह्मणी दुरगुली भौजी की छाती में हाथ मारकर, उसकी दूद से भरी हुई तौली को उलटाकर दिया, दूसरे— गुनाह को कबूल करके माफी माँग लेने की जगह—मुझ ब्राह्मण का गला घोंटने लगा।···इसी सिलसिले में जब मानसीग जजमान से भी, जबान-दराजी होते-होते, फौजदारी तक नौबत जा पहुँची, तो मुझे एकाएक परशुराम भगवान् की याद आ गई और मैने मानसीग को ललकार ही दिया, कि 'सँभल, रे खसिये! अकेला ब्राह्मण है करके, दबाने को मत देख!···धनुष-यज्ञ के दिन राम-लक्ष्मण पर बिगड़ने वाले परशुराम भी अकेले ही ब्राह्मण थे, जिन्होंने इक्काईस बार धौलछीना-समेत इस सारे ससार को खसियो से खाली कर दिया था!'···मगर ··मगर, मै मानता हूँ, उस राजपूत बृद्ध पुरुष की बुद्धि को, कि झट्ट से क्या बोला—'सीता-स्वयम्बर के दिन अपने फरसे से राम-लक्ष्मण के ऐक्टरो की फूक सरका देने वाला परशुराम, कोई ब्राह्मण नहीं, रे, बल्कि मेरा छोटा ठाकुर भाई आनसींग है!'···और बात दरसल सही थी, क्योंकि धौलछीना की रामलीलाओ में एक लम्बी मुद्दत से परशुराम का जोरदार पार्ट आनसीग ही खेलता आ रहा है!···"

मथुरादत्त चाय के गिलास लेकर आ पहुँचा। चाय गरम थी, इसलिए उसने बाहर से एक-एक खाली गिलास भी लगा रखा था। मथुरादत्त के हाथ से चाय का गिलास लेते हुए, पोस्टमास्टर जयदत्त जी बोले—"शाबाश, बेटे!···उमादत्त गुरु, असल में इन खसियो को दर्प बहुत हो गया है। 'मेरी बिल्ली, मुझी को म्याऊँ' वाली बात है। खैर, गुरू लोग तो फिर भी गुरू ही रहेगे।···अब के भी 'रामलीला' के ऐक्टरों का चुनाव मेरे ही हाथ में रहेगा। इस साल परशुराम का पार्ट हम आनसींग को तो हरगिज-हरगिज नही देंगे!···"

मोतीराम मास्टर प्रसन्न हो गए। उन्होंने जयदत्त जी की पीठ पर हाथ मारा—"वा, क्या बात कही है आपने, म्यूजिक-मास्टर साहब! एक खसिये को भगवान् परशुराम-जैसे ब्राह्मण-कुल-रक्षक का महाप्रतापी

पार्ट देना—हम ब्राह्मणों की एक बहुत बडी मूर्खता है।···और, हाँ, लक्ष्मण या भरत का पार्ट तो उमादत्त गुरू का मथुरादत्त भी कर सकता हे ?"

"लेकिन इसे उदयशंकर-तर्ज की चौपाइयाँ गाना नहीं आता है।··· और सिखाना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि जहाँ उदयशंकर-तर्ज की चौपाइयों मे 'नाथ शम्भु-धनू भजन हा-आ-आ-आ-रा-आ-आ-आ' की लय को लम्बा लेना पड़ता है, वहाँ इसका गला 'नाथ शम्भु-धनू-भंजन हा-आ-आ···' पर ही जवाब दे जाता है और चौपाई का मम भी टूट जाता है, लय भी विगड जाती है ! —" जयदत्तजी ने, हा-आ-आ-आ की स्वर-लहरियों को कमरे में फैलाते हुए, सगर्व कहा—"सही तर्ज यह है···"

"म्यूजिक की टरेनिंग तो पिछले साल आपने ही दी थी, इस लड़के को, इसलिए इस मामले में तो मैं कुछ नहीं कह सकता।"—चहा की घुट्‌क मारते-मारते रुककर, मोतीराम मास्टर बोले—"मगर, भूगोल, इतिहास और बेसिक-रीडर आदि विषय इसको खद मैने पढ़ाए हैं और तकरीबन इन सभी विपयो मे यह हुशियार ही है।···"

जयदत्तजी ने मोतीराम मास्टर का व्यग समझ लिया था, मगर सहसा उत्तर नहीं सूझा, तो जरा कटु-स्वर में बोले—"यार, मोतीराम, यह घड़ी-घडी हाथ चलाने की कमीन आदत तुममें बहुत बुरी है। आगे तुमने मेरी पीठ पर हाथ मार दिया, और तमाम मेरी धोती मे चहा के दाग पड गए है।···उमादत्त गुरू, मेरे विचार से यही फैसला ठीक रहेगा, कि इस साल की 'रामलीला' में परशुराम का पार्ट आनसींग को हरगिज-हरगिज नहीं दिया जाए !···मथुरादत्त को लक्ष्मण या भरत की ऐक्टरी देने की भी मैं कोशिश करूँगा। वैसे इसके लिए तिरजटा का पार्ट ठीक रहेगा, क्योंकि उसमें सिर्फ प्रोज पढ़ने पड़ेंगे इसको।···"

"खैर, और सब पार्टों के फैसले तो होते रहेंगे, मगर परशुराम का पार्ट अगर आनसींग को नहीं दिया गया, तो दूसरा कौन करेगा ?"—उमादत्त ने प्रश्न किया।

"अरे, और कोई भी नही सही।···मैं खुद परशुराम का पार्ट खेल लूँगा। जो तर्ज-लय मै दिखा सकता हूँ, अपने गायनो में—आनसीग की क्या हस्ती है?—" पोस्ट-मास्टर जयदत्तजी सदर्प बोले।

"मगर, महराज, म्यूजिक-मास्टर साहब! गायन गाना अलग चीज है, ऐक्टरी करना दूसरी!···गायन और राधेश्याम-तर्ज-उदयशंकर-तर्ज के गवैया आप आनसींग से बड़े है, इसमे कोई शक नहीं। मगर, जहाँ तक परशुराम का पार्ट खेलने का सवाल है, आप आनसीग का मुकाबला हरगिज नहीं कर सकते—इस बात की गैरन्टी खुद मै दे सकता हूँ!—" उमादत्त बोला—"अहा रे, ठाकुर आनसीग, वा!···जिस समय 'रामलीला' के तीसरे दिन धनुष-यज्ञ होता है। सीता-स्वयम्बर के लिए मरियादा परपोत्तम का ऐक्टर रामराजा रमुवा कैलाशपती शंकर भगवान का गाँडीब धनुप तोड देता है और इस्टेज की पिछली तरफ थोकदार जमनसींग जजमान अपनी भरुवा[1] बन्दूक की फैर छोड़ते है···अहा रे, चम्-चम्-चम्-चम् अपने महा बिकराल दानसीग मालदार के लकडचिरय्ये पंजाबियों के बरावर चौड़ा कुल्हाड़ा लेकर, सम्पूर्ण रामलीला-मैदान को हिलाते हुए भगवान् ब्राह्मणराज प्रतापी परशुराम जी आते हैं—मानना पडेगा, आनसीग की ऐक्टिग को—उस समय यही लगता है, कि जैसे इस्टेज के अन्दर से आनसींग नही निकला है, बल्कि साक्षात् परशुराम ही कैलाश परवत पर से उठके चले आ रहे है···फ-र-र-र · क्या फरसा चमकाता है, आनसींग उस समय!···अरे, महराज, आखिर रात-दिन कुल्हाडी चलाने वाला जिमदार ठहरा। कभी जंगल लकडी काटने को भी जाता है, तो कन्धे पर रखी कुल्हाड़ी दूर से ही चमचमाट-जैसा करती रहती है!···"

पोस्ट-मास्टर जयदत्तजी ने असन्तोप-आक्रोश-भरी आँखों मे मोती-

---

१. बिना कारतूस की बन्दूक, जिसमें छड़ से ठोंक-ठोंककर बारूद भरी जाती है।

राम हेड-मास्टर की ओर देखा, और कुछ ऐसी ही किस्म की आँखों से मोतीरामजी ने जयदत्त म्यूजिक-मास्टर की ओर देखा···

उमादत्त कहता रहा—"उस समय तो, जिस समय मानसीग जजमान से झगड़ा हुआ था, मुझे भी बहुत जोर का गुस्सा आ गया था, कि इसी बूढ़े खसिए का छोटा भाई महाप्रतापी परशुराम का पार्ट खेलता रहा है—यह मेरे लिए शरम की चीज है, सारी ब्राह्मण-जाति के लिए नामोशी की बात है।···मगर, बाद में, जब दफा तीन-सौ-दो में जाते-जाते बचा—और सोचा, कि जिस अस्सी बरस से भी ज्यादा बूढ़े ठाकुर को मैंने जोर से धक्का मारा था, वह तो घर को चला गया चड़ाम्म्[1] से उठकर, मगर मैं जवान आदमी यहाँ दरी-चद्दर में लमलेट पड़ा हुआ हूँ, तो मेरे बरमाड में एक ब्रह्म-ज्ञान-जैसा फूट गया, कि 'उमादत्ता रे, आदमी चाहे किसी भी जात का हो, उसमें ताकत और जिन्दादिली होनी चाहिए। और, खुदा-न-खाँस्ता, अगर उसमें बदनशीबी से ये चीजें नहीं हों, तो उसे दूसरों की जँवामर्दी की कदर करनी चाहिए!'···"

इतना कहकर, उमादत्त ने अपनी आँखो को मूँद लिया। मोतीराम हेड-मास्टर और जयदत्त पोस्ट-मास्टर—दोनो मास्टर खिसियाए-से उठे, और लाचार-स्वर में, मोतीराम मास्टर बोले—"अच्छा हो, उमादत्त गुरू, थैंक्यू फौर टी-गिलासेज! तुम्हारी कुल बातो को मिला के (पोस्टमास्टर साहब की बात तो मै कह नही सकता) मगर मै खुद इस आखिरी-नतीजे पर पहुँचा हूँ, कि 'गौरी-गौरी, पेट में गडबड़, मन में औरी[2]'—सो दैट, आइ ऐम भेरी सौरी! भेरी सौरी फौर दिस दैट, कि हमने बेकार में अपने इस्कूल और पोस्ट औफिसों का हरजा किया।···"

जयदत्त जी बोले—"अरे, हेडमास्टर साहब? दरअसल पोजीशन यह हो गई है, कि उमादत्त को हरकसींग-मानसीग आदि जिमदारों ने थोड़ा-बहुत धक्का दिया है।···"

---

१. फुर्ती। २. और ही।

उमादत्त ने चणाक्क उठकर, जयदत्तजी का कन्धा पकड़ के, जोर-जोर से, धचबचा दिया—"म्यूजिक-मास्टर साहब, धचकाता भी वही है, जिसमें कुछ कुव्वत होती है।···आप क्या परशुराम का पार्ट खेलेंगे? जरा-सा हेड-मास्टर साहब ने पाँव जमीन पर पटका, तो आपकी मुट्ठी के अन्दर घुसी हुई कैंचीमार सिगरेट बाहर छटक गई···अगर, कहीं हरकसीग या आनसीग ने ऐसा किया होता, तो आप मय कैंचीमार सिगरेट के धरती पर टोटिल[1] हो जाते, इस बात की गैरन्टी मैं खुद दे सकता हूँ।·· ब्राह्मण-राजपूत जात-पाँत का जहाँ तक सवाल है, 'राम-लीला'-'श्रीमत् भागवत्' और अपर प्राइमरी इस्कूल की पढ़ाई-लिखाई जैसी धार्मिक और विद्या-सम्बन्धी बातों को लेकर, किसी भी जीत से बैर रखना साक्षात कमीनपन्ना है। विद्या है, वह सबके लिए है। और जिसके पास है, उसके लिए संगीत-बिद्या को अपने पास से औरों तक पहुँचा देना, यह उसका फर्ज है।···मैं तो सवाल उठा रहा था, कि शारीरिक कुश्तियों में जो हम ब्राह्मण लोग इतने कमजोर हैं, हमें अपनी इस कमजोरी को दूर करना चाहिए, ताकि अगर हरकसींग-जैसा कोई खसिया मुझ-जैसे ब्राह्मण का गला बेकसूर पकड़ ले, तो उसे मैं एक ही झटके में छुडा दूं।"

अपने कन्धे पर से उमादत्त के हाथ के निशानों को झाड़ते हुए, पोस्ट-मास्टर जयदत्तजी कमरे से बाहर को निकल गए। पीठ-पीछे से, लेटते हुए उमादत्त की तीखी आवाज जयदत्त पोस्ट-मास्टर के कानो मे डांस[2]-जैसी घुस गई—"होल्डर-पेंसिल चलाने में ही हाथ सात जगह से बाई[3] पड़ा हुआ-जैसा हिलता है, मेरे यार पार्ट खेलेंगे परशुराम फरसा वाले का!···अरे, कह रक्खा है, कि 'जिसका पेशा उसको छाजे, और करे तो ठिंगा बाजे!'···परशुराम का पार्ट जो आनसींग खेल सकता है,

---

१. औंधा। २. एक बड़ा मचछर, जो बहुत ही तीव्र दंश देता है। ३. लकवा।

दूसरे किसी का बाप भी नहीं खेल सकता, इस बात की मैं खुद गैरन्टी दे सकता हूँ! ···अरे, आखिर 'रामलीला'-कमेटी को हर साल सवा-दश रुपयों का चन्दा मैं भी देता हूँ। उसका मेम्बर भी हूँ। देखता हूँ, कौन साला आनसींग को परशुराम का पार्ट खेलने से रोकता है?"

३२

किसनसिंह और कलावती रमुवा से यह सूचना पाते ही घर को रवाना हो गए थे, कि किसनू बुबू हो, मुझे गोपुलि आमा ने यहाँ इसलिए भेजा है, कि उधर नरूलि काकी को पीड़-जैसी उठी हुई है। और, हरकू बुबू के आँग में, दुरगुली पंडित्याणी आमा की भैंस के सामने सैम देवता का अवतार फूट गया था, जिससे दुरगुली आमा की कमर से दातुली बाहर निकलने तक की नौबत पहुँच गई थी। बीच में, हरकू बुबू ने एक कचक उमादत्त गुरु की गरदन में लगादी थी। इसके अलावा, भैंस बिछुर गई थी, सैम देवता की होर्त्त-छोर्त्त से, तो उसने लात मारके दुरगुली आमा को, मय उसकी दूद की तौली के, चित्त कर दिया था। ···इन्ही सब बातों से नाराज होकर, दुरगुली आमा ने तुम्हारे यहाँ आने से इन्कार कर दिया है, जबकि बिचारी नरूलि काकी को एकदम जोर की पीड़ उठी हुई है।···'

किसनसिंह ने घर पहुँचकर, गोपुली काकी को बुलाया, कि 'हँहो,

गोपुली, अब क्या करना चाहिए ? अगर दुरगुली पंडित्याणी नहीं आती है, तो और किसको बुलाना ठीक रहेगा ?"

गोपुली काकी ने अपना सुझाव यह दिया, कि 'जहाँ तक हो सके, एक चक्कर तुम भी मार आओ हो, किसनू ज्याठज्यू, दुरगुली बामुणी के पास। छि, बहुत घिमण्डी औरत है। ...मगर, इस समय तो हमारी गरज पड़ी हुई है। और 'गरज पडी, तो गधे को बाप बनाना पडा'—यह एक मिसाल चली हुई है। वैसे, इसके, याने दुरगुली बामुणी की खुशामद करने के, अलावा दो काम और भी कर लेना ठीक रहेगा। पहला तो यह, कि गोल्ल-गंगनाथ देबों के अलावा, सैम देवता के नाम का भी 'उचैण'[1] रख दो। उस दिन तुम्हारे पराँगण में हरकसीग बेचारों का सैमासन लग गया था···और आज नरूली ब्वारी को पेट-पीड़ भी ठीक उसी पराँगण में, बिलकुल उसी ठौर—उखल के पास—उठी है, जहाँ हरकसीग का पद्मासन लगा हुआ था।···इसके अलावा गोल्ल-गंगनाथ देबों की भी जता लेना अवश्यक है, क्योंकि उस दिन हरकसीग के सैमावतार का पद्मासन खोलने में मेरा·· याने मेरे आँग में उतरने वाले गोल्ल-गंगनाथ देबों का भी दखल रहा है·· (हाइ, ऐसा कहने मे मेरा अंग-अंग धिरधिराट-जैसा कर रहा है।) तो पहला काम तो यह देबताओं की जता लेने का करलो, और दूसरा यह, कि परमेश्वर की दया से नाती

---

१. रोग-मुक्त होने के लिए और किसी दुख-विपत्ति को टालने के लिए, उस देवता के नाम का 'उचैण' रखा जाता है, जिसके बारे में यह आशंका होती है, कि कहीं इस देवता का ही कोप तो नहीं है। 'उचैण' में मुट्ठी-भर चावल और पैसे रखते हुए, यह प्रार्थना की जाती है, कि 'परमेश्वर हो, रोग-शोक दूर कर देना। कोप शान्त करना। अगर हमारी पुकार तूने सुनली, तो तेरी पूजा अमुक ढंग से, अमुक दिन करेंगे।'···'उचैण' संभवतः 'उच्चरण' का अपभ्रंश है, क्योंकि इस में देवताओं के नामों का उच्चारण किया जाता है।

का मुख तो देखोगे ही, सो एक चिट्ठी इसी समय डॉक के लेटरबक्स में छोड़ दो, कि चतुरिया जिससे इस चिट्ठी को पाते ही घर को रवाना हो जाए और नामकरण के दिन तक घर जरूर-जरूर पहुँच जाए। नही तो चोके मे कौन बैठेगा ?·· सैकड़ो मील की दूरी ठहरी, आखिर चतुरिया कितनी भी तेजी से रवाना होगा, तो भी यहाँ पहुँचने तक नौ-दश दिन तो लग ही जाएँगे ?"

किसनसिह यह कहते हुए अन्दर को चले गए कि 'जरा ठैर फिर तू, गोपुलि ब्वारी ! मै चावल ले आता हूँ, तू अपने हाथो से सभी परमेश्वरों के 'उचैण' धर दे।···अरे, नाती का मुख अगर देखने को मिल गयाँ, तो पूजा-पाठों से सभी देवताओं की तबियत खुश कर दूँगा।'

० ० ०

कलावती ने अंदर के कमरे के एक कोने में पराल (पुआल) बिछा दिया था और उसपर दो बोरे डाल दिए थे। बोरों के ऊपर अपनी लाल किनारी की धोती बिछाकर, चरख में से जैसे-तैसे उठकर, नरूली लेट गई थी। व्यथा का वेग बढता जा रहा था, जैसे पत्थरखाणी की पर्वत-चोटी के पीछे से निकलने वाले चंद्रमा की उदय-पूर्वा-लालिमा ऊँचे-ऊँचे चीड़-देवदार-वृक्षों की टहनियो पर चढ रही हो। अंधकार की सीढियों पर चढती किरनें—(किरनें, जो चंद्रोदय से पहले ही पर्वत की गोद में से बाहर फूट पड़ती है।)—और उनका चमचमाकर ऊपर चढना, अधकार की चिकनी परतों पर से फिसलकर, झिल-मिलाते हुए, नीचे उतर पडना···ओई-ई-ई-ई···नरूली को अपनी कमर-तल्ली-नसे चमसाती, उदर और जंघाओं के मॉस-पिण्डों के अन्दर-बाहर फेरे करती-सी लग रही थी।

थोकदार-की-बाखली से मालुली आ गई थी। गोपुली काकी ने उसे देखते ही कहा—"मालुली ब्वारी वे, अच्छा किया, जो फुर्ती से आगई तू। हो सकता है, किसनू ज्याठज्यू की खुशामदों से थोड़ी देर बाद खुद भैंस्याणी पंडित्याण ही आ जाए !···अगर, इस बीच तू जरा होशियारी

से स्वैगिरी कर देती है, तो समझ ले, कि आगे के लिए औरो के दुख-सुख में पहुँचने का एक रास्ता खुल जाएगा।"

"मैं तो अपनी ओर से हर काम होशियारी से ही करूंगी, गोपुलि दिदी! बाँकी सब जस-अपजस परमेश्वर के हाथ है।"—कहते हुए, मालुली अन्दर के कमरे की ओर बढी—"कहाँ है, नरूलि ब्वारी?"··· फिर नरूली की नौराट-कौराट का सहारा लेकर, उसके पास पहुँच गई— "अब कैसी पीड़ उठी हुई है, ब्वारी ?"

ओ-ई-ी-ी···अब नरूली कैसे बताए, कि कैसी पीड़ उठी हुई है ? ···एक ऐसी पीड़ उठी हुई है, जिसको अक्षरो से अभिव्यक्ति दे पाना कठिन ही है। कुछ ही क्षणों के हेर-फेर से, हर समय एक ऐसी दुसह-वेदना कमर के अनुवर्त्ती-अंगों को कसमसा जाती है, जैसे खिड़की-खोलते में, बारम्बार, उसके पल्लों के बीच में अँगुली दब जाए···ओ-ई-ी-ी···

मालुली ने कलावती को पुकारा—"कलावती वे, भाणिजी[1], जरा एक गिलास में गरम दूद देजा। देख तो, जरा दूद में करीबन छटाँकेक घ्यू भी डाल लाना। (ब्वारी, उस दूद को पी लेने से तुझको कुछ आसानी रहेगी।)···अच्छा, भाणिजी, जरा दौडते हुए हाजिर करदे।"

इतना कहने के बाद, मालुली ने नरूली की कमर के आस-पास बड़े जतन से दोनो हथेलियों का चक्कर फिराया—"मुझको तो ऐसा लगता है, जैसे साक्षात् बालक पर ही मेरे हाथ पड रहे हैं। तुझे कैसा लग रहा है, ब्वारी ? बालक कभी-कभी बाहर भी निकलने लगता है, या नही ?"

ओ-ई-ी-ी···

नरूली को ऐसा लगता है, जैसे चतुरसिंह की एक छोटी-सी तसवीर उसकी कमर के चौखटे में अटक गई है।···कमर की चौखट है, जिसकी जोड़-जोड़ में पेचदार कील ठुके हुए हैं···चतुरसिंह की एक छोटी-सी तसवीर है, जिसने कमर की चौखट से निकलकर, बाहर आना है···

---

१. भांजी।

और···और कमर की जोड़ों के कीलों ने एक-एक करके उखड़ना है ·
ओ-इ-जा-आ-ा-ा-ा···

'ओइजा !' पुकारते ही, नरूली की आत्मा प्रसव-पीडा के दुःसह दंशनों के बीच भी मातृत्व से मुरमुरा उठी···परमेश्वरों की कृपा हो गई, नरूली एक बालक की माँ बन गई, तो · हो सकता है, आठ-नौ महीने तक बालक डाले में ही अपने छोटे-छोटे हाथ-पाँवों को हिलाता रहेगा, मुँह से दुधैली-गाज के बुलबुले बना-बनाकर, बुर्र-बुर्र करता रहेगा··· लेकिन, गोदी के बालक को बढ़ते बेर ही कितनी लगती है ?·· जहाँ साल-सवासाल का हुआ नहीं, कि नरूली उसे कम-से-कम 'बौज्यूँ-इजा' पुकारना तो सिखा ही देगी ?·· ओहो रे, कैसा लगेगा उस समय, जब भाऊ अपने पतले-पतले होठों को बड़े जतन से हिलोरते हुए, कानों में मिश्री के कुजे-जैसे फोड़ देगा···इ-जा-आ-

नरूली का मन हुआ, कि एक बार उठकर, अपने उदर को अनावृत्त करके, देख तो ले, कि भाऊ पेट के अन्दर कैसा दिखाई दे रहा है ?··· मगर, ओ बबो, यहाँ पर तो मालुलि ज्यू बैठी हुई है !

नरूली ने खुसू-खुसू अपना बाँया हाथ आगे बढ़ाया, जैसे घर का ही कोई चोर किसी तिजोरी का ताला खोलने के लिए हाथ बढ़ाता है। फूल-पात-जैसी हल्की अँगुलियों से अपना उदर टटोलने लगी नरूली, तो औसत उदर-स्तर से ऊपर उठे हुए माँस-पिण्ड का स्पर्श पाते ही मोह-ममता से उसका मन हवा में उड़ने पंख-सा फरफरा उठा—'ओ बबो, कातिक का जैसा नीबू[1] लगता है · !···हाइ, बालक का सिर होगा ?'

नरूली कि आँखों मे उन बालकों के सिरों के खाके उभर आए, जिन्हें उसने, औरो के यहाँ, जनमने के कुछ ही समय बाद, बड़ी हौस से देखा था···छोटी-छोटी नाक, दाड़िम के फूल-जैसी···पतले-पतले होंठ, सोने

---

१. कातिक के महीने में कुमायूँ में बहुत ही सुन्दर-रसीले नींबू फलते हैं।

की अंगूठियो-जैसे···छोटी-छोटी आँखें, जैसे सोने की नथ की चन्दकों के चमकदार-नग·· छोटे-छोटे भुर-भुरे बाल, जैसे अपूरे पखो वाला, कोई पंछी का पोथिल (बच्चा) घोसले से बाहर निकल पड़ा हो···

हाइ, सब-कुछ बिलकुल छोटा-छोटा-छोटा याने एक छोटी-सी सूरत, याने एक छोटी-सी मूरत, याने एक छोटी-सी तसवीर···यानी एक छोटा-सा चतुर···सी·· नरूली का मन स्मृतियो के आवेग मे थुरथुरा गया··· न-जाने 'ऊँ' कश्मीर-फ्रंट मे इस समय क्या कर रहे होगे ? अभी-अभी गोपुलि ज्यू ने सौरज्यू से कहा था, कि···उनके नाम की चिट्ठी डालकर, बुला लिया जाए···ताकि नामकरण के चौके पर·· अहारे, बैशाख में जब सरूली का बालक हुआ था, तो नामकरण के दिन पीली पगडी बाँधे ऊधमसिंह के साथ, छोटे-से बालक को एक नरम-नरम गुदड़ी में घोंसले के घिनौड-पोथिल[1]-सी लिए · अहारे, उस समय सरूली कितनी सुन्दर दिखाई दे रही थी ? कैसी तपतपान्-तरुणाई झलक रही थी उसकी आँखों में···

और इस असाढ के निकलते ही, सम्भवत·, सावन के सात-आठ पैट तक, चतुरसिंह भी घर आ जाएगा और फिर पीली पगडी बाँधे नरूली की दाँई ओर के चौके पर बैठेगा···पुरोहित ज्यू कुश का पुतला आगे बढ़ाएँगे 'ओम् श्री गणेशायनम:' करेंगे···

नरूली को ऐसा लगा, जैसे उसकी पीडा का घना अन्धकार, आँखों में फैलते-फैलते, अपने-आप उजला होता जा रहा है···ओ-ई-ई-ई··· अन्धकार की गोलाई घटती जा रही है·· कातिक के नींबू-जैसी रोशनी बढ़ती जा रही है···ओ-बा-आ···

० ० ०

किसनसिंह चावल ले आए, तो गोपुली काकी ने एक मुट्ठी चावल और पाँच पैसे हाथ से लेकर, बाँए हाथ की हथेली पर फैलाए और फिर

---

१. गौरैया का बच्चा ।

बाँए हाथ के अँगूठे और तर्जनी के सिरो से चावल के दानों को बिल्कुल धीमे-धीमे स्वरो से मंतरते हुए कहा—कि, परमेश्वर मेरे सैम-राजा, बाँज के वृक्ष, देवदार की डाली मे रहनेवाला, पदमासन-धारी चमत्कारी, नरो की चाकरी स्वीकार कर लेना।···डाली फूल खिला जाना, हो परमेश्वर, तेरे नाम की जै-जैकार करती हूँ। नरूली-ब्वारी की गोद सुफल कर देना हो, परमेश्वर, आते असोज के नौर्तो[१] में पूजा-पाठ-धूप-बास का बन्दोबस्त हो जाएगा। बैसी लगेगी, उसमें पूर्णावितार भी करा दिया जाएगा।·· ऐसे ही, हे मेरे अंग के गोल्ल-गगनाथ देबो, तुम दोनों भी दाहिने हो जाना हो परमेश्वर! राजजोगी गंगानाथ गुसाँई, मामू का अगुवा गोरिया—दाहिने हो जाना, नरूली ब्वारी को सुखियारी बना देना, हमारे किसनू ज्याठ ज्यू को नाती का सुन्दर मुख दिखा देना, आते नौर्तो में तुम्हारी भी पूजा-पाती भरपूर हो जाएगी।'—गोपुली काकी ने किसनसिंह से जरा जोर से कहा—"और, सुनो हो, किसनू ज्याठ ज्यू! इस 'उचैण' को तो कही सँभाल के रख दो। इसके अलावा ऐसा करो, कि तुम्हारा जो वह भँगरिवा बोकिया है, उसकी चितई के गोल्ल देवता के नाम पर चढा दो। आखिर बधाई की पूजा तो तुमको वैसे भी देनी ही पडेगी।···"

किसनसिह ने कलावती को पुकारा—"भाणिजी, जरा इधर आ। भँगिरवा को मैंने नीचे के बाड़े में आलबखारू के पेड़ की जड़ में बाँध रखा है। उसे जरा चितई के गोल्ल देबता के नाम पर चढाने को ले आ। गोपुलि ब्वारी ने चावल और पैसों का 'उचैण' तो मन्तर[२] ही दिया है, जरा बोकिए को भी मन्तर देगी।···परमेश्वर हो, दया करना।···"

चितई के गोल्ल देवता की सुधि आते ही, किसनसिह को अपने

---

१. आश्विन की नव-रात्रियाँ। २. मन्त्र-सिद्ध करने को मन्तरना कहते हैं।

अपने कश्मीर-फ्रण्ट में खड़े बेटे चतुरसिंह की भी याद आ गई—"अरे, मैंने तो अपने चतुरिया को चिट्ठी भी भेजनी है!"

कलावती दूध-घी का गिलास मालुली के समीप रखकर, भँगिरवा को लाने चली गई।

० ० ०

भँगिरवा को चाख के मध्य में खड़ा किया गया। गोपुली काकी ने उसका एक कान पकड़ा और किसनसिंह से कहा—"ज्याठ ज्यू हो, तुम एक लोटिया पानी मँगवालो और जरा एक मुट्ठी अक्षत और दो मुझे।"

किसनसिंह ने चावल की थाली आगे बढ़ा दी और कलावती, इतने में, पानी का लोटा लेने चली गई। पानी आ जाने पर, गोपुली काकी ने किसनसिंह की दाँई अँजलि में पानी भरा—"संकल्प धारण करो हो, ज्याठ ज्यू! बाद में, जब मैं कहूँगी, संकलप का जल भाँगिरवा के सिर में छोड़ देना।..."

इसके बाद गोपुली काकी ने भँगिरवा के कान को जरा और जोर से पकड़कर, अपनी ओर खींचा। फिर चावल की मुट्ठी की सात बार भँगिरवा के सिर पर प्रदक्षिणा की—"परमेश्वर हो, चितई के गोल्ल देवता! ले, खुश हो जा, मैं इसी समय से यह तेरे नाम का बोकिया चढा देती हूँ। नौर्तों में खुद तेरे देव-दरबार में उपस्थित होकर, किसनू ज्याठ ज्यू इस भँगिरवा की तेरे मन्दिर में बलि दे आएँगे। इसके अलावा पंच पकवान, लाल वस्तुर और जटावाली नारियूल-बताशों आदि की ऊपरी-पूजा का सामान भी चढ़ाया ही जाएगा।...इसलिए, हो मेरे परमेश्वर, दुख-शोक हर लेना और हमारे किसनू ज्याठ ज्यू के घर में एक सुन्दर नाती से आनन्द-मंगल रचा देना।...परमेश्वर मेरे..."

मुट्ठी के अक्षतों को भँगिरवा के सिर पर बिखेर दिया गोपुली काकी ने, और किसनसिंह को संकेत किया, तो उन्होंने अपनी अंजलि का पानी भँगरिवा के सिर पर छोड़ दिया—"परमेश्वर गोल्ल देवता—"

भँगिरवा काकी के बिखरे हुए चावलों को टपाटप, अपनी जीभ में

लगा-लगाकर, चबाता जा रहा था। पानी सिर पर पड़ा, तो थोड़ा रुका, मगर फिर चावल खाने में लग गया।

गोपुली काकी बोली—"आँग-मून[1] तो भँगिरवा ले ही नहीं रहा है! इस बार इसके कानों में संकलप का जल डालो, हो किसनू ज्याठ ज्यू!"

किसनसिंह ने अंजलि में लोटे से जल लिया और—'परमेश्वर, दया-दानी चित्त से सेवा स्वीकार लेना' कहते हुए–भँगिरवा के कानों में छोड़ा, मगर भँगिरवा का सारा ध्यान चावल-दानों को चरने-चबाने में केन्द्रित था। थोड़ा-सा उसने अपने कानों को हिलाया, मगर फिर-बिना रुण्ड-मुण्ड हिलाए ही—चावल के दानों पर जीभ घुमाने लग गया।

गोपुली काकी अब के गम्भोर-स्वर में बोली—"किसनू ज्याठ ज्यू हो, इधर तुम्हारे घर पर देबों की कुछ ऐंठाऐंठी ही चल रही है। गोल्ल-गंगनाथ दोनों टेढ़ी चाल चल रहे हैं। तुम आजकल देबताओं को ठीक से जता नही रहे हो?"

"गोपुलि ब्वारी वे, मेरा कलेजा तो ऐसा काँटों से भरा हुआ है, कि पल-पल मे प्राण काँपने लगते हैं। ऐसे में, हर समय मेरे मुख से आज-कल 'परमेश्वर-परमेश्वर' ही निकल रही है।"—किसनसिंह व्यथित-स्वर में बोले—"मै एक की जगह दश वोकिए चढाने को तैयार हूँ, ईश्वर मेरे चतुरिया बेटे को कुशल से रखे। मेरी नरुली ब्वारी का दुख दूर

---

१. बलि के बकरे के सिर-कानों में देवता के नाम का संकल्प-जल छोड़ा जाता है—कि, इस बकरे की बलि तेरे मन्दिर में देंगे, तू हमारे दुख दूर करना, कार्य सिद्ध करना, अपना कोप शान्त करना—और जब बलि का बकरा अपने रुण्ड-मुण्ड को जोर-जोर से कँपकँपा लेता है, तभी यह माना जाता है, कि देवता ने सेवा स्वीकार कर ली है। इसी को बकरी का 'आॅग-मन लेना' कहते है। 'आॅग' अंग और 'मून' मुण्ड का अपभ्रंश है।

करदे, बस ।···अब ऐसे में देवताओं को भी मेरी इस दीन हालत पर दया-दिरिष्टि ही रखनी चाहिए । · "

"जरूर होगी, जरूर होगी हम देवताओं की मिहरबानी, रे स्यौकार बाबू ![1] जो भक्तिगिरी करेगा, उसे उसका फल भी मिलेगा, स्यौकार भगत !" गोपुली काकी के शरीर में देव-चलक फूट गई···घि-रि-रि-रि··· और उसने अपनी अँजलि में जल भरकर, जोर से भँगिरवा के कान में मारा—"छोर्त्त—जल्दी से आँग-मून ल्ले···ए-ए···"

चावल चबा चुका था भँगिरवा । गोपुली काकी की 'छोर्त्त' जब पानी के कुमकुमे के साथ उसके कानों में पहुँची, और उसके कानों की ऐंठन भी बढ़ गई, तो उसने, एकदम से अचकचाकर, 'बो-ओ-ओ-ओ' करते हुए, जोर से अपने सर को घुमाया ।···और उसका एक सींग, जोर से गोपुली काकी की बाँई आँख के, कान की ओर पड़ने वाले, कोने में लगा···

"ओ बबो···ओ इजो···मै मरी···अरे, मेरी आँखों का कल्याण हो गया है···"—बिलाप करती गोपुली काकी धरती पर औंधी छटपटाने लगी । आँख को उसने दोनों हाथो से ढँक लिया था और अँगुलियों के बीच से खून की धार नीचे को फैल रही थी······

भँगिरवा अपनी पूँछ और अपने गीले कानों को जोर-जोर से फड़-फड़ाते हुए, 'मिं-ऐं-ऐं' चिल्लाते हुए, चाख से बाहर भाग गया था ।···

किसनसिंह ने, हड़बड़ाते हुए, गोपुली काकी को सँभालने का प्रयास किया । ··मगर, बड़ी देर तक गोपुली काकी पीड़ा से तिलमिलाती छटपटाती रह गई । आँख फूटते-फूटते बची थी, मगर कोने में सींग का घाव हो गया था । कलावती ने जल्दी से अपनी फटी धोती का एक टुकड़ा फाड़ा और पानी से भिगोकर गोपुली काकी की आँख के ऊपर रख दिया ।······

---

१. साहूकार बाबू

बहुत देर-बाद, गोपुली काकी की चेतना लौटी, तो उसने अपनी दाँई आँख से अपनी खून-सनी अंगुलियो और हथेलियों को देखा और फिर चीत्कार करती धरती पर लेट गई···ओ ब-बो-ओ · ···

थोड़ी देर-बाद फिर उठी, तो उसके कानो में एक भनक नरूली की 'ओ इजा' की पडी, एक भनक किसनसिंह के भर्राए स्वरों की पड़ी—"गोपुलि ब्वारी वे, शान्ति कर, शान्ति कर। मैं अभी जाके पोस्टमास्टर जैदज्यू के यहाँ से टिकचर की शीशी लेके आता हूँ। हे ईश्वर, पत रह गई। आँख फूटते-फूटते बच गई।······"

"मेरी तो जो-कुछ शान्ति होनी थी, हो गई है!"—एकदम दुख-भरे और कड़वे शब्दों मे गोपुली काकी ने कहा—"मगर, चाहे तुम कुछ भी कहो हो, किसनू ज्याठज्यू—तुम्हारे घर-परिवार पर गोल्ल-गंगनाथ और सैम देवताओं की घोर कोप-दिरिष्टि पड़ी हुई है, और इस घर में आज जरूर कोई-न-कोई अनिष्ट होने वाला है।····· "

३४

डूंगरसिंह चौंतरे-ऊपर की देली पार करके चाख में पहुँच गया, तो लछमा ने धेवती के कपोलों को थपथपाकर, उसे एक ओर रख दिया "जा, तू खेल कर, मेरी पोथी !···चू-चू · जा मेरी घुनुरि-कुतुरि··· जा !"

इसके बाद, डूँगरसिंह की ओर ध्यान देते हुए, बोली—"द, हो डूँगरसींग, मेरे मुख के बचनों की बात क्या पूछते हो ?·· लेकिन, पहले तुम यह तो बताओ, कि सवेरे से अभी तक एकदम लापता-जैसे कहाँ थे ? कुछ नहीं हो, तुम भी बहुत लापरवा हो। कहाँ से एकाध गिलास चहा पियोगे, कहाँ से एक गास कल्यौ-पानी करोगे। बस, बन के वानरों-जैसे तुम भी इधर-उधर भटकते रहते हो। जरा तो अपनी सुध-बुध रखा करो।···तुम्हारी लाई हुई मिठाइयों से चोरों के पेट तक भर रहे हैं, मगर तुम्हारे लिए न-जाने ये भुटीकुंद के लड्डू कौन-सी चीज हैं।···"

गोबरसिंह-लछमा और रमुवा की कुछ बातें डूँगरसिंह के कानों तक पहले ही पहुँच गई थी। कुछ उसने अनुमान लगा लिया, कि परिस्थिति क्या हो सकती है।···

लछमा से बोला—"द, लछिम भौजी! जबसे अपनी जिंदगी सभाली है मैंने, किसी भौजी ने भी कभी नही पूछा, कि 'डुगरिया रे, तू कैसा है?'···जबकि अपनी भौजियों के यहाँ मैं बरसों रहा। · लछिम भौजी, मगर तुम्हारे अहसानों को मैं ता-जिंदगी नहीं भूल सकता, क्योंकि तुमने चार-पाँच ही दिनों मे मेरे सिर पर महतारी का जैसा हाथ रख दिया है। मैं भी लावारिश नहीं हूँ, मेरी बरबाद होती हुई जिंदगानी को सँभालने वाला भी कोई जरूर है—तुम्हारा मुख देखते ही; मुझे ऐसा लगता है और मैं तुम्हारे महतारी-रूप को बारम्बार नमस्कार करता रह जाता हूँ। · अच्छा, हो लछिम भौजी, अभी जो तुमने कुछ लड्डू वगैरह का एक मामूली जिकर-जैसा किया था, उसके बारे में मैं कुछ समझ नहीं पाया ठीक से—क्योंकि जो-कुछ भी रूखी-सूखी मिठाई मैंने तुमको सौपी थी, वह, सिर्फ तुम्हारे ही बाल-गोपालों के लिए थी।"

लछमा दीवार का सहारा लिए बैठ गई थी।

बोली— 'द, मेरे बाल-गोपालों के मुख का छीनने वाले भी बहुत हैं। खैर, मुझे क्या लेना-देना है? क्यों, हो डूँगरसींग, ठीक है, कि नहीं? मेरी तरफ से कोई कुछ भी करे।···'करमसींग जाता है कपकोट को, अमरसींग जाता है अस्कोट को—रामसींग रे, तू भी अपना रास्ता नाप।' वाला हिसाब मेरा भी सही। किसी के भी कारनामों में दखलंदाजी करने से मुझे क्या हाँसिल हो जाएगा? मैंने तो रमुवा के बौज्यू से आज साफ-साफ कह दिया है, कि 'बस करो, हो रमुवा के बौज्यू, आज का कसूर माफ कर दो। कान पकड़ती हूँ, जो आज से कभी भी तुम्हारी लाड़ली बैणियों—ब्वारियों के बारे मे कुछ भी कहूँ तो।'···अरे, मेरी तरफ से लोई हजारो कुकरम करती फिरे। मैंने तो अब निश्चय कर

लिया है, हो डूँगरसीग, कि घर की झझटो से एक प्रकार का सन्यास-जैसा ले लूँगी।"

"बस, बस, हो लछिम भौजी, बस! अब बहुत ज्यादा बचपना-जैसा क्यों करती हो?"—डूँगरसिह बोला—"जरा अपने बालको को एक लैन में खड़ा करके, इधर से उधर तक—भतीजी धेवती से लेकर, लछमिया, गोपुवा, मधिया, दुलपिया, गुलबिया, मबलुवा और रामी भतीज तक—अपनी नजर घुमाते तो सही?···अहारे, धन्य-धन्य, हो लछिम भौजी! इस ससार में तुम-जैसी साक्षात् सरस्वती-लक्षमी औरत भी मुश्किल से ही मिलेगी। बाल-गोपालो से ऐसा भरपूर भडार कर रखा है, कि अब मैं क्या कहूँ।···"

इतना कहते-कहते, डूँगरसिह की दृष्टि लछमा के गर्भिल-उदर पर ड़ी, तो उसे नरूली की सुधि हो आई···और ऊखल के पार्श्ववर्ती-पथरौटो पर फैला हुआ रक्त उसकी आँखों में उतर आया—और डूँगरसिह ने अपने होंठों को कुलबुला कर, मरोड़-जैसा दिया—मर जावे ससुरी—न बने बेटेवाली····हे परमेश्वर ··

फिर उसका ध्यान जैता पर गया, कि मानलो, परमेश्वर ने उसकी प्रार्थना सुन ली, तो कलेजे के दो काँटे तो हमेशा-हमेशा के लिए निकल जाएँगे, बाँकी जो भौजियो के दुर्वचनों के काँटे हैं, उन्हें भी डूँगरसिह—धौलछीना में अपनी शानदार दुकान खड़ी करके—निकाल देगा·· और, शायद, चतुरसिंह भी कश्मीर-फ्रंट में वहाँ-का-वहीं रह जाए?···इस प्रकार डूँगरसिह का कलेजा काँटों से खाली हो जाएगा ··और खाली कलेजे को डूँगरसिह जैता की मोहिनी सूरत से भर सकता है · अहारे, चौमासे की गंगा-जैसी तरुणाई और किस लिए फूटी हुई है, जैता के तन में···

मगर, काँटों से खाली कलेजे को बरूँश-फूल-जैसी जैता की मोहिनी-मूरत का भराव देने के लिए भी तो बहुत-कुछ करना पड़ेगा?···

डूँगरसिह ने देखा, कि लछमा किसी काम से उठकर जाने ही वाली है, तो जल्दी से बोला—"यह तुम्हारा नहीं, तुम्हारे बाल-गोपालों और

गोबरदा की दस-ग्यार जिंदगानियों की खुशहाली का सवाल है, लछिम भौजी ! तुमने अगर, किसी बात से भी तँग आके सही, इस प्रकार अपने हाथ-पाँव-जैसे छोड़ दिए, तो हो गया इस घर का कल्याण।···अरे, तुम इस घर-भंडार की मालिक हो, तुम्ही अगर इसकी बरबादी की तरफ से अपनी आँखों को बंद कर लोगी, तो दूसरा और कोई क्या भला करेगा ?"

"कहने को तो तुम ठीक ही जैसी बातें कह रहे हो, डूँगरसीग ? मगर 'इन ढोल-नगारों की घमाघम में मेरा हुड़का कौन सुनता है ?' वाली मेरी हालत भी हो रही है।"—लछमा बोली—"जिसके अपने ही खसम-बेटे अपने काबू मे नही होगे, पह दूसरों के साथ बेकार की क्वाँ-क्वाँ लगा के क्या करेगी ?···मेरे खसम-बेटों की तो यह मिसाल है, कि 'जिस शेरसीग के लिए सड़क तैयार करनी थी, वही पदमसीग के साथ पगडंडी के रास्ते खिसक रहा है।'···हमारे न रमुवा को ही अक्कल है, न उसके बौज्यू को ही।"

"खैर, रामी और गोबरदा तो जैसे भी थे, अब तुम भी लौंडियोली कर रही हो, भौजी !"—डूँगरसिंह बोला—"बन की गैया को वन के बाघों के लिए कोई नही छोड़ आता। हाँक-हाँक कर, घर को ही लाते हैं। तुम्हारे खसम-बेटे है, आज जरा धोखे में हैं—तुम उनकी आँखें उघाड़ दोगी, तो अपने-आप रास्ते पर आ जाएँगे।···मगर, इस समय इस गिरती हुई गिरस्थी को सम्भालना तुम्हारा ही काम है।····मैं साफ-साफ कह देता हूँ, लछिम भौजी, कि इस समय तुमने अगर लापरवाही दिखाई, तो कल 'बचेसींग के बाल-गोपालों को बचेसीग की ही बेहोशी बरबाद कर गई।' वाली बात हो जाएगी ! ···तुम जरा होश में आओ, लछिम भौजी, होश में आओ !···थोकदार चचा की जमीन-जैजात के हकदार, गोबरदा के अलावा, कुछ और लोग भी हैं।···मानलो, कल को जैता भौजी और जसौंतिया अपना-अपना हिस्सा अलग करवा लेते हैं—(थोकदार चचा को उन दोनों से तुमसे कहीं ज्यादा पिरेम है।)—

और आजतक एक चली आ रही जमीन-जैजात के तीन खंड हो जाएंगे। इन तीनों में से सिर्फ एक ही खंड तुम्हारे हाथों में आएगा···मगर तुम्हारा दश-ग्यार प्राणियों का कुटुम्ब तुम्हारे ही साथ रहेगा !—याद रक्खो, लछिम भौजी, याद रक्खो ! तीसरे हिस्से में से तुम्हारे बाल-गोपालों को पेट-भर अन्न हाँसिल होना दुर्लभ हो जाएगा—रामी-मबलुवा आदि भतीजों को हाइ इस्कूल-इन्टर कौलेज करवाना तो बहुत दूर की बात है।···लछिम भौजी, बहुत मगनमस्ती-जैसी क्या दिखा रही हो इस समय ?···कल को जब किसी दिन यह मेरी बताई हुई 'पोजीशन' और 'कंडीशन' सामने आएगी—और वह, फिलहाल की कई बातों को देखते हुए, आने ही वाली है—'तो ऐसी क्या हो पड़ी ?' तुम ही कहोगी।···"

लछमा ने एक लम्बी उसाँस भरी—"जीते रहो, हो मेरे डूँगरसींग देवर ! परमेश्वर तुम्हें आगे के लिए अच्छा रास्ता दे। आज तुमने मेरी पट्ट-बन्द आँखों को उघाड़ दिया है।···हाइ, मैं तो बिल्कुल बेफाम-जैसी अपने दिन काट रही थी।···मगर, अब मुझे जरा अपने बाल-गोपालों का ध्यान रखना ही पड़ेगा।—तुम भी जरा—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, हो देवर !—मेरे रामी और उसके बौज्यू को चार बातें समझा देना, कि 'देखो, तुम लोग अपनी इजा के उन कामों में अपनी जबान मत अड़ाया करो, जो वह तुम लोगों की ही भलाई के लिए कर रही है !'···इसके अलावा···"

इतने में, ऊपर डँगरियों-की-बाखली से लौटी हुई मालुली बोली—"मै ऊपर किसनू ज्याठज्यू के घर से आ रही हूँ, वे लछिम ब्वारी !···नरुली का बचना मुझे तो बहुत मुश्किल दिखाई दे रहा है। न-मालूम बालक पेट के अंदर ही कुछ आडा-तिरछा पड़ गया है, या कहीं ऐसा तो नहीं हो गया, कि मर ही···?···शिबौ, लछिम ब्वारी, नरुलि छोरी ऐसा बिलाप कर रही है, ऐसे आँसू गिरा रही है, वे, कि मेरा तो कलेजा ही कंपायमान हो गया है !···"

थोड़ा रुककर, मालुली फिर बोली—"हाइ, बड़ा दुखी भाग निकला छोरी का ! एक तो देव-पकड़ हो रही है । गोल्ल देवता को चढ़ाए जा रहे बोकिए ने, गोल्ल की ही डँगरिया, गोपुली दीदी की आँख में सींग मार दिया है···।···दूसरे नरूली के प्राण छूट रहे हैं, बच्चेदानी में बच्चा अड़ा हुआ है—मगर, दुरगुली पंडित्याण उनकी तरफ को भेल फरका के लेटी हुई है अपने घर में।···सब गरदिश के फेर हैं।···अब किसनू ज्याठज्यू डोली के लिए हाँकाहाँक कर रहे हैं । नरूली व्वारी को अलमोड़ा के मेटरनी-हस्पताल में ले जाने की बात कर रहे हैं।···मगर, मेरा मन तो भसक रहा है, वे लछिम व्वारी !—नरुलि छोरी का अलमोड़ा के मैटरनी-हस्पताल में पहुँचने तक बचना मुश्किल दिखाई दे रहा है।···कितने भी तेज डोलियारे मिलेंगे, तो भी छै-सात घंटे तो लग ही जाएँगे।···और मैं उसकी दो-तीन घंटे की उम्मीद भी कम ही देख रही हूँ।···अच्छा, वे लछिम, मैं जाती हूँ। जरा अमरुवा को पोस्ट-ऑफिस जाने से रोकना है।···किसनू ज्याठज्यू बिचारे बालकों की तरह रो रहे हैं, व्वारी ! हाइ, बिचारों पर ऐन बुढ़ापे में बजर-जैसा पड़ रहा है।···"

लछमा का मन व्यथा से भर आया और जल्दी से डँगरियों-की बाखली की ओर बढ़ी—"डूँगरसींग हो, बाँकी बातें बाद में होती रहेंगी। इस समय मैं चलती हूँ।···हँहो, रमुवा के बौज्यू हो, जरा चूल्हे से बाहर निकलकर, ऊपर आ जाओ। तुम लोगों को तो, बस, अपने ही पेट की पड़ी रहती है। दूसरा कोई मरे, या बचे।····जल्दी आ जाना, हो-ओ !··· डोली में कन्धा लगाने के लिए, तुम्हारी जरूरत पड़ सकती है।"

लछमा आँगन-पार पहुँच गई, तो डूँगरसिंह उठकर, अन्दर के कमरे में चला गया।······

० ० ०

अपने बिछौने पर लेटते-लेटते, डूँगरसिंह को कुछ ऐसा लगा, जैसे एक हलका-सा बादल का टुकड़ा उसकी आँखों में उतर आया है—जैसे

धरती पर से उठी हुई भाप ऊपर उठकर, घनी होती-होती, एक बादल का टुकड़ा बन जाती है····डूँगरसिंह के मन की किन्हीं गहरी परतों से अन्तर्द्वन्द्व का धुँधलका उठता-उठता, आँखों तक पहुँचकर, घना और घना होता चला गया···

डूँगरसिंह सोचता है, कहीं मन की परतों में से सबसे निचली एक परत ऐसी भी है, जहाँ डूँगरसिंह के चोट-खाए चित्त की प्रतिशोधात्मक-क्रूरता का सख्त पत्थर पश्चाताप और परिताप के ठण्डे पानी से पिघलता-पसीजता रहता है····और···जैसे लम्बी नली की फूँक से सुलगते हुए, बाँज के लाल-लाल कोयलों पर राख चढ़ने लग जाती है···हे परमेश्वर, कहीं नरूली सचमुच ही तो नहीं मर······

'मरने दे, रे, डूँगरसिंह, मरने दे···अपने जानी-दुश्मनों को एक-एक करके खतम हो जाने दे !'—मन की सबसे ऊपरी परत पर पड़े हुए कुंठा और कोप के लमपुछिया कीड़े कुलबुला उठे—'छाती तो पूरी ठंडक तभी महसूस करेगी, जब दुश्मनों की सूरतों का डेरा आँखों और कलेजे के बीच की जगह से हमेशा-हमेशा के लिए उठ जाएगा !···और तब कलेजे की खाली ठौर में एक बुरूँश-फूल-जैसी मनमोहिनी सूरत का आसन लगेगा और तू होगा···और तेरी धौलछीना के पड़ाव में जोर-शोर से चलने वाली दुकान होगी······'

और, डूँगरसिंह ने सोचा, तब देखने वाले भी देखेंगे, कि—खिमुली-भिमुली भौजियाँ देखेंगी, देबसिंह और चनरसिंह दो-भैया देखेंगे, कि डुँगरिया को क्या हम समझते थे, क्या वह निकला ! कहाँ हम उसको एकदम निगरगन्ड, एकदम निकम्मा समझते थे और कहाँ उसने धौलछीना के पाँव-उखाड़ू पड़ाव में इतनी बड़ी, अलमोड़ा के लाला भगवती परशाद की जैसी, जबरजंड दुकान खड़ी करदी है !······

उमादत्त गुरू और थोकदार चचा वगैरह कहेंगे, कि—अरे, डुँगरिया तो एक पाथरों-के-बीच-का-हीरा निकला !······

और नरूली कहेगी, कि—(मुँह से तो, खैर, क्या कहेगी ? मगर

मन-ही-मन तो सोचेगी ही, कि)—जिस डूँगरसींग को मैंने, अपने जोवन के घिमण्ड में आकर, एक मामूली-सी मजाक करने पर कुकुर-जैसा लताड़ दिया था···जिस डूँगरसीग से शादी करना तो दूर की बात रही, सिर्फ शादी का जिकर करने पर ही जिसके मुख में एक झापड़ ठोक दिया था और चतुरसीग के साथ, उसकी हौलदारी पर आशिक हो करके, खुशी-खुशी बारात धमका दी थी और उसी चतुरसीग से एक बेटा पैदा करके डूँगरसीग की आँखों के ऊपर एक जलता हुआ कोयला-जैसा धर दिया था···आज वही डूँगरसीग इसी धौलछीना में मुझसे भी जोवनदार जैता को पटाकरके, उसका खसम बन करके, इतनी बड़ी शानदार दुकान खोल के बैठा है !······

मगर···जब नरूली ही मर जाएगी, तो देखेगा कौन डूँगरसिंह को जैता के खसम और एक शानदार दुकान के मालिक के रूप में ?···

अचानक ही यह प्रश्न डूँगरसिंह के मन में कौंधा और वह उठकर, बिछौने पर बैठ गया।···उसे लगा, जैसे नरूली के प्राण छूट रहे हैं। चतुरसिंह का सुन्दर-सा बेटा मरा हुआ निकल रहा है···और डूँगरसिंह की आत्मा काँप उठी, थरथरा उठी—'नरूली अगर मर भी गई, उसका बेटा अगर मर भी गया···तो, आखिर, मुझे क्या मिलेगा ?···

···उसके मन में एक तरंग-जैसी उठी, कि अरे डुँगरिया, तेरी खूबी तो तब है, जब तू एक दिन वह लाकरके दिखादे नरूली और उसके बेटे को···कि, नरूली जिस समय तेरी शानदार दुकान में—(जिसमें बड़ी-बड़ी काँच की आलमारियों में खूबसूरत परियों की तस्वीरें चिपकाई हुई हों)—आए, तो देखे, कि तू बढ़िया काली सरज की सूट (कोट-पैन्ट) पहने हुए, दुकान के गल्ले में बैठा हुआ है और सोने के जेवरों से लदी हुई जैता, सोलहों सिंगार करके, ठीक दुकान के गल्ले के ऊपर पड़नेवाली खिड़की में बैठी-बैठी, तेरी ओर को नीचे झाँक-झाँककर, अपनी लम्बी-गोरी नाक की चमचमाट करती सोने की दसचंदकिया-नथ और दिल-मार्का बुलाँक को हिलाते हुए, तुझे 'हँहो, हँहो' कहकर पुकार रही है···!

…(या हो सकता है, तब तक तू भी जैता से एक खूबसूरत गटापार्चा की गुड़िया-मार्का बेटा पैदा कर ले, और तुझे जैता 'फलाने के बौज्यू हो' कहकर पुकारे !)

…और—चतुरसिंह के कश्मीर-फ्रंट-का-कश्मीर-फ्रंट-में ही रह जाने से, नरूली की हालत खस्ता हो चुकी है। उसके सुन्दर बेटे के शरीर में फटे-पुराने-मैले जाँघिए-कुर्ते के अलावा और कुछ भी नहीं है—(जबकि तेरे बेटे को तूने रबर की गैलिसों वाली फुल-पैन्ट और चमकदार, रेशमीन कपड़े की खुले कालरों वाली हाफ-शर्ट पहना रखी है और वह दुकान के परांगण में रबर का बड़ा गिड्डुवा[1] खेल रहा है और तेरी लाई हुई बिलैती-मिठाइयों को चबाता जा रहा है।)—और, ऐसे में, चतुरसिंह-नरूली का बेटा तेरे बेटे के साथ फुटबौल खेलने को आगे बढ़े, तो तेरा बेटा अपने हूज-बूंट वाले पाँवों की ऐसी किक मारे उसके, फटी हुई जाँघिया से बाहर दिखाई देने वाले भेलों पर, कि वह 'ओ इजा' कहते हुए नरूली की छाती से चिपक जाए…

…और नरूली, दीन-स्वर में, तुझसे कहे, कि 'डूंगरसीग हो, हाथ जोड़ती हूँ, जरा मेरे बेटे को भी अपने बेटे के साथ फुट बौल खेलने दो… और एक टुकड़ा बिलैत-मिठाई का मेरे…'…और उसके वाक्य के पूरे होने से पहले ही, तू उसके बेटे के मुख में फचम्म एक फबैक मार दे, कि 'बड़ा आया साला, मेरे बेटे के साथ फुट बौल खेलने वाला और बिलैंत मिठाई चबाने वाला !'…

० ० ०

इस सुखद कल्पना के आनन्द से डूंगरसींग को अपनी प्रतिशोधाग्नि से जलती हुई छाती में एक बहुत ही गहरी ठंडक-जैसी अनुभव हुई और उसकी आँखों में उतरा हुआ बादल का टुकड़ा बरस गया…आनन्द के आँसू टुपुक्क-टुपुक्क आँखो से बाहर निकल आए…जैसे किसी तेज दवा

---

१. गेंद।

के असर से तिलमिलाकर, किसी गहराई तक पके हुए घाव के तमाम कीड़े कुलबुलाते हुए घाव से बाहर निकल पड़े हों...

—और, डूँगरसिंह अपनी बैसाखी उठाकर, पूरी तेजी के साथ, भैस्याणी पंडित्याणी के सिगरेट-सलाईनुमा मकान की ओर चल पड़ा, यह प्रार्थना करने के लिए, कि 'इहो, दुरगुलि काकी, तुम-जैसे-तैसे नरुलि भौजी के और उसके होने वाले बालक के प्राण बचालो।...'

'हौलदार' की शेष-कथा लेखक के अगले उपन्यास 'बारुद और बचुली' में पढ़ें। यह उपन्यास शीघ्र ही प्रकाशित होगा।